तार—'गांडीव'

फोन नं० २८१६

गांडीव

[Hindi Daily] VARANASI

[... एवं निर्भीक लोकप्रिय हिन्दी दैनिक तथा साप्ताहिक]

... संस्करण

... दि० १२ मई, १९६६ ई०   [मूल्य १० पैसे

राजस्व मन्त्री की कोठी ...
विशाल प्रदर्शन

लखनऊ, ११ मई। उत्तर प्रदेश संसोपा तथा साम्यवादी ... के कई हजार कार्यकर्ताओं ने यहाँ भारी प्रदर्शन करने के ... लगभग तीन घण्टे तक राजस्व मन्त्री ठाकुर हुकुमसिंह की ... को घेर रखा।

प्रदर्शनकारियों ने राजस्वमन्त्री की कोठी का घेरा उठा... पहले मुख्य मन्त्री तथा गृहमन्त्री को चेतावनी दी कि यदि ... सूर्योदय के साथ ही उनकी मांगों को स्वीकार करने के विषय ... राज्य सरकार की ओर से कोई 'समुचित उत्तर' न मिला ... विधान सभा पर घेरा डालेंगे तथा राज्य कार्य नहीं चलने दे...

10.2

...विस्फोट की ...रेडियो सक्रिय धूल ...समुद्र तट ...ई

..., ११ मई। जापान के ... को चीन के ताजा पर... के विस्फोट से उत्पन्न ...पा के ऊपर रेडियो ...का पता चला है।

...की समाचार एजेंसी के ...होगी उक्त धूल चीन ...भूमि के आमने-सामने ...समुद्र तट के उपर छा...

...क इस बात का पता ...ा है कि चीन ने हाइ... परीक्षण किया है या

सन् ५७ के प्रथम भारतीय स्वातन्त्र्य समर की वर्षगांठ—

किसी भी खतरे का सामना करने के लिए देश तैयार रहे

साम्प्रदायिकता मिटाने और राष्ट्रीय एकता बनाये रखने की प्रधान मन्त्री की अपील

नयी दिल्ली, ११ मई। प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कहा है कि यह कहना कठिन है कि लड़ाई फिर छिड़ेगी या नहीं किन्तु किसी भी खतरे का शानदार ढंग से मुकाबला करने के लिए देश को पूरी तरह सतर्क और तैयार रहना चाहिए।

१८५७ के प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की वर्षगांठ के समारोह का शुभारम्भ करते हुये श्रीमती गांधी ने कहा कि देश की सीमाओं ...

भूख, गरीबी, अज्ञान और बीमारी के विरुद्ध संघर्ष करना है।

...लिमिट एजेन्सी में

केन्द्र अस...
मंहगाई भत्ते के लि... को धन देने ...

नई दिल्ली, ११ ... मन्त्रालय में राज्य मन्त्री ... राम भगत ने आज ... बताया कि यह निर्णय ... सरकारों का काम है ... साधनों को ध्यान में रख... कर्मचारियों को कितना म... दे सकते हैं।

उन्होंने कहा कि ... सरकारों ने महंगाई ...

ब्रिटेन में अब गर्भपात अवैध नहीं

लन्दन, ११ मई। ब्रिटेन की 'हाउस आफ लार्ड्स' ने उस विधेयक को मंजूरी दे दी है जिसके अन्तर्गत गर्भपात सम्बन्धी प्रतिबन्धों को शिथिल करने की व्यवस्था है।

अब यह विधेयक हाउस आफ कामन्स में विचारार्थ पेश किया जायेगा।

गये। उनमें से ३ की दशा चिन्ताजनक होने से उन्हें जौनपुर के सदर अस्पताल में भरती किया गया है।

असम के बम-विस्फोटों का मुख्य अभियुक्त गिरफ्तार

शिलांग, ११ मई। एक सरकारी प्रवक्ता के अनुसार असम पुलिस ने नागालैंड सीमा से लगे बोकाक हाट नामक छोटे कस्बे से एक भाओ नागा को गिरफ्तार किया है, जिस पर सन्देह है कि उसने गत २९ अप्रैल को उत्तर पूर्वी सीमा रेलवे के मणिपुर रोड स्टेशन के प्लेटफार्म पर ४५ पौण्ड वाला बम रखा था।

बताया जाता है कि यह ३० वर्षीय नागा पहले पुलिस बटालियन में था।

प्रवक्ता ने बताया कि गिरफ्तार किए गए नागा को मनिपुर रेलवे स्टेशन ले जाया गया है, वहां उससे मुकम्मल पूछताछ की जाएगी।

प्रवक्ता ने बताया कि अब तक जो संकेत मिले हैं उनके अनुसार कुर्कलिंग, लुम्बडिंग और डिफ रेलवे स्टेशनों पर जो तोड़फोड़ की कार्यवाहियां हुईं उन सभी के पीछे उस

... से भारत को निकालने व रूसियों को डराने धमकाने का है, जो १५५५० फुट ऊंचे सामरिक मिन्टाका दर्रे पर कब्जा किए हुए है।

अमरीकियों ने भी गिलगिट का एक बड़े हवाई अड्डे के रूप में विकास किया है, जहां से वे समूचे पामिर क्षेत्र का नियन्त्रण कर सकते हैं तथा रूसी मध्य एशिया को डरा सकते है। सिंकियांग स्थित चीनी अड्डे भी गिलगिट में अमरीकी अड्डों के निशाने बन सकते हैं।

यही सोचकर रूसियों ने मिंटा का दर्रे पर अपनेको जमाया है, यह दर्रा गिलगिट के २०० किलोमीटर दक्षिण में है।

विशेषज्ञों का मत है कि गिलगिट क्षेत्र में चीनियों के बढ़ने का एक मात्र उद्देश्य हिमाचल की निचली शृंखला पर जो अफगानिस्तान तक फैली हुई है, नियंत्रण करने का है। इसके अलावा उसका लक्ष्य सिंकियांग स्थित अपने अड्डों की सुरक्षा करना भी है।

●

सीमावर्ती इलाकों में भी ...
नियमों का केवल सीमित उपय...

लोकसभा में गृहमन्त्री नन्दा का वक्त...

नयी दिल्ली, ११ मई। केन्द्रीय गृहमन्त्री श्री गुलजारीलाल नन्दा ने आज लोकसभा में बताया कि भारत रक्षा अधिनियमों का प्रयोग कुछ ही सीमावर्ती इलाकों में किया जायगा सब में नहीं।

उन्होंने यह भी संकेत दिया कि भारत रक्षा नियमों का प्रयोग केवल वहीं किया जायेगा जहां कोई समस्या होगी। जिन सीमित इलाकों में रक्षा नियमों के अधिकारों का प्रयोग करने का ...

ऐसा केवल राष्ट्रीय सुरक्षा के कार्यों के लिए किया ... आपने आश्वासन दिया ... इस बात की भी समुचित ... करेगी इन अधिकारों का ... प्रयोग न होने पाये।

श्री नन्दा ने कहा ... वर्ती क्षेत्रों की आवश्यक... जांच की जा रही है जिस... भारतरक्षा नियमों का ... प्रयोग हो।

... रोडेशिया के प्रश्न पर ... के लिए सुरक्षा परिषद ... अविलम्ब बुलायी जाये।

सुरक्षा परिषद की ... या कल होने की सम्भावना ...

पता चला है कि ... शियाई देशों ने इस प्रस्ताव ... मोदन कर दिया है कि ... या दक्षिण अफ्रीका रोडे... तेल भेजना जारी रखे तो ... पर भी प्रतिबन्ध लगाये जा...

लन्दन में ब्रिटिश सर... गैर कानूनी रोडेशियाई स... प्रतिनिधियों के बीच चल र... के विरोध में ही इन अफ्र... राष्ट्रों ने परिषद की बैठक बुल... की मांग की है।

अनेक अफ्रेशियाई ... इस वार्ता का कड़ा विरोध ... करते हुए कहा है कि यह ... द्वारा रोडेशिया की श्वे... गैर कानूनी गोरी सरकार को ... देने की दिशा में पहला क...

कल लन्दन में ब्रिटिश ... व रोडेशियाई सरकार के प्रति... के बीच वार्ता का तीसरा ... जो कि लगभग ३ घण्टे तक ...

... अमेरिका के ... ने इस विस्फोट की ... जो रूस की शक्ति ... था।

... से प्राप्त एक समा... नेपाल ने चीन के ... निन्दा की है एवं ... चीन वायु मण्डल ... परीक्षण निषेध की मास्को ... कर।

... ग लग जाने ... यात्री जलकर

चिन्ताजनक

... ११ मई। यहाँ प्राप्त ... हुआ है कि आज ... ११ बजे मछली शहर ... वाली एक प्राइवेट बस ... जाने से उस पर सवार ... यात्री जलकर घायल हो

परमाणु ... प्रकाश ... ने के लिए ... कार्रवाई

... से उत्पन्न रेडियो-सक्रिय ... को नष्ट करने व खाद्य ... बचाने की कार्रवाई ... जाये।

... के उत्तरी भाग में ... रेडियो-सक्रिय धूल ... आशंका है।

... द्वारा सन्तोष व्यक्त ... से प्राप्त खबरों के अनु... के राजनीतिक क्षेत्रों ... परमाणु बम-विस्फोट पर ... किया गया है।

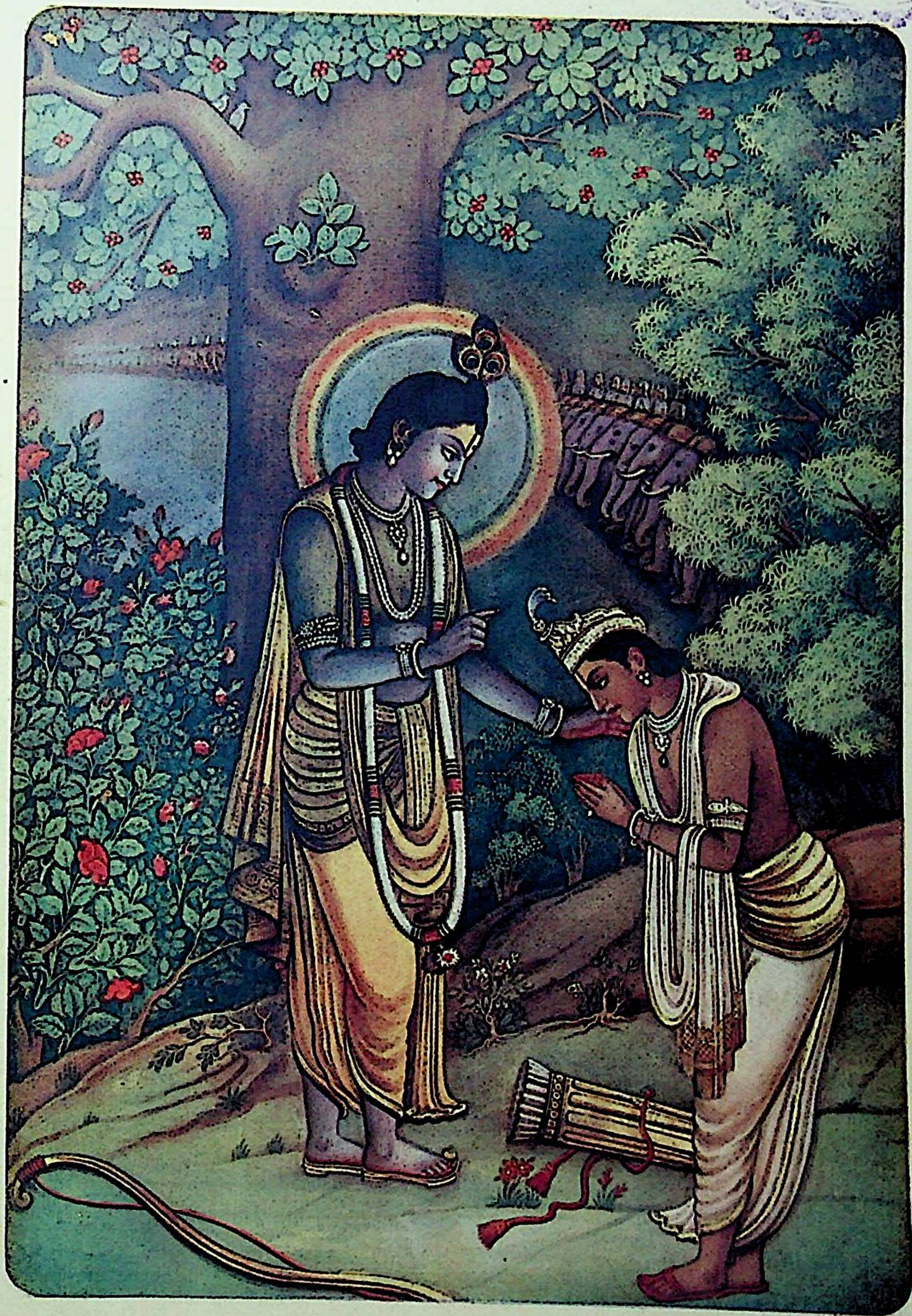
... निया और उत्तर कोरिया ... परमाणु बम विस्फोट का ...

क ३४ क ८

नवंबर, १९३७]

गीताधर्म, काशी

[वर्ष २ अङ्क ११



विषयसूची

चित्रसूची—



સૂચના

અમારા ગુજરાતી ગ્રાહકો ને સુગમ પડે તે માટે નવા વર્ષ તા. ૧-૧-૩૮ થી ગુજરાતી માં લેખો પાન ૩૨ સુધી રાખવા નક્કી કરેલું છે જેથી આપ સર્વ ને પત્રીકા ઘણીજ અનુકુળ થઈ પડશે.

વ્યવસ્થાપક
ગીતાધર્મ
કાશી



गीताधर्म के तृतीय वर्ष का प्रवेशाङ्क—

गीताङ्क

आगामी जनवरी (१९३८) की पहली तारीख को यह विशेषाङ्क बड़ी सजधज के साथ प्रकाशित हो जायगा।

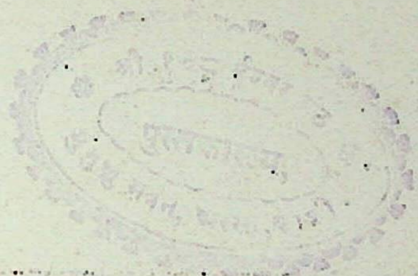
इस में गीता के प्रसिद्ध प्रसिद्ध आचार्यों और विद्वानों के लेख रहेंगे।

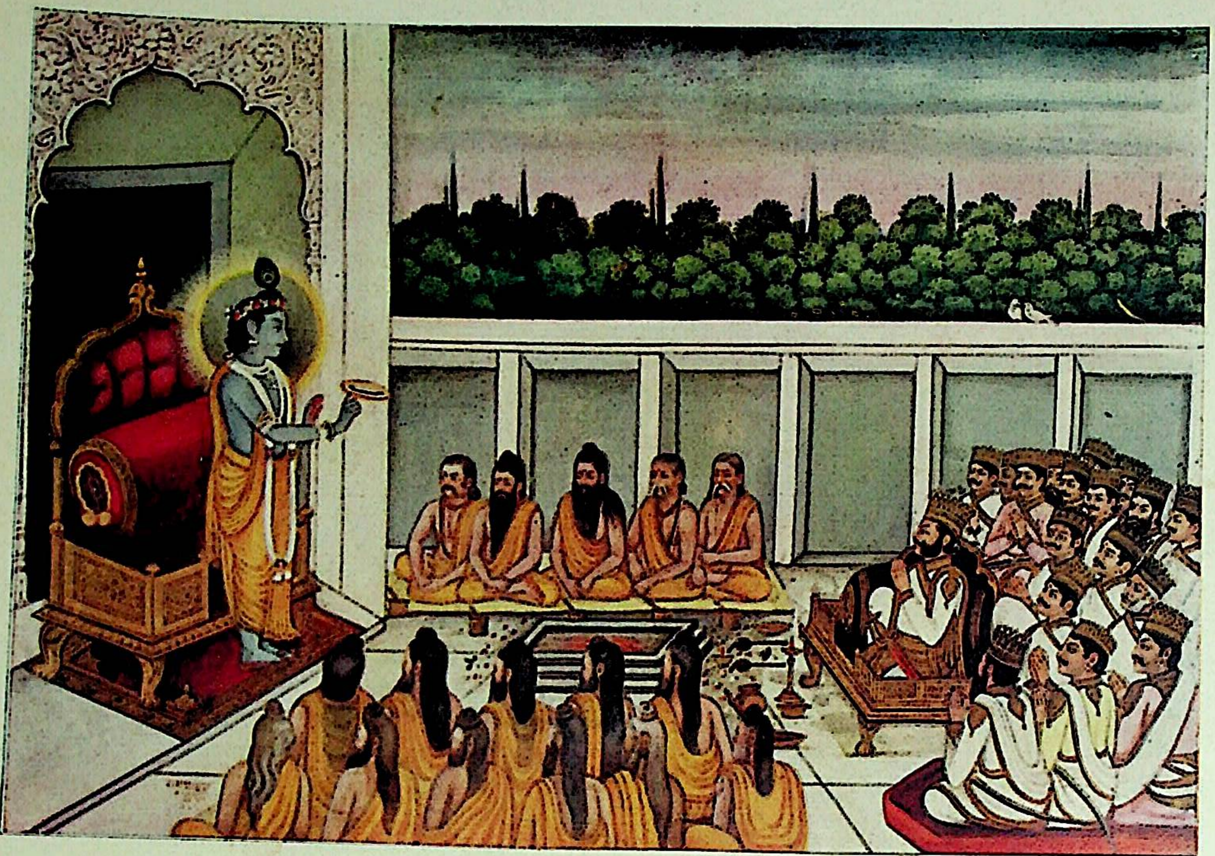
इस अङ्क की सब से बड़ी विशेषता यह है कि इस में गीता से ही संबन्ध रखनेवाले, प्रसिद्ध कलाकारों द्वारा निर्मित, कलापूर्ण, चित्ताकर्षक, रंगबिरंगे अनेक चित्र रहेंगे।

अपने गुजराती पाठकों की रुचि के अनुसार इस अङ्क में गुजराती लेखों के लिए लगभग आधा भाग देने का आयोजन किया गया है।

इस अङ्क की पृष्ठसंख्या लगभग ४०० होगी। मूल्य २।) होगा, किंतु स्थायी ग्राहकों को बिना मूल्य दिया जायगा।

—व्यवस्थापक





राजसूय यज्ञ

यस्त्वेह सवने न भूपतिः कर्म कर्मकरवत् करिष्यति ।
तस्य नेष्यति वपुः कबन्धतां बन्धुरेष जगतां सुदर्शनः ॥

गीताधर्म प्रेस, साक्षीविनायक, काशी ।

गीता धर्म

संस्थापक—
गीताव्यास (लोकसंग्रही स्वामी विद्यानन्दजी) } वर्ष २ सं० ११ { संपादक— पद्मनारायण आचार्य एम० ए०
नवंबर, १९३७
काशी

संपादकीय सूचना

१. चित्र वीररस से पूर्ण है। भगवान् का यह उपदेश जीवन में अमृत का काम करता है। भगवान् कह रहे हैं कि यज्ञ में पाहुन बनकर नहीं बैठना चाहिए। प्रत्येक राजा को कमकर (कर्मकर=मजदूर) के समान यहाँ काम करना चाहिए। 'गीताधर्म' के संस्थापक भगवान् कृष्ण का यह मार्मिक उपदेश सदा स्मरण रखना चाहिए और यह 'सुदर्शन' वाला वेष भी।......इस चित्र के संबन्ध में बस यही एक श्लोक ध्यान से पढ़ लीजिए, हृदय फड़क उठता है और रोम रोम वीर रस से भर जाता है। भगवान् कहते हैं—

यस्त्वेह सवने न भूपतिः कर्म कर्मकरवत् करिष्यति।
तस्य नेष्यति वपुः कबन्धतां बन्धुरेष जगतां सुदर्शनः॥

(माघ के शिशुपालवध से)

महाराज युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ हो रहा है। महाराज द्वार पर खड़े हैं। आनेवाले (अभ्यागत) राजाओं और सज्जनों का स्वयं अपने हाथों से चरण धो रहे हैं। इसी सभा में भगवान् ने खड़े होकर महाराज युधिष्ठिर से जो कुछ कहा है वह हम सभी के लिए कहा है। श्लोक के अर्थ पर ध्यान दीजिए—

जो राजा यहाँ तुम्हारे इस यज्ञ में कमकर के समान काम न करेगा उस का धड़ सिर के साथ न रह सकेगा। सभी का भाई सुदर्शन (चक्र) मेरे हाथ में है। (अर्थात् इसी चक्र से मैं काम न करनेवाले का सिर काट दूँगा।)

कैसी स्पष्ट आज्ञा है! पाठको, विचार करो। हम सब को इस जीवनयज्ञ में काम करना चाहिए, नहीं तो भगवान् रूठ जायँगे।

व्यासवचनामृत

(नीलकण्ठ का दर्शन)

"जीवन का रस पीयूष नित्य
जग को करना है दान तुम्हें;
हे नीलकण्ठ, संतोष करो
था लिखा गरल का पान तुम्हें !"

समुद्र का मन्थन हुआ। चौदह रत्न निकले। देव दानवों ने रत्नों का बँटवारा किया। देवों ने अमृत का पान किया और असुरों ने सुरा (वारुणी=शराव) पी। यह बड़ा सुन्दर समय था, सभी आनन्द कर रहे थे।

पर भाइयो, एक बात ध्यान देने की है। इस अमृतमन्थन और सुख संपत्ति के पहले एक बड़ी विपत्ति आई थी। विपत्ति से तीनों लोक घबड़ा उठे थे। देव, दानव, मनुष्य और पशु पक्षी सभी 'त्राहि त्राहि' चिल्लाने लगे थे।

जब देवताओं और दानवों ने समुद्रसन्थन करना शुरू किया, बड़ा परिश्रम किया; पर निकला क्या ? विष का घड़ा। चारों ओर जहरीले धुएँ से हाहाकार मँच गया। तब भगवान् विष्णु ने सिखाया कि यदि तुम लोग जीना चाहते हो, अपने काम में विजय चाहते हो, तो भगवान् शिव के दर्शन करो। वे इस विपत् से तुम्हें बचायेंगे।

तब सब लोग 'बचाओ बचाओ' चिल्लाते हुए शिवजी के पास पहुँचे। मा पार्वती ने देखते ही शिवजी से कहा—महाराज, इन दुखियों का त्रास मिटाइए। शिवजी बाहर निकल आये। सब समाचार सुनते ही बोल उठे—अच्छा, मैं इस का उपाय करूँगा; घबड़ाओ मत।

शिवजी आगे बढ़े और विष के घड़े को लेकर पी गये। गला नीला पड़ गया। और उसी दिन से उन का नाम पड़ा नीलकण्ठ।

समुद्रमन्थन करनेवाले देवासुर फिर अपने काम में लग गये और धीरे धीरे अनेकों रत्न निकले।

उसी समय से जब लोग किसी काम में हाथ लगाते हैं; सफलता और विजय के लिए यात्रा करते हैं तो नीलकण्ठ का दर्शन करते हैं, नीलकण्ठ का ध्यान करते हैं। भगवान् राम ने भी लङ्काविजय के लिए जब यात्रा की थी, इन्हीं नीलकण्ठ का दर्शन और ध्यान किया था।

भाइयो, विजयादशमी के दिन नीलकण्ठदर्शन का यही रहस्य है। संसार में काम करना है, तो आँख मूँदकर पहले विष का घूँट पीना पड़ेगा। यदि स्वयं पीते न बने, तो भगवान् से प्रार्थना करो, वे तुम्हारे ऊपर करुणा करके उस विष को पी जाएँगे, क्योंकि भगवान् की प्रतिज्ञा है—

'योगक्षेमं वहाम्यहम्'

अपने भक्तों का योगक्षेम मैं ढोता हूँ। दुनियाँ की कर्मभूमि में यदि कुछ करना है, तो दो ही उपाय हैं—

(१) या तो नीलकण्ठ का स्मरण करके स्वयं नीलकण्ठ बनो, दुनियाँ की निन्दा स्तुति, दुःख सुख सब सहो।

(२) अथवा भगवान् की शरण जाओ। किसी की परवा न करो—

जाको राखै साइयाँ मारि सकै नहिं कोय।
बाल न बाँका करि सकै जो जग वैरी होय॥

पूरा उपदेश सुनने का उपाय

(सत्यकाम की कथा)

(ले०—गीताव्यास (लोकसंग्रही स्वामी विद्यानन्दजी) गीतामन्दिर, करनाली)

भाइयो !

पूरा उपदेश अथवा पूर्ण ज्ञान कैसे मिलता है—इस का एक उपाय है, सत्य का पालन—सत्य की निष्ठा। इसी वात का वर्णन छान्दोग्य उपनिषद् की एक कथा में वड़े प्रभावशाली ढंग से आया है। आप भी उसे सुनिए और मनन कीजिए—

किसी समय में सत्यकाम जावाल ने अपनी माता जवाला से कहा कि हे माता, मैं परम पवित्र ज्ञान को प्राप्त करनेवाले एक विद्यार्थी का जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ। कृपा करके मुझ से यह बतलाइए कि मैं किस कुल में उत्पन्न हुआ हूँ ?

माता ने उत्तर दिया कि मैं यह नहीं जानती कि तुम किस कुल के हो। अपनी युवा अवस्था में जब मैं दूसरों की सेवा टहल करती हुई इधर उधर घूमती फिरती थी तब मैं ने तुम्हें पाया था। इस लिए मैं यह नहीं जानती कि तुम किस कुल के हो। किंतु मेरा नाम जबाला है और तुम्हारा नाम सत्यकाम है। इस से तुम अपने को सत्यकाम जावाल कह सकते हो।

तब सत्यकाम जावाल हारिद्रुमत गौतम के पास गया और उन से कहा कि मैं पवित्र ज्ञान के विद्यार्थी का जीवन व्यतीत करूँगा। हे महात्मन्, मैं आप का शिष्य बन जाऊँगा।

तब उन्होंने उस से पूछा कि हे प्रिय, कृपाकर मुझ से यह बताओ कि तुम ने किस कुल में जन्म लिया है ?

सत्यकाम ने उत्तर दिया कि हे भगवन्, मैं यह नहीं जानता हूँ कि मैं ने किस कुल में जन्म लिया है। मैं ने यही वात अपनी माता से पूछी थी। उन्होंने मुझ से यह कहा कि 'अपनी युवावस्था में जब मैं इधर उधर सेवा टहल करती फिरती थी तब मैं ने तुम्हें पाया था। इस लिए मैं यह नहीं जानती हूँ कि तुम किस कुल के हो। किंतु मेरा नाम जबाला है और तुम्हारा नाम सत्यकाम है।' हे भगवन्, इसी लिए मेरा नाम सत्यकाम जावाल हुआ है।

तब हारिद्रुमत गौतम ने कहा कि एक अब्राह्मण इस प्रकार स्पष्टता के साथ सब बातें नहीं कह सकता। हे प्रिय, तुम समिधा लाओ। मैं तुम्हें अपना शिष्य बना लूँगा। तुम सत्य से विचलित नहीं हुए हो।

उसे अपना शिष्य बना चुकने के बाद उन्होंने चार सौ दुबली पतली और कमजोर गायें अलग कर

दीं और सत्यकाम से कहा कि हे प्रिय, इन के पीछे पीछे जाओ।

जब वह उन को हाँककर ले जाने लगा तब उस ने कहा कि कदाचित् इन गायों की संख्या एक हजार हो जाने के पहले मैं न लौटूँ। वह अनेक वर्षों तक बाहर रहा। जब उन गायों की संख्या एक हजार हो गई तब एक दिन साँड़ ने सत्यकाम से कहा कि हे प्रिय, अब हमारी संख्या एक हजार हो गई है। अब हम को गुरुजी के घर ले चलो। और मैं तुम्हें ब्रह्म के चतुर्थांश का ज्ञान भी कराना चाहता हूँ।

सत्यकाम ने कहा कि हे महानुभाव, बतलाइए।

तब साँड़ ने कहा कि ब्रह्म के सोलह भागों में से एक भाग पूर्व दिशा है, एक पश्चिम दिशा है, एक दक्षिण दिशा है तथा एक उत्तर दिशा है। हे प्रिय, सोलह भागों में से चार भागों के मिलने से यह ब्रह्म का चतुर्थांश बना है। इसे तुम निश्चय के साथ समझ लो। इस चतुर्थांश का नाम **प्रकाशवान्** है। जो कोई ब्रह्म के उस चतुर्थांश को जानकर उस का आदर करता है वह स्वयं इस संसार में प्रकाशरूप हो जाता है तथा **प्रकाशवान्** लोकों को प्राप्त करता है। ब्रह्म के दूसरे चतुर्थांश का ज्ञान तुम्हें अग्नि के द्वारा होगा।

सबेरा होने पर सत्यकाम गायों को हाँक कर ले चला। शाम को वे सब एक जगह ठहरे। उस ने आग जलाई, गायों को घेरे में कर दिया, इन्धन इकट्ठा कर दिया तथा वह पूर्व की ओर मुँह करके आग के पश्चिम की ओर बैठ गया।

अग्नि ने कहा, 'सत्यकाम!'

उसने उत्तर दिया, 'हाँ, श्रीमती!'

अग्नि—मैं ब्रह्म के चतुर्थांश के संबन्ध में तुम से कुछ कहना चाहती हूँ।

सत्यकाम—हाँ श्रीमती, मुझ से कहिए।

तब अग्नि बोली कि ब्रह्म का एक सोलहवाँ भाग पृथिवी है, एक वायुमण्डल है, एक आकाश है, एक समुद्र है। हे प्रिय, तुम निश्चयपूर्वक जानो कि यही ब्रह्म का चतुर्थांश है जो सोलह भागों में से चार भागों के मिलने से बना है। इस का नाम **अनन्तवान्** है। जो कोई **अनन्तवान्** नामवाले ब्रह्म के इस चतुर्थांश को जानकर उस का आदर करता है वह स्वयं इस संसार में असीम हो जाता है तथा वह असीम लोकों को प्राप्त करता है। ब्रह्म का एक और चतुर्थांश तुम को एक हंस बतलायेगा।

सवेरा होने पर उस ने फिर गायों को आगे बढ़ाया। जब शाम हो गई तब वे एक जगह पर ठहर गये। वहाँ उस ने आग जलाई, गायों को घेरे में कर दिया, इन्धन इकट्ठा किया तथा पूर्व की ओर मुँह करके आग के पश्चिम की ओर बैठ गया।

एक हंस ऊपर से उड़ता हुआ उस के पास आया और उस से बोला कि हे सत्यकाम, मैं तुम्हें ब्रह्म के एक चतुर्थांश का ज्ञान कराना चाहता हूँ।

सत्यकाम ने कहा—हे महानुभाव, बतलाइए। तब हंस ने कहा कि ब्रह्म का एक सोलहवाँ भाग अग्नि है, एक सूर्य है, एक चन्द्रमा है और एक बिजली है। तुम निश्चयपूर्वक जानो कि ब्रह्म के सोलह भागों में से चार भागों को मिलाकर यह चतुर्थांश बना है।

इस का नाम **ज्योतिष्मान्** है। जो कोई इस चतुर्थांश को जानकर इस का आदर करता है वह स्वयं इस संसार में **ज्योतिष्मान्** हो जाता है तथा उसे **ज्योतिष्मान्** लोकों की प्राप्ति होती है। ब्रह्म के एक और चतुर्थांश का वर्णन तुम से पनडुब्बी चिड़िया करेगी।

सवेरा होने पर वह फिर गायों को लेकर आगे चला तथा सायंकाल होने पर वह एक स्थान पर ठहर गया। उस ने आग जलाई, गायों को घेरे में बंद किया, इन्धन इकट्ठा किया तथा पूर्व की ओर मुँह करके आग के पश्चिम की ओर बैठ गया।

एक पनडुब्वी उड़ती हुई उस के पास आई और उस से इस प्रकार कहने लगी कि हे प्रिय सत्यकाम, मैं तुम्हें ब्रह्म के एक चतुर्थांश का बोध कराना चाहती हूँ।

सत्यकाम ने कहा कि हे श्रीमती, अवश्य कहिए। तब उस ने कहा कि ब्रह्म के सोलह भागों में से एक भाग श्वाँस है, एक भाग आँख है, एक भाग कान है तथा एक भाग मन है। तुम निश्चयपूर्वक इस बात को मान लो कि ब्रह्म के सोलह भागों में से चार भागों को मिलाकर ब्रह्म का यह चतुर्थांश बना है। इस का नाम **आयतनवान** है। जो कोई इस को जानकर इस का आदर करता है उसे संसार में एक **आयतन** मिल जाता है तथा उसे **आयतनवान्** लोकों की प्राप्ति होती है।

अब सत्यकाम लौटकर गुरुजी के घर में आ पहुँचा। गुरुजी ने कहा, "सत्यकाम!"

उस ने उत्तर दिया—'हाँ, भगवन्!'

गुरुजी—हे प्रिय, तुम तो ब्रह्मज्ञानी के समान प्रकाशमान् हो। कृपया यह बताओ कि किस ने तुम्हें उपदेश दिया है।

उस ने कहा कि मनुष्येतर जीवों ने मुझे उपदेश दिये हैं। किंतु कृपा करके आप भी स्वयं मुझे उपदेश दीजिए, क्योंकि हे महानुभाव, मैं ने आप ही के जैसे महान् व्यक्तियों से सुना है कि गुरु के द्वारा प्राप्त किया हुआ ज्ञान मुक्ति प्राप्त करने में सब से अधिक सहायक होता है।

तब उन्होंने उसे उपदेश दिया। उन्होंने उस में कुछ भी बाकी न रख छोड़ा, पूरा पूरा उपदेश दिया।

(छान्दोग्य उपनिषद् से)



भारत के कुछ भक्त

(ले०—स्वामी रवीन्द्रानन्दजी महाराज, गीतामन्दिर, करनाली)

[गताङ्क पृष्ठ १८१३ से आगे]

(२२) विद्यापति

ये मैथिली भाषा के कवि थे। चण्डीदास के समकालीन और मित्र भी थे। पहले ये घोर शृङ्गारी कवि थे, लेकिन अपने जीवन की पश्चिमावस्था में ये कृष्णभक्त हो गये थे। पहले लछिमा नामक एक स्त्री से इन का लोकविरुद्ध प्रेम हो गया था।

अपने उत्तरजीवन में ये कृष्ण की लीला का वर्णन और भजन करते थे। इन की कविता में रस की धारा बिल्कुल फूटी पड़ती है।

(२३) शंकराचार्य

श्री शंकराचार्य का जन्म केरल राज्य में हुआ था। आप ने बहुत बचपन में ही विद्यालाभ कर लिया था। छोटी उम्र में ही संन्यासी होने के लिए माता से आज्ञा माँगी, लेकिन ममतावश माता के इन्कार करने पर आप नदी में डूबने को उद्यत हो गये। उस पर माता ने आज्ञा दे दी और आप श्री गोविन्द स्वामी के शिष्य हो गये।

श्री शंकराचार्य को भगवान् शंकर का ही अवतार माना जाता है। आप ने हिंदुत्व की रक्षा के लिए बड़ी अमूल्य सेवाएँ कीं। अद्वैत मत के आप ही प्रवर्तक माने जाते हैं। आप की विद्वत्ता विलक्षण थी। कहा जाता है कि शास्त्रार्थ में आप के सामने कोई नहीं ठहर पाता था। यह भी कथा प्रचलित है कि काशी आने पर आप का साक्षात् भगवान् व्यासदेव से शास्त्रार्थ हुआ और अन्त में पद्मपादाचार्य नामक शिष्य के बतलाने से आप को विदित हुआ कि ये ही भगवान् व्यास हैं। तब आप ने 'ब्रह्मसूत्र' के आधार पर अद्वैत मत का प्रचार करने की आज्ञा माँगी, और सोलह वर्ष की आयु का भी वरदान माँगा। फिर आप निरन्तर घूम घूमकर अद्वैत मत का प्रचार और स्थापनकार्य करते रहे। अन्य मतावलम्बी विद्वानों को बराबर पराजित करते रहे। प्रस्थानत्रयी पर आप के भाष्य बहुमूल्य हैं। आज के विद्वानों को टीका आदि करने में उन के भाष्यों का बड़ा भारी सहारा मिलता है। कहा जाता है श्री शंकर का देहावसान केदारनाथ पर्वत के समीप बत्तीस वर्ष की अवस्था में हुआ। अन्तिम समय में उन के ज्ञानमय हृदय में भी भक्ति का प्रादुर्भाव हो ही गया था। आप की गणना महान् आचार्यों में होती है, लेकिन आप के स्तोत्रादि पढ़ने से स्पष्ट अवगत होता है कि आप मतप्रवर्तक होने के साथ ही बड़े उच्चकोटि के साधक और भक्त भी थे।

(क्रमशः)



योगी अरविन्द की अमृतवाणी

(ले०—श्री वीरेन्द्र मालवीय)

[गताङ्क पृष्ठ १८१४ से आगे]

फिर तेरे लिए वन्धन कैसे ? मार्यादा कैसी ? आलिङ्गन करनेवाले हाथ में और जख्म करनेवाली तलवार में, सूर्य की प्रखर ज्योति में और पृथिवी के सतत नृत्य में, गरुड के महान् उड्डयन में और वुल-वुल के मृदु गान में, समस्त भूतकाल में और वर्त-मान में तथा सर्व भावी पदार्थों में सर्वत्र तू अपने को देख, तेरी अपनी आत्मा को अनुभव कर।

× × × ×

तू अनन्त है और इसी लिए सर्व प्रकार के आनन्द भोगने का अधिकारी है।

× × × ×

कर्ता को द्विगुणित आनन्द मिल सकता है। वह प्रकृति के कार्यों का आनन्द भोगता है तथा जिस प्रियतम के लिए प्रकृति कार्य कर रही है उस के आनन्द का भी वह भागी वनता है। प्रकृति अपने को प्रभु की शक्ति समझती है। प्रभु का ज्ञान तथा ज्ञान का अभाव भी वह स्वयं है, ऐसा वह जानती है। प्रभु का अद्वैतत्त्व और आत्मभेद; उस की अनन्तता और सान्तता दोनों वह है; यह ज्ञान प्रकृति में होता है। तू भी यह सव है, इस का साक्षात् कर। तेरे प्रेमी के आनन्द का तू भी अधिकारी वन।

× × × ×

वहुत लोग अपने को कारखाना समझते हैं! आप स्वयं करण हैं, ऐसा समझते हैं; वे अपने को कच्चे माल से परिपक्व वननेवाला अनुभव करते हैं; ऐसा उन का विश्वास है। ठीक, किंतु वे कर्ता को ईश्वर मान लेने की भूल कर रहे हैं। इस भूल में जो सदैव के लिए डूव रहे हैं वे प्रकृति के उच्च, विशुद्ध और संपूर्ण कार्यों को भाग्य से ही अनुभव कर सकेंगे।

× × × ×

व्यक्ति की प्रकट मूर्ति में आविर्भाव पानेवाला करण परिमित है—सान्त है; कर्ता का मूल स्वरूप विराट् है—तो भी वह व्यक्ति के केन्द्र की ओर लौटता है, परंतु दोनों में से एक भी ईश्वर नहीं है। कारण यह है कि वास्तविक व्यक्तित्व एक में भी केन्द्रित नहीं है।

× × × ×

ईश्वरभाव

आखिर ईश्वर है। उसे भी तू अपनी आत्मा समझ, किंतु तेरी उस दिव्य आत्मा को किसी भी विशिष्ट रूप में स्वीकार कर, उस के गुणों की व्याख्या करने का प्रयत्न न कर। अपनी आत्मा में उस के साथ एक हो जा, चैतन्य में उस के साथ संवन्ध रख, तेरी शक्ति का प्रयोग उस के अधीन कर। हे कर्मयोगी! तेरा आनन्द भी उस के आलिङ्गन का परिणाम है, ऐसा अनुभव कर। तेरे मन, प्राण और शरीर में उसे सार्थक कर, उस की इच्छा के अनुकूल वन, तभी तेरे हृदय की दिव्य दृष्टि खुलेगी और तुझे विश्वव्यापी एकमात्र व्यक्ति के दर्शन होंगे। उसी व्यक्ति में तेरा लय हो जाता है, किंतु तेरी अपेक्षा वह विशाल है। उस में अन्य सर्व का भी समावेश है, किंतु फिर भी वह सव से परे है, वह तेरे कर्मों का भोक्ता और नियन्ता है। वह कर्ता का ईश्वर और करण का भी प्रभु है। वह समग्र संसार के रासमण्डल में माधुर्य का संचार करने-वाला पागल प्रेमी है और नृत्य करते करते सव को अपने पैरों तले रौंद देनेवाला महाकाल भी वही है। और इतना होने पर भी तेरी आत्मा के शान्त अन्तः-पुर में मौन धारण कर, तुझ से एकान्त में भी वह एकाकी मिलता है!

(क्रमशः)

श्री श्री रामकृष्णजी के उपदेश

(रामकृष्णवचनामृत)

"चिन्मय"

(गताङ्क पृष्ठ १८१६ से आगे)

(६)

६२–यदि मैं कर्ता—करनेवाला–हूँ, इस प्रकार अहंकार का त्याग कर निष्कामभाव से कर्म किया जाय, तो बहुत अच्छा है। निष्कामभाव से कर्म करते करते ईश्वर के प्रति भक्ति और प्रेम आ जाता है। इस प्रकार निष्काम कर्म करते करते ईश्वर-लाभ होता है।

६३–जितना उन पर मनुष्य को भक्ति और प्रेम होता रहता है उतना ही उस का कर्म कम होता जाता है। गृहस्थ की बहू के पेट में यदि बच्चा हो, तो सास उस का कर्म कम कर देती है। ज्यों ज्यों महीने बढ़ते जाते हैं त्यों त्यों सास उस के कर्म कम करती जाती है। दसवें महीने में तो उसे बिल्कुल कर्म करने ही नहीं देती है कि पीछे बच्चे को कुछ हानि या प्रसव में कोई व्याघात–गड़बड़ी–न हो।

६४–तुम जो सब कर्म करते हो उस से तुम्हारा अपना ही उपकार होगा। निष्कामभाव से कर्म कर सकोगे, तो चित्तशुद्धि होगी और ईश्वर के प्रति तुम्हारा प्रेम होगा। प्रेम होने से ही उन का लाभ हो सकेगा। संसार का उपकार मनुष्य नहीं करते हैं, वे ही करते हैं जिन्होंने चन्द्र सूर्य बनाया, जिन्होंने माँ बाप में स्नेह दिया, जिन्होंने महान् व्यक्तियों में दया दी और जिन्होंने साधु भक्तों में भक्ति दी। जो कामनारहित होकर कर्म करेगा वह अपना ही कल्याण करेगा।

६५–भीतर ही सोना है, पर अब तक खबर न[illegible] मिली। कुछ मिट्टी से दबा हुआ है। (अर्थात् अप[illegible] में ही ईश्वर है, उस का पता नहीं मिला। अज्ञान [illegible] छिपा हुआ है) यदि एक बार पता मिल जाय, तो औ[illegible] कर्म कम हो जायगा। गृहस्थ की बहू को लड़का हो[illegible] पर वह लड़के को लेकर ही रहती है; उसी का ल[illegible] प्यार करती है। सास उसे संसार के और कर्म कर[illegible] नहीं देती है।

६६–और आगे बढ़ो। कोई लकड़हारा लक[illegible] काटने गया था। ब्रह्मचारी ने कहा—आगे बढ़ो[illegible] बढ़कर देखा चन्दन के पेड़! फिर कुछ दिन बा[illegible] सोचा उन्होंने तो आगे बढ़ने को कहा। केवल चन्द[illegible] के पेड़ तक तो जाने को नहीं कहा था। आगे बढ़क[illegible] उस ने चाँदी की खान पाई। फिर कुछ दिन बा[illegible] और बढ़ गया, तो सोने की खान मिली। उस [illegible] बाद केवल हीरे और माणिक! ये सब लेकर व[illegible] एकदम धनकुबेर (दौलतमंद) बन गया।

६७–निष्काम कर्म करने से ईश्वर में प्रेम हो[illegible] है। धीरे धीरे उन की कृपा से उन को पाया जा[illegible] है। ईश्वर को देखा जाता है। फिर उन से बै[illegible] ही बात की जाती है—जैसे हम तुम से कर रहे हैं।

६८–अपने में ही क्या है, कोई नहीं जानता[illegible] अपने ही भीतर ईश्वर है, यह मालूम हो गया, त[illegible] सब काम काज छोड़कर व्याकुल हो उन को पुकार[illegible] की इच्छा (तबीयत) होती है। (क्रमशः

श्री श्री रामकृष्णचरितप्रसंग

(ले०—श्री स्वामी चिन्मयानन्दजी, श्री रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, लक्सा, काशी)

[गताङ्क पृष्ठ १८२४ से आगे]

दूसरा परिच्छेद

'वकलमा' के अर्थात् प्रतिनिधि के अधिकार के संबन्ध में श्री रामकृष्णजी का दर्शन।

श्री रामकृष्ण जी कलकत्ते के श्यामपुकुर मुहल्ले में इलाज के लिए आकर जब रहते थे, तब एक दिन उन्होंने देखा था कि उन के स्थूल शरीर से अपना सूक्ष्म शरीर बाहर निकलकर घूम रहा है ! एक बार इस के बारे में परमहंसजी ने कहा था—"मैं ने देखा कि उस की सारी पीठ पर घाव हुए हैं ! मैं सोचने लगा, ऐसा क्यों हुआ ? तब माँ ने दिखला दिया कि जो कुछ करके कितने लोग आकर छूते हैं और उन की दुर्दशा (कष्ट) देखकर मन में दया होती है, इस लिए उन को (कुकर्मों के फलों को) लेना पड़ता है ! वह सब लेकर ही वैसा हुआ। इसी लिए तो (अपना गला दिखाकर) यह भी हुआ है। नहीं तो इस शरीर ने कभी कुछ अन्याय (कुकर्म) नहीं किया; फिर इतना (रोग) भोग क्यों हुआ ?" यह बात सुनकर श्री परमहंसजी के शिष्य लोग अवाक्—आश्चर्यचकित—हो गये और वे सोचने लगे कि तब क्या वास्तव में ही एक दूसरों के किये हुए कर्मों का फल भोगकर उन को धर्ममार्ग पर बढ़ा दे सकते हैं ? उन के भक्त शिष्यों में से अनेकों ने परमहंसजी की उस बात को सुनकर उन के प्रति प्रेम के कारण सोचा था—"हाय, हाय ! क्यों हम झूठ कहना, ठगी करना आदि नाना कुकर्म करके उन को छूते हैं ! हाय ! हमारे लिए उन को इतना भोग, इतना कष्ट है ! अब कभी परमहंसजी का देवशरीर नहीं छूयेंगे।"

श्री रामकृष्णजी द्वारा किसी की कोढ़ आराम होना।

इस संबन्ध में श्री रामकृष्णजी की और एक कहानी कही जाती है। किसी समय एक कोढ़ी ने आकर श्री परमहंसजी से कातर (व्याकुल) होकर जिद की और कहा कि आप के एक बार हाथ से छूने से ही वह उस बीमारी से मुक्त हो जायगा। श्री रामकृष्णजी ने उस के प्रति कृपावश होकर कहा—"मैं तो कुछ नहीं जानता हूँ बापू, किंतु तुम कहते हो तो अच्छी बात है, हाथ से छू देता हूँ। माँ की इच्छा होगी तो अच्छे हो जाओगे।" यह कहकर उन्होंने उस को छू दिया। उस दिन दिन भर श्री रामकृष्णजी के हाथ में इतना दर्द हुआ कि उन्होंने अस्थिर होकर जगदम्बा से कहा—"माँ, और कभी ऐसा काम नहीं करूँगा।" परमहंसजी कहते थे—"उस बीमार की तो बीमारी अच्छी हो गई, किंतु उस का भोग (अपना शरीर दिखाकर) इस के ऊपर हो गया।" श्री रामकृष्णचरित की इस प्रकार की घटनाओं से मालूम होता है कि वेद, बाइबिल, पुराण, कुरान तथा तन्त्र आदि आध्यात्मिक-शास्त्र श्री रामकृष्णजी के जीवनदीपक का सहारा लेकर समझने की कोशिश करने पर इस युग में अति सहज में ही—अनायास—समझे जायेंगे। परमहंसजी ने भी स्वयं अपने शिष्यों से कहा था—"अरे, नवाबी अमल के रुपये बादशाही अमल में (अब की अँगरेजी हुकूमत में) नहीं चलते हैं !"

वैसे तो ख्याल होता है कि मुखतारनामा देना बड़ी सहज बात है। मुखतारनामा देने से ही सब कुछ हो गया! फिर क्या है! मनुष्य प्रवृत्ति का दास है। धर्म कर्म करने आकर भी केवल सुभीते की खोज करता रहता है। वह केवल यही देखता रहता है कि कैसे वह इधर उधर—संसार का सुख और भगवदानन्द—दोनों ही पा सके। सांसारिक भोगों का सुख इतना मधुर—इतने अमृत की भाँति—बोध होता है कि उन को छोड़ना है, ऐसा ख्याल होते ही वह दसों दिशा शून्य देखता है। उसे यह ख्याल होता है कि सब छोड़ने से फिर क्या लेकर रहूँगा! इस लिए आध्यात्मिक जगत में मुखतारनामा दिया जा सकता है, यह सुनते ही उस को फुर्ती आ जाती है। वह सोचता है, तब और क्या है? मैं जो कुछ भी करूँ, चाहे चोरी या जुआचोरी करके जितनी खुशी हो, संसार का सुख भोग करूँ; और मैं परलोक में (क्योंकि मरना तो एक दिन होगा ही) जिस से सुखी हो सकूँ वह श्री चैतन्य, यीशु या श्री रामकृष्ण करें! मनुष्य तब (ऐसे चिन्तन में) यह नहीं समझता है कि वह और कुछ नहीं है, वह है केवल इसी पाजी मन की जुआचोरी! वह समझ नहीं सकता कि वह इस भाँति अपने को ही ठुकराता रहा है। उसे मालूम नहीं होता है कि एक दिन उस को अपने पापों की भयंकर मूर्ति देखनी होगी। किंतु अब वह मुखतारनामा के छल पर अपनी आँखों में ऐनक लगाकर सत्यानाश की ओर बढ़ता जा रहा है। वह नहीं जानता है कि एक दिन वह ऐनक हठात खोल दी जायगी और तब वह देखेगा कि हाय, जुआचोर का मुखतारनामा किसी ने भी स्वीकार नहीं किया!

मुखतारनामा देना सहज नहीं है।

मुखतारनामा—बकलमा—देना वैसे आसान नहीं है, विशिष्ट प्रयत्न से—अध्यवसाय से—जब मन में मुखतारनामा देने की अवस्था आ जाती है तभी मनुष्य ठीक ठीक मुखतारनामा दे सकता है और तभी श्री भगवान् भी उस का भार लेते हैं। जब मनुष्य सुखी होने की आशा से संसार के नाना काम काज के लिए दौड़धूप कर वास्तव में देखता है कि वह गूदा छोड़ छिलका ले रहा है, जब वह अपने साध्यानुसार साधन, भजन, जप, तप करके दिल ही दिल में समझ लेता है कि अनन्त भगवान् को प्राप्त करने के लिए वह उपयुक्त (काफी) मूल्य नहीं है, जब वह अदम्य उद्यम से कोई दुःसाध्य काम करने के लिए तैयार होकर समझ जाता है कि उस को कोई सामर्थ्य नहीं है तब वह कातर वाणी से पुकारने लगता है कि 'कहाँ हो विपद्-भञ्जन! मेरी रक्षा करो!'

किस अवस्था में मुखतारनामा दिया जा सकता है?

और तभी श्री भगवान् भी उस का मुखतारनामा स्वीकार करते हैं। और नहीं तो साधन भजन करना या श्री भगवान् को पुकारना मुझे अच्छा नहीं लगता और यथेच्छ आचरण करना ही अच्छा लगता है इस लिए वैसा ही करूँगा, एवं कोई उस के लिए प्रतिवाद करेगा, तो कह दूँगा कि 'क्यों? मैं ने तो भगवान् को ही मुखतारनामा दे दिया है! वे ही मुझ से ऐसा करा लेते हैं, मैं क्या करूँ? मेरे मन को वे घुमा क्यों नहीं देते?' इस भाँति मुखतारनामा केवल दूसरों को धोखा देने के लिए है और स्वयं भी धोखा खाने के लिए है। इस से 'इतो नष्टः ततो भ्रष्टः' ही हुआ करता है।

मन की जुआचोरी से होशियार।

और एक तरह से आलोचना करने पर यह बात भली भाँति समझी जायगी। मान लीजिए कि आप ने भगवान् को मुखतारनामा दे दिया है। और आप को श्री भगवान् के पुकारने की, या साधन भजन करने की, कोई आवश्यकता नहीं है। किंतु यह निश्चय जानिए कि ठीक ठीक मुखतारनामा देने से आप के दिल में सर्वदा उन की करुणा की बात का ख्याल होता रहेगा। यह अनुभव होगा कि मैं इस अपार संसारसमुद्र में पड़कर डूब रहा था कि

उन्होंने कृपया मेरा उद्धार किया है! देखिए ऐसे अनुभव द्वारा उन पर आप के कितने प्रेम और भक्ति का उदय होगा! आप का हृदय उन के लिए कृतज्ञता और प्रेम से पूर्ण हो जायगा और सर्वदा ही आप उन्हीं को सोचते रहेंगे और उन्हीं का नाम भी लेते रहेंगे।

मुखतारनामा की अन्तिम बात।

सर्प की भाँति क्रूर–खल–भी प्राणी आश्रय देनेवाले के प्रति कृतज्ञ होकर वास्तु साँप हो जाता है और किसी को डसता नहीं। मनुष्य का हृदय क्या उस से भी नीच है कि जिन्होंने उस का इस लोक और परलोक का भार लिया उन के प्रति कृतज्ञता और प्रेम से पूर्ण नहीं होगा? अतः भगवान् को मुखतारनामा देकर यदि उन को पुकारना—उन का मान करना—किसी को अच्छा न लगे, तो समझना चाहिए कि उस का मुखतारनामा देना सफल नहीं हुआ और भगवान् ने भी उस का भार नहीं लिया। 'मुखतारनामा दिया है' सोचकर स्वयं धोखा नहीं खाना और अपाप-विद्ध–निष्कलङ्क–भगवान् में अपनी दुष्कृतिओं–पापों–की कालिमा (कलङ्क) का अर्पण नहीं करना चाहिए। उस में अपनी ही हानि और अकल्याण है। श्री रामकृष्णदेवजी की 'ब्राह्मण की गोहत्या' की बात याद रखिए—

श्री रामकृष्णजी की गोहत्या की बात।

किसी ब्राह्मण ने बहुत प्रयत्न से एक बगीचा बनाया था। उस में हर एक प्रकार के फल फूल के पेड़ लगाये गये थे। उन को दिनों दिन भली भाँति बढ़ते देखकर ब्राह्मण के आनन्द की सीमा न रही। एक दिन दरवाजा खुला हुआ पाकर एक गाय उन पेड़ों को तोड़ने और खाने लगी। ब्राह्मण किसी काम से कहीं गया था। उस ने आकर देखा कि गाय उस समय तक भी पेड़ों को खा रही थी। उस ने गुस्से में गाय को लाठी से ऐसी एक चोट मारी कि मर्मस्थान पर आघात लगने से गाय वहीं मर गई! तब ब्राह्मण को डर हुआ कि–'हाय, हिंदू होकर मैं ने गोहत्या की!—गोवध से बढ़कर कोई पाप नहीं है।' ब्राह्मण ने कुछ वेदान्त पढ़ा था। उस ने उस में लिखा देखा था कि विशिष्ट देवताओं की शक्ति से शक्तियुक्त होकर मनुष्य की इन्द्रियाँ अपने अपने कार्य किया करती हैं। जैसे—सूर्य की शक्ति से आँखे देखती हैं, पवन की शक्ति से कान सुनते हैं और इन्द्र की शक्ति से हाथ काम काज किया करते हैं। ब्राह्मण को जब वे बातें याद आ गईं तो वह सोचने लगा कि 'तब तो गोहत्या मैं ने नहीं की, इन्द्र की शक्ति द्वारा हाथ प्रेरित हुआ है और तब तो इन्द्र ने ही गोहत्या की।' इसी बात का ख्याल कर ब्राह्मण निश्चिन्त हुआ।

इधर गोहत्या का पाप ब्राह्मण के शरीर में घुसना चाहा, तो ब्राह्मण के मन ने उसे हटा दिया और कहा—'जाओ, यहाँ तुम्हारे लिए स्थान नहीं है; गोहत्या तो इन्द्र ने की है, उन के पास जाओ।' इस लिए पाप इन्द्र के पास गया। इन्द्र ने पाप से कहा—'जरा ठहर जाओ, मैं ब्राह्मण से दो एक बात कर आता हूँ, उस के बाद मुझे पकड़ना।' यह कहकर इन्द्र मनुष्यरूप धारण कर उस ब्राह्मण के उद्यान—बगीचे—में पहुँचा। वहाँ जाकर वह देखता है कि ब्राह्मण कुछ दूरी पर खड़ा है और बगीचे की देखरेख कर रहा है। इन्द्र बगीचे की शोभा देखता हुआ, ब्राह्मण के कानों तक पहुँच जाय ऐसी आवाज में प्रशंसा करता हुआ धीरे धीरे ब्राह्मण की ओर बढ़ने लगा। इन्द्र कह रहा था—'अहो, कैसा सुन्दर बगीचा है! कैसी रुचि के साथ पेड़ों को लगाया गया है! जहाँ जिस की जरूरत है वहीं उस को बोया गया है!' इस प्रकार कहते कहते इन्द्र ब्राह्मण के पास जाकर पूछता है—'महाशय, आप कह सकते हैं, यह बगीचा किस का है? इस भाँति इन सुन्दर पेड़ों को किस ने लगाया है?' ब्राह्मण अपने

बगीचे की प्रशंसा सुनकर गद्गद होकर कहने लगा— 'जनाब, यह मेरा ही बगीचा है। मैं ने ही ये सब वृक्ष लगाये हैं! आइए न; भलीभाँति घूमकर देखिए।' यह कहकर बगीचे के संबन्ध में नाना बातें करते करते ब्राह्मण इन्द्र को बगीचे में के सब कुछ देखाता रहा। चलते चलते भूलकर जहाँ मरी गाय पड़ी थी वहाँ दोनों जा पहुँचे। अब इन्द्र मानों एकाएक आश्चर्यचकित होकर पूछता है—'राम, राम, यहाँ गोहत्या किस ने की है?' ब्राह्मण अब तक बगीचे के सभी कुछ 'मैं ने किया, मैं ने किया' ऐसा कहता था। इस लिए 'गोहत्या किस ने की' पूछे जाने पर वह एक दम घबड़ा गया और बिल्कुल निर्वाक्—चुप—रह गया। तब इन्द्र, अपना रूप धारण कर ब्राह्मण से कहने लगा—'क्यों रे भण्ड! उद्यान के जो कुछ अच्छे हैं सो सब तो तू ने किया, गोहत्या ही केवल मैं ने की? ले अपनी गोहत्या का पाप।' यह कहकर इन्द्र अन्तर्हित (गायब) हुआ और पाप ने भी आकर ब्राह्मण के शरीर पर अधिकार किया!

अब हम पूर्व प्रसंग का अनुसरण करें। श्री रामकृष्णजी को जिन भक्तों ने देखा था और उन से उपदेश भी पाया था, पूछने पर वे सभी मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं कि पहले परमहंसजी की बातों का जैसा मतलब समझने में आता था, अब जितने दिन बीतते जा रहे हैं उतने ही उन के उपदेशों के गम्भीर अर्थ का बोध होता जा रहा है। जिन्होंने उन का दर्शन किया था वे भक्त कहते थे कि परमहंसजी की बहुत सी बातों या व्यवहारों का मतलब समझ में नहीं आता था, हम खाली सुनते गये, किंतु हाँ, अब कालक्रम से उन के अपूर्व अर्थ और भाव की उपलब्धि करके हमें अवाक् होना पड़ता है। श्री रामकृष्णजी का कहना ही था कि—"अरे, समय पर

साधक के मन की उन्नति के साथ साथ श्री रामकृष्णजी के उपदेशों के गम्भीर अर्थ का बोध होना।

होगा, समय पर समझेगा। बीज के बोने से क्या उसी समय फल मिलता है? पहले उस से अङ्कुर जमेगा। उस के बाद अङ्कुर बढ़कर पेड़ होगा। बाद को पेड़ के बड़े होने पर उस में फूल आयगा। उस के बाद फल होगा। (इसी प्रकार साधन जगत् में भी हुआ करता है।) हाँ, यह अवश्य है कि उस में (साधन में) लगा रहना चाहिए। छोड़ देने से नहीं होगा। इस गाने में क्या कहा गया है, सुनो।" यह कहकर श्री रामकृष्णजी मधुर कण्ठ से गाना गाते—

"हरि से लागि रहो रे भाई।
तेरा बनत बनत बनि जाई—
तेरी बिगड़ी बात बनि जाई॥
अंका तारे बंका तारे,
तारे सुजन कसाई।
(अउर) शुगा पढ़ाय के गणिका तारे,
तारे मीरा बाई॥
दौलत दुनिया माल खजाना,
बेनिया बैल चलाई।
(अउर) एक बात को टंटा पड़े, तो
खोज खबर ना पाई॥
ऐसी भक्ति कर घट भीतर,
छोड़ कपट चतुराई।
सेवा बंदि अउर अधीनता
सहज मिली रघुराई॥"

जब यह गाना गाते, तो आप कहते थे—"उन की सेवा, वन्दना और अधीनता! देखो, कैसा दीन भाव है! ऐसे भाव से विश्वास कर पड़े हुए रहते रहते सब होगा; उन का दर्शन मिलेगा ही। किंतु ऐसा न कर (साधन भजन) छोड़ देने से बस उतना ही होता है (जितना करते हुए

साधन में लगा रहना चाहिए।

छोड़ दिया जाता है)। कोई नौकरी करके किसी प्रकार कुछ रुपये एकट्ठा किया था। एक दिन गिनकर देखा कि उस के पास हजार रुपये जमा हो गये। उसी आनन्द में भूलकर उस ने ख्याल किया कि अब नौकरी क्या करें? हजार रुपये तो जमा हो ही गये, और क्या होगा? यह सोचकर उस ने नौकरी छोड़ दी। उस का थोड़ा सा आधार और थोड़ी सी आशा थी। उतना पाकर ही वह उबल उठा और ढींग मारने लगा। उस के बाद? रुपये तो हजार ही ठहरे! खर्च होने में कितने दिन लगते? थोड़े दिनों में ही सब रुपये खर्च हो गये। तब दुःख और कष्ट से फिर नौकरी के लिए इधर उधर भटकने लगा! इस प्रकार करने से नहीं चलेगा। (साधन भजन कर थोड़ा बहुत आनन्द पाकर उस को छोड़ना नहीं चाहिए।) उन के—भगवान् के—दरवाजे पर पड़ा रहना चाहिए, तब होगा।"

फिर श्री रामकृष्णजी उस गाने का अन्तरा—'तेरा बनत बनत बनि जाई' अर्थात् भक्ति करते करते फल पाया जायगा—गाते गाते कहने लगे—

स्त्रीस्वभाव की—मृदु—भक्ति छोड़ देनी चाहिए।

'बनत बनत' क्या है? वैसी स्त्री-स्वभाव की भक्ति नहीं करनी चाहिए। मन में जोर करना—विश्वास रखना—चाहिए कि अभी होगा, अभी उन को प्राप्त करूँगा। स्त्रीस्वभाव की—मृदु—भक्ति से उन की प्राप्ति नहीं हो सकती है।"

श्री रामकृष्णदेव परमहंसजी को देखने से वास्तव में ख्याल होता कि मानों वे एक ज्वलन्त भावघनमूर्ति थे! वे धर्मभावपुञ्ज के पूँजीदार थे।

भावघनमूर्ति श्री रामकृष्णजी के हर एक भाव के साथ दैहिक परिवर्तन।

मानसिक भाव के परिवर्तन के साथ साथ शरीर का भी परिवर्तन होने की बातें खाली सुनी ही जाती हैं। शायद बड़ी कठिनता से कोई कभी इस का थोड़ा बहुत अनुभव भी करते होंगे। किंतु साधारण लोग मानसिक-भावतरङ्गों से शरीर के इस भाँति परिवर्तन की बात स्वप्न में भी सोच नहीं सकते। निर्विकल्प समाधि में श्री रामकृष्णजी का अहंज्ञान एकदम लुप्त हो जाता था। उस अवस्था में उन के हाथ की नाड़ी और हृदय का स्पन्दन भी बंद हो जाता। गलरोग की चिकित्सा (इलाज) के लिए जब कलकत्ते के श्यामपुकुर मुहल्ले में श्री रामकृष्णजी रहते थे, तो एक दिन भक्तों के सामने परमहंसजी की निर्विकल्प समाधि हुई थी। वहाँ उस समय कलकत्ते के बड़े डाक्तर श्रीयुत महेन्द्रलाल सरकार उपस्थित थे। उन्होंने यन्त्र के सहारे जाँच करके श्री रामकृष्णजी के हृत्पिण्ड का कार्य कुछ भी चालू नहीं देख पाया। इस परीक्षा से भी संतुष्ट न होकर दूसरे एक डाक्तर बन्धु ने परमहंसजी की आँखों की पुतलियों को स्पर्श किया। मुर्दे की जैसी वे पुतलियाँ कुछ भी संकुचित नहीं हुईं। 'सखिभाव' से साधन के समय अपने को श्री कृष्ण की दासी सोचते सोचते मन ऐसा तन्मय हो गया कि उस तन्मयता के साथ ही उन के शरीर में भी स्त्रीस्वभाव के भाव आ गये। उठना, बैठना, खड़ा होना या बात करना आदि हर एक कार्य में उन को स्त्रीस्वभाव के भाव ऐसे प्रकट हुए कि श्रीयुत मथुरानाथ आदि जो चौबीसों घंटे उन के साथ उठते बैठते थे उन्होंने भी कई बार परमहंसजी को देखकर उन को कोई नई आगन्तुक स्त्री मानकर भूल की। इस भाँति कितनी ही घटनाएँ परमहंसजी के भक्त लोगों ने देखी हैं और परमहंसजी के अपने मुँह से भी सुनी गई है, जिस से वर्तमान मनोविज्ञान और शरीरविज्ञानों के नियमित नियम उलट जाते हैं। क्रमशः उन के जीवन की मुख्य घटनाएँ बतलाई जायेंगी।

श्री रामकृष्णदेवजी के जीवन का सब से अधिक आश्चर्य का विषय यह देखा गया कि उन में भावराज्य के चारों ओर विचरण करने का अद्भुत सामर्थ्य था। वे छोटे बड़े सभी तरह के भाव समझ सकते थे। श्री रामकृष्णदेवजी अनायास जान लेते थे कि बालक, युवा, वृद्ध किस में क्या मनोभाव है। विषयी, साधु, ज्ञानी, भक्त, स्त्री, पुरुष—सभी के मन में होनेवाले भावों को पकड़कर कौन किस मार्ग से—किस भाव से—धर्मराज्य में कितना आगे बढ़ गया है, पहले के संस्कारों के अनुसार उस मार्ग द्वारा आगे बढ़ने के लिए उस को वर्तमान में किस तरह साधनाओं की आवश्यकता है, ये सभी बातें परमहंसजी समझ जाते और उन के हर एक की अवस्था के अनुसार ठीक ठीक व्यवस्था भी कर सकते थे। श्री रामकृष्णजी को देखकर और उन के विषय में विचार कर यह ख्याल होता था कि वे मानों मनुष्यों के मन में आज तक जितने भाव प्रकट हुए होंगे, प्रकट होते हैं और जो आगे होंगे उन सभी भावों का अपने जीवन में अनुभव कर चुके। उन भावों के हर एक के, अपने मन में, प्रकट होने से लेकर अदर्शन होने तक क्रम से उन की जैसी जैसी अवस्थाएँ हुई थीं, उन का भी भली भाँति स्मरण रखते थे। इसी लिए जो कोई भी मनुष्य आकर जब उन से अपने किसी भी भाव की बात कहता, तो परमहंसजी उस भाव को पहले अनुभव किये अपने भाव के साथ मिलाकर तत्क्षण पकड़ लेते और उस के उपयोगी विधान भी कर देते थे। सभी विषयों में यही बात थी। माया, मोह, संसार के ताप और त्याग वैराग्य के अनुष्ठान आदि किसी भी विषय की किसी भी अवस्था में पड़कर उस से उद्धार होने के मार्ग की खोज न पाकर किसी के उन के पास जिज्ञासु होकर आने से श्री रामकृष्णजी मार्ग की खोज तो बतला ही देते, साथ ही बहुत समय, अपने को उस अवस्था में पड़कर

श्री रामकृष्णजी का सभी तरह के भावों के समझने का सामर्थ्य।

जिस प्रकार अनुभव हुआ था, वह भी कह दिया करते थे। आप कहते थे कि 'अहो, तब ऐसा हुआ था, इस भाँति अनुभव हुआ और ऐसा किया था' इत्यादि। इस भाँति कहने से जिज्ञासु के मन में कितनी ही आशा भरोसा का संचार हो जाता और परमहंसजी उस के लिए जिस मा... की खोज बतला देते उस में बड़े विश्वास और उत्साह से वह आगे बढ़ जाता। केवल इतना ही नहीं, किंतु इस भाँति अपने जीवन की घटनाएँ कहने से जिज्ञासु को ख्याल होता था कि अहो, परमहंसजी मुझ से कितना प्रेम करते हैं! इतना प्रेम है कि अपने मन की बातें भी कह देते हैं। दो एक दृष्टान्त से ही इस विषय को भली भाँति समझ जायगा।

कलकत्ते के सिंदुरिया पट्टी मुहल्ले में रहनेवाले श्री मणिमोहन मल्लिक के एक सुयोग्य पुत्र की मृत्यु हुई। मणिमोहन पुत्र का अन्तिम संस्कार कर श्री रामकृष्णजी के पास आए, उपस्थित हुए। वे परमहंसजी को प्रणाम कर विमर्ष भाव से घर के एक कोने में बैठ गये। उन्होंने देखा कि घर में स्त्री पुरुष अनेक जिज्ञासु भक्त बैठे हुए हैं और परमहंसजी उन के साथ नाना सत्प्रसंग पर बातें कर रहे हैं। बैठने के कुछ देर बाद ही श्री रामकृष्णजी की नजर मणिमोहन के ऊपर पड़ी और सिर झुकाकर परमहंसजी ने पूछा—'क्या? आज ऐसा रूखापन क्यों देख रहा हूँ?' मणिमोहन ने गद्गद कण्ठ से उत्तर दिया—(पुत्र का नाम कहकर) अमुक आज मर गये।

दृष्टान्त—मणिमोहन के पुत्रशोक की बात।

वृद्ध मणिमोहन का रूखा भेस देखकर और शोक से गद्गद वाणी सुनकर घर के सब लोग स्तम्भित और नीरव हो गये। सभी ने समझ लिया कि वृद्ध के हृदय की गहरी मर्मवेदना और शोक का आवेग वाक्य द्वारा (समझा बुझाने से) रुद्ध होनेवाला नहीं है; तथापि वृद्ध के विला...

और रुदन से दुखी होकर सभी नाना बातों से उन को शान्त करने लगे कि देखिए संसार का नियम ही उस प्रकार का है। सभी को एक दिन मरना होगा, हजारों रुदन से भी जो गया है वह फिर आनेवाला नहीं है; अतः शोक का त्याग करिए, सहन कीजिए। इसी ढंग से मनुष्य शोकसंतप्त नर नारियों को सांत्वना देते आये हैं; किंतु हाय, कितनों का हृदय इस से शान्त हुआ है? हो भी कैसे? मन, मुख और आचरण तीनों ही जब एक भाव से भावित होंगे तभी हमारे वचन दूसरों के हृदय तक पहुँचेंगे और वे उन की शान्ति के कारण होंगे। किंतु यहाँ उस का एकान्त अभाव है! हम मुँह से तो कहते हैं कि संसार अनित्य है, किंतु चिन्तन और कार्य द्वारा उस के विपरीत अनुष्ठान किया करते हैं। 'रात के स्वप्न की भाँति यह संसार अनित्य और झूठा है' दूसरों को ऐसा उपदेश देकर स्वयं हम अन्तःकरण से उस को नित्य मान बैठते हैं और चिरकाल यहीं रहने का बंदोबस्त करने लगते हैं। इस लिए साधारण मनुष्य के वचन में उतनी शक्ति कहाँ से आ सकती है?

और सब लोग तो मणिमोहन को उस प्रकार की नाना बातों से समझाते रहे, किंतु श्री रामकृष्णदेवजी बहुत देर तक कोई भी बात न कहकर मणिमोहन के शोक का केवल उच्छ्वास ही सुनते गये। परमहंसजी का, उस समय का, उदासीन भाव देखकर कोई कोई तो विस्मित होकर सोचने भी लगे—इन का हृदय क्या कठोर है, क्या करुणा-शून्य है?

वृद्ध की बात सुनते सुनते कुछ देर बाद श्री रामकृष्णजी अर्द्धबाह्य दशा (भावसमाधि) को प्राप्त हुए एवं एकाएक तालियाँ ठोककर खड़े हो गये और श्रीयुत मणिमोहन को लक्ष्य कर अपूर्व ढंग से गाना गाने लगे—

'जीव साज समरे।
ऐ देख रणवेशे काल प्रवेशे तोर घरे।
आरोहण करि महापुण्य रथे,
भजन साधन दुटो अश्व जुड़े ताते
दिये ज्ञानधनुके टान
भक्ति ब्रह्मवाण संयोग कर रे।
आर एक युक्ति आछे शुन सुसंगति,
सब शत्रुनाशेर चाहने रथ रथी
रणभूमि यदि करेन
दाशरथि भागिरथीर तीरे॥'†

इस गाने के वीररसयुक्त सुर और उस की अनुयायी अङ्गभङ्गी ने, श्री रामकृष्णजी की आँखों से निकले हुए वैराग्य और तेज के साथ मिलकर, सभी के हृदय में उस समय एक अपूर्व आशा भरोसा एवं उद्यम का स्रोत बहा दिया। सभी का मन उस समय शोक मोह के राज्य से उठकर एक अपूर्व इन्द्रियातीत तथा संसारातीत विमल ईश्वरीय आनन्द से पूर्ण हो गया। मणिमोहन भी उस आनन्द का, दिल ही दिल में, अनुभव कर उस समय अपना शोक ताप भूल गये और स्थिर, गम्भीर तथा शान्त होकर बैठे रहे।

गाना तो पूरा हुआ, किंतु गाने के कई वाक्यों से श्री रामकृष्णजी ने जिस भावतरङ्ग को उठाया था उस से बहुत देर तक घर में आनन्दप्रवाह जमा रहा। ईश्वर

† श्री रामकृष्णजी के गाये हुए बँगला भाषा के इस गाने का तात्पर्य यह है कि—काल (मृत्यु) का आना देखकर जीव उस से लड़ने को तैयार हो जाय। लड़ने का उपाय भी बतलाया गया कि भजन और साधनरूप दोनों घोड़ों से जोड़े हुए महापुण्यरूप रथ पर चढ़कर ज्ञानरूप धनुष् में भक्तिरूप ब्रह्मवाण को लगावे। दूसरा उपाय यह है कि जीवनसंग्राम का क्षेत्र यदि कहीं भागीरथी (गङ्गा) के किनारेपर हो, तो सब शत्रुओं के नाश के लिए और कोई रथ रथी आदि कुछ भी नहीं चाहिए।

ही अपना है ; मन प्राण उन को अर्पण किया ; वे कृपा करें और दर्शन दें । इस प्रकार के भाव से अपने को भूलकर सभी स्थिर हो बैठे रहे ।

कुछ देर बाद श्री रामकृष्णजी की भावसमाधि भङ्ग हुई और वे मणिमोहन के पास बैठकर कहने लगे—"अहा! पुत्र शोक के बराबर जलन (दुःख) और क्या है ? इसी खोल—देह—से वह निकलता हैं, न ? इसी खोल—शरीर—के साथ उस का संबन्ध भी रहता है ।" यह कहकर परमहंसजी अपने भतीजा अक्षय की मृत्यु की बात दृष्टान्तस्वरूप कहने लगे । परमहंसजी बड़े ही विमर्ष और गम्भीर भाव से बातें करते थे । आप की बातों से स्पष्टतः ऐसा बोध होता था कि मानों वे अपने आत्मीय (अक्षय) की मृत्यु फिर आँखों के सामने देख रहे हैं । उन्होंने कहा—"अक्षय मर गया; (किंतु) उस समय कुछ नहीं हुआ । मनुष्य कैसे मरता है, अच्छी तरह खड़े खड़े देखा । देखा कि मानों कोश—म्यान—के भीतर तलवार थी, उसे म्यान में से बाहर निकाल लिया गया । तलवार का कुछ नहीं हुआ, वह जैसी की तैसी रही; खाली कोश—शरीर—ही पड़ा रहा ! ऐसा देखकर खूब आनन्द हुआ, खूब हँसा, गाना गाया और नाचा ! उस का शरीर तो फूँका गया, किंतु उस के दूसरे दिन (दक्षिणेश्वर में, अपने रहने के घर के पूर्व, कालीमन्दिर के आँगन के सामने बरामदा की ओर दिखाकर) मैं [illegible] खड़ा था । खड़े खड़े ख्याल होने लगा कि मानों दिल [illegible] अंदर कोई वैसे ही निचोड़ रहा है जैसे कोई अँगो[illegible] निचोड़ता है । उस समय सोचा कि माँ, यहाँ के (मे[illegible] कमर के कपड़े (धोती) के साथ ही संबन्ध नहीं है, भतीजा के साथ फिर कितना था ! यहाँ का (मेरा ही जब ऐसा हो रहा है तब न जाने गृहस्थों का कैसा श[illegible] हुआ करता होगा !—माँ, उसी को तू ने मुझे [illegible] लाया, न ?"

कुछ क्षण बाद श्री रामकृष्णजी फिर कहने लगे "किंतु, जानते हो ?—(सच तो यह है कि) जो उन (भगवान् को) पकड़े रहते हैं वे विषम शोक में भी दम से डूब नहीं जाते । वे थोड़ा सा धक्का खाकर सँभल जाते हैं । छोटे से दिलवाले एक दम अस्थिर [illegible] जाते हैं या डूब जाते हैं । क्या, नहीं देखा ?—गङ्गा [illegible] जहाजों के चलने पर छोटी छोटी नावें कैसा डग मग क[illegible] हैं ? ख्याल होता है कि मानों एक दम से (डूब) [illegible] अब सँभल नहीं सकेंगी । कोई कोई तो उलट भी जा[illegible] हैं । किंतु बड़ी बड़ी, हजार हजार मन की चीजें लेनेवा[illegible] किश्तियाँ दो चार बार इधर उधर हिलकर फिर जैसी [illegible] तैसी स्थिर हो जाती हैं ।"

(क्रमशः)



कस्यस्विद्धनम्

(ले०—श्री मोहनशर्मा चतुर्वेदी)

एक ओर वेकारी मुँह फैलाये खड़ी है, दूसरी ओर विलासिता का जाल फैला हुआ है। एक ओर महासंग्राम हो रहे हैं, दूसरी ओर आत्महत्याओं का बाजार गर्म है। एक ओर मनुष्यता धूल में मिलाई जा रही है, दूसरी ओर सभ्यताविस्तार का डंका वजाया जा रहा है। यह अवस्था है आज के जगत् की।

थोड़ा और पीछे लौटिए। लोग विलासिता से ऊबे हुए, राजपाट छोड़कर भिक्षु वन रहे हैं। सर्वस्वत्यागी वनकर शान्ति का संदेश सुना रहे हैं। यह अवस्था है वौद्धकाल की।

और पीछे की ओर जाने पर महाभारत के मैदान में अनेक अक्षौहिणियों का संहार हो रहा है। यह है चक्र। इस का पूरा नाम है कालचक्र। अपनी चाल से वह वरावर चलता रहता है। उसे न देखने की फुरसत है और न ठहरने की। परंतु कालचक्र के आधार पर नाचनेवाले लोग अमरता की दुहाई देकर आज भी अपना सर्वनाश कर रहे हैं। समझते हैं हम अमर हैं, फिर भी अपनी समझ के सामने मर रहे हैं। उन्हें मृत्यु से थोड़ा भी भय नहीं है। पहले भी यही गति थी। क्या अन्याय और अत्याचार की आँधी में भीष्मपितामह और आचार्य द्रोण अछूते बचे! यद्यपि वे उपदेशक थे, तत्त्वज्ञानी थे; फिर भी वे गुलाम थे। कोई भी गुलाम आज तक न तो तत्त्वज्ञानी हो सका है और न उसे उपदेश देने का अधिकार ही प्राप्त हुआ है। फिर भी वे तत्त्वज्ञानी ही थे और थे उपदेशक। यह तो अपनी अपनी मान्यता है। आज भी ज्ञान से कोरे हमें ज्ञान देने का दम्भ करते हैं। आज भी आचार से शून्य हमें सदाचारी वनाना चाहते हैं और हम भी उन्हीं की तारीफ करते, उन्हीं को शिरमाथे पर चढ़ाते हैं।

कौन हिंदू नहीं कहता कि महाभारत का सूत्रपात करानेवाला, इतने वड़े जनसमुदाय का संहार करानेवाला एक ज्ञानी—तत्त्वज्ञानी (?) था! क्या तत्त्वज्ञान का अर्थ शान्ति नहीं, संहार है?

लोग कहते हैं महाभारतयुद्ध के एकमात्र कारण कृष्ण थे। कृष्ण चाहते तो इसे रोक सकते थे, परंतु मेरी समझ में ऐसा समझना अपने आप को धोखे में रखना है।

वारणावत में पाण्डवों को जलने के लिए भेजनेवाले क्या कृष्ण थे? सभा में एक स्त्री को दुर्वचन कहनेवाले, उस की इज्जत लेनेवाले क्या कृष्ण थे? यदि इस सब का उत्तर 'नहीं' ही हो सकता है, तव क्या महाभारत का मूल ये घटनाएँ नहीं हैं! यदि महाभारत की ये घटनाएँ महाभारत का वीज हैं, तव तो कृष्ण को इस संहार का कारण मान लेना भूल है। तव फिर इस का कारण कौन?

संसार जानता है, दुर्योधन कौरवों का राजा था। राजा के पास अधिकार होता है, शक्ति होती है, धन होता है। दुर्योधन के अधिकार ने द्रौपदी को नंगी करना चाहा, उस की शक्ति ने—उस के धन ने पाण्डवों को लाख के घर में जलने के लिए

भेजा। दुर्योधन के पास द्रोणाचार्य का बल था। ये ब्राह्मण थे। भीष्म का बल था। ये तत्त्वज्ञानी थे। द्रोणाचार्य और भीष्मपितामह की आँखों के सामने एक स्त्री को, साक्षात् जगदम्बा महामाया की अंशभूता (स्त्रियः समस्ता तव देवि भेदा) नारी को नंगी करना चाहा, अपमानित किया। ये लोग यदि चाहते, तो क्या उसे इस कार्य से रोक नहीं सकते थे? वारणावतकाण्ड का सारा रहस्य मालूम रहने पर भी क्या ये लोग ऐसे अत्याचारी को दण्ड नहीं दे सकते थे? अलावा इस के कि ये उसे दण्ड दें, इस कार्य से निवृत्त करें, रोकें, ये लोग मौन बने चुपचाप देखते रहे। संग्राम के अवसर पर भी क्या इन्हीं लोगों ने नहीं कहा था—

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्य चित्।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः॥

म० भी० ४३।४१. ५६.

पुरुष तो धन का दास है, धन पुरुष का दास नहीं है। इसी सत्य से कौरवों के दिये हुए धन के कारण हम उन के साथ हैं।

वाह! क्या अच्छा तत्त्वज्ञान है, क्या अच्छी नीति है, क्या अच्छा उपदेश है! कोई हमें एक हजार की गठरी दे दे, और हम उस के अन्याय और अत्याचार का समर्थन करें, उस का साथ दें, अन्याय और अत्याचार की वृद्धि करें। क्या इस प्रकार के मनुष्य ही तत्त्वज्ञानी कहलाते हैं, क्या ऐसे ही लोगों को उपदेश देने का अधिकार है?

धन ही सब कुछ; मनुष्यता कुछ भी नहीं! क्या यही भारतवर्ष का सिद्धान्त हो सकता है? क्या यही सदाचार का मूल हो सकता है? यदि नहीं, तो ये लोग ही उस संहार के कारण हैं, यह मानने में कौन आना कानी कर सकता है? कृष्ण तो इन सिद्धान्तों के सर्वथा विरोधी रहे। धन के लिए मनुष्यता का संहार करनेवाले जरासंध को मारनेवाले कौन थे? कृष्ण। धन की दासता में आकर नरसंहार करानेवाले भीष्म और द्रोण को इस दुनियाँ से विदा करनेवाले कौन थे? कृष्ण। मनुष्यता पर धन का प्रभुत्व कायम रखने वाले कंस को नष्ट करनेवाले कौन थे? कृष्ण। फिर कौन कह सकता है कि कृष्ण मनुष्यों और मनुष्यता का संहार करनेवाले थे! उन्होंने तो सरे आम अपना संदेश सुनाया था—

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्

गी० ३।१३.

अपने भोग के लिए ही पकानेवाले, संग्रह करने वाले पाप ही खाते हैं, पाप का ही संग्रह करते हैं।

दूसरे शब्दों में—

तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।

गी० ३।१२.

दूसरों को विना दिये, अथवा दूसरों की खबरगीरी रखे विना धन का भोग करनेवाले चोर हैं।

धन को चाहे खुद उपभोग करे, चाहे अपने लिए नौकर चाकर रखने, उन की स्वतन्त्रता को नष्ट करने में व्यय करे, हैं दोनों एक ही बात। इस प्रकार का व्यय, इस प्रकार का उपभोग सिवाय पाप के और कुछ नहीं है। ऐसा आदमी पापी है, चोर है। धन से मनुष्यता खरीदनेवाला जब चोर और पापी हो सकता है तब जो धन की एवज में अपने आप को बेचता है, क्या वह उस का सहकारी अथवा सहयोगी नहीं हो सकता? मैं तो कहूँगा अवश्य होता है, भगवान् कृष्ण ने

जो वास्तव में तत्त्वज्ञानी थे, जो सच्चे उपदेष्टा थे, हमारे सामने आदर्श रखा है। उन्होंने समाज की शान्ति को भङ्ग करनेवाले, पाप फैलानेवाले लोगों को मनुष्यता की रक्षा के लिए समाज से अलग कर दिया है, संसार से विदा कर दिया है। उन्होंने संसार के धन की इकाई को विभक्त नहीं होने दिया। समस्त धन को यज्ञ बना दिया है। इस यज्ञ के साथ ही प्रजा की सृष्टि हुई है, ऐसा उन्होंने अनेक वार कहा है—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥

गी० ३।१०.

प्रजापति ने यज्ञ के साथ ही प्रजा की सृष्टि की है। यह यज्ञ प्रजा की इच्छा को पूरा करनेवाला है।

भला वही यज्ञ आज अयज्ञ वन रहा है। वही धन आज प्रजा का सहायक नहीं, रक्षक नहीं, भक्षक वन रहा है। उस ने मनुष्यता को खरीद लिया है। मनुष्य पर शासन करना सीख लिया है। गुलाम बनानेवाला धन क्या आज यज्ञ हो सकता है? क्या वह आज मनुष्य समाज की, मनुष्यता की रक्षा कर सकता है?

प्रजापति ने प्रजा के साथ यज्ञ की सृष्टि की थी। यज्ञ की सृष्टि प्रजा के लिए की गई थी। उस समय प्रजा की एक इकाई थी और यज्ञ की भी एक इकाई थी। एक एक के लिए था। धीरे धीरे प्रजा की इकाई अनेकों में बँट गई, परंतु यज्ञ की इकाई एक ही बनी रही। अनेक प्रजा ने प्रत्येक अपने अपने को एक एक इकाई मानकर यज्ञ की इकाई पर कब्जा करना शुरू किया। यहीं विषमता का बीज बोया गया। 'सर्वभूतेषु आत्मवत्' का सिद्धान्त ठुकराया गया। मनुष्यता को कुचला गया। अमीर और गरीब, छोटे और बड़े की सृष्टि हुई। यज्ञचक्र वन्द हो गया। चारों ओर पाप ही पाप दिखाई देने लगा। धर्म की इसी ग्लानि पर महापुरुष आये, अवतार आये और पुनः धर्म की स्थापना की। वेद के इस परम सत्य का प्रचार किया।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचित् जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥

यजु० ४०।१

समस्त जड़ जङ्गम चराचर ऐश्वर्य में ही निवास करता है अर्थात् जड़ जङ्गम चराचर जगत् के ही लिए समस्त ऐश्वर्य है, किसी एक के लिए नहीं। इस लिए इस ऐश्वर्य के स्वामीपने को छोड़कर, उन सब की अपने ही लिए आकाङ्क्षा न करते हुए भोग करो, क्योंकि यह धन (ऐश्वर्य) किस का है? अर्थात् सब स्थावर जङ्गम चराचर जगत् का; किसी एक का नहीं।

धन की आज की विषमता ने समस्त विश्व को जिस दुःख और शोक में पटक दिया है वह किसी से छिपा नहीं है। जबर्दस्ती लोगों ने उस पर कब्जा कर लिया है। वह जिस की संपत्ति है, लोग उसे भूलते जा रहे हैं। संपत्ति के मालिक को भूलकर अपने आप को उस का मालिक समझ लेना उन्नति का चिह्न नहीं है। यह तो अपने पतन का चिह्न है। योगिराज अरविन्द ने हम लोगों को संवोधित करते हुए मदर में लिखा है—

"यह सारा धन भगवान् का है।......सदा यह ध्यान रखो कि यह उन का धन है। तुम्हारा नहीं, जो तुम व्यवहार कर रहे हो। इस के विपि-

रीत, जो कुछ तुम्हें उन के लिए मिलता है, श्रद्धा के साथ उसे उन के सामने रखो, अपने किसी काम में या किसी गैर के काम में उसे मत लगाओ।"

हम दिवाली के दिन किस की पूजा करते हैं? लक्ष्मी की। ये लक्ष्मी कौन हैं? भगवान् विष्णु की पत्नी। भगवान् विष्णु का क्या काम है? जगत् का पोषण, रक्षण। अर्थात् भगवान् विष्णु अपनी शक्ति के द्वारा जगत् का पोषण और रक्षण करते हैं। दिवाली के दिन हम उसी जगत् की पोषक एवं रक्षक शक्ति लक्ष्मी की आराधना करते हैं, पूजा करते हैं। अपने लिए या जगत् के लिए? जब हम जगत् में रहते हैं तब हमें जगत् के लिए ही कामना करनी पड़ेगी, क्योंकि जगत् को छोड़कर हम रह नहीं सकते। इस अवस्था में जगत् में रहकर अपने लिए धन की कामना करना अपने विनाश का रास्ता बनाना है। और जगत् में रहकर जगत् के धन को अपने उपभोग में लाना अप[...] नाश करना है। अपने लिए शोक मोह को आमन्[...] देना है। 'हम जगत् में हैं, जगत् के लिए हैं—जि[...] प्रकार जगत् की संपत्ति जगत के लिए है' इ[...] भावना को रखकर लक्ष्मी की आराधना करने[...] ही शोक मोह दूर होते हैं और लक्ष्मी की उप[...]सना करते हैं, क्योंकि लक्ष्मी एक इकाई हैं, वे [...] के पास नहीं जा सकतीं; वे प्रजारूपी एक इका[...] के पास ही जाती हैं। यदि किसी एक के पा[...] जाती हुई मालूम पड़ती हैं, तो अवश्य ही अप[...] भाई शिव का कार्य करती हैं, अपनी भावज श[...] का काम करती हैं—संहार।

इस संहार से बचने का एकमात्र उपाय है वेदवाक्य—'कस्य स्विद्धनम्' का स्मरण। किस ए[...] का धन है, किस इकाई का धन है, स्मरण रख[...] ही हमारे शोक और दुःख को दूर करने का मन्त्र है[...] श्री, लक्ष्मी की आराधना है।



सब एकादशियों का एक परिचय !

(ले०—श्री वशिष्ठनारायण त्रिपाठी, कथावाचक)

१ कामदा— चैत्र शु०
२ वरूथिनी— वैशाख कृ०
३ मोहिनी— ,, शु०
४ अपरा— ज्येष्ठ कृ०
५ निर्जला— ,, शु०
६ योगिनी— आषाढ़ कृ०
७ विष्णुशयनी— ,, शु०
८ कामदा— श्रावण कृ०
९ पुत्रदा— ,, शु०
१० जया— भाद्र कृ०
११ पद्मा— ,, शु०
१२ इन्दिरा— आश्विन कृ०
१३ पापाङ्कुशा— ,, शु०
१४ रम्भा— कार्तिक कृ०
१५ प्रबोधिनी— ,, शु०
१६ उत्पन्ना— मार्गशीर्ष कृ०
१७ मोक्षदा— ,, शु०
१८ सफला— पौष कृ०
१९ पुत्रदा— पौष शु०
२० षट्तिला— माघ कृ०
२१ जया— ,, शु०
२२ विजया— फाल्गुन कृ०
२३ आमलकी— ,, शु०
२४ पापमोचिनी— चैत्र कृ०

ये चौबीस एकादशी वर्ष भर में होती है। हमारी प्रार्थना तो है कि प्रत्येक व्यक्ति चौबीसों एकादशी को व्रत करे और एकादशी की कथा सुने। इन चौबीसों नामों का विचार करने से भी बड़ा लाभ होता है। एक वार यही सोचिए कि पहली एकादशी है कामदा और अन्तिम एकादशी है पापमोचिनी। काम से सृष्टि का आरम्भ होता है और अन्त होता है पापमोचन से। बस, विचार करिए।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

गीताजयन्तीवाली एकादशी का नाम है **मोक्षदा**

गीताजयन्ती ता० १४ दिसंबर को मनाइए

श्री कृष्ण द्वारा नन्द की वरुण से मुक्ति

(श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध, अठाइसवें अध्याय से)

१—एकादशी का निराहार व्रत कर, जनार्दन की पूजा करके द्वादशी को स्नान करने के लिए नन्द ने कालिन्दी में प्रवेश किया।

२—वरुण के दूतों ने नन्द को पकड़कर वरुण के पास पहुँचाया। कारण, आसुरीवेला का बिना विचार किये ही उन्होंने जल में प्रवेश किया था।

३—नन्द को न देखकर गोप लोग हे कृष्ण! हे राम! कहकर चिल्लाने लगे। हे राजन्! भगवान् कृष्ण जो स्वयं विभु हैं और अपने परिजनों को अभय देनेवाले हैं, वरुण द्वारा पिता की गिरफ्तारी सुनकर, वरुण के पास गये।

४—हृषीकेश-कृष्ण को आये हुए देखकर लोकपाल वरुण ने बृहत् आयोजन से उन की पूजा कर भगवान् के दर्शन का महोत्सव मनाया।

५—वरुण ने कहा—हे प्रभो! आज मेरा शरीर धारण करना सफल हुआ। आज मैं ने यथार्थ अर्थ पाया। भगवान्! आप के चरणों की सेवा करनेवाला मोक्ष पाता है।

६—भगवन्, ब्रह्म, परमात्मन्! मैं आप को नमस्कार करता हूँ। लोक की सृष्टि और विनाश करनेवाली माया आप के पास नहीं फटकने पाती। कर्तव्यज्ञान से हीन और मूर्ख मेरे आदमियों ने आप के पिता को गिरफ्तार कर, यहाँ लाकर कर दिया है, आप इस अपराध को क्षमा करें।

७—पितृभक्त गोविन्द! आप के पिता नन्दजी यह हैं, आप इन्हें लिवा जाँय। अशेष दृष्टिवाले (सर्वज्ञ) कृष्ण! मुझ पर अनुग्रह कीजिए।

८, ९—श्री शुकदेवजी ने कहा—ईश्वरेश्वर-भगवान् कृष्ण, इस प्रकार वरुण से संतुष्ट होकर अपने पिता को प्राप्त कर बन्धुओं के साथ प्रसन्न हुए।

१०—नन्द लोकपाल वरुण के अतीन्द्रिय महान् ऐश्वर्य को जिसे उन्होंने पहले नहीं देखा था, देखकर तथा कृष्ण में लोकपालों की भक्ति देखकर आश्चर्य के साथ अपने कुटम्बियों से बोले।

११—हे राजन्! आश्चर्ययुक्त उन गोपों ने कृष्ण को ईश्वर माना और यह अधीश्वर हम लोगों को वैकुण्ठधाम पहुँचायेंगे यह भी उन्हें विश्वास हुआ।

१२—सर्वज्ञ-कृष्ण ने स्वयं ही अपने कुटम्बियों के अभिप्राय को जान लिया। उन लोगों के संकल्प की सिद्धि के लिए वे स्वयं चिन्ता करने लगे।

१—उस दिन द्वादशी कलामात्र ही थी, और द्वादशी रहते ही पारण करने की विधि है; अतः दैत्यवेला का विचार न करके अरुणोदय से पूर्व रात रहते ही स्नान करने के लिए नन्द ने कालिन्दी में प्रवेश किया।

२—सर्वरत्नाकर का स्वामी होने पर भी आज तक मैं ने यह रत्न नहीं पाया था जो मुझे आप के दर्शन से प्राप्त हुआ।

३—आप के चरणों की सेवा करनेवाला संसारबन्धन से छूट जाता है।

१—लोकपालों का महान् ऐश्वर्य मनुष्य की दृष्टि से प[रे] हैं; नन्द मनुष्य थे, अतः उन्होंने इस के पहले लोकपा[लों] के महान् ऐश्वर्य को कभी नहीं देखा था।

१३—इस लोक में मनुष्य अज्ञान, अहङ्कार, काम, कर्म और ऊँच, नीच, देव और तिर्यक् (पशु, पक्षी) योनियों में भ्रमण करता हुआ अपनी गति को नहीं जानता।

१४—परम दयालु भगवान् कृष्ण ने यह सोचकर अन्धकार से परे जो उन का लोक (विष्णुलोक) है उसे गोपों को दिखलाया।

१५—सत्य (स्वयं प्रकाश), ज्ञान (जड़ता से शून्य), अनन्त (जो अपरिच्छन्न है), ब्रह्मज्योति (स्वयं प्रकाशमान), सनातन (निरन्तर रहनेवाले) ब्रह्म को जिसे मुनि लोग सत, रज और तम आदि गुणों से निवृत्ति पाने पर समाधि में देखते हैं, उस ब्रह्म का गोपों को केवल कृष्ण की कृपामात्र से दर्शन हुआ।

१६—कृष्ण की सहायता से ब्रह्मलोक में पहुँचने पर गोप लोग ब्रह्म में तल्लीन हो गये। अब उन्हें सुध बुध नहीं रही। फिर कृष्ण ने स्वयं उन्हें ब्रह्मसमाधि से उबारकर वैकुण्ठलोक का दर्शन कराया। जिस लोक का कृष्ण की ही कृपा से इस के पहले अक्रूर आदि ने दर्शन किया था उसी लोक को इन लोगों ने भी देखा।

१७—नन्द ने अपने परिजनों के साथ वैकुण्ठलोक का दर्शन पाया और परम आनन्दित हुए तथा कृष्ण की छन्दों से स्तुति करते हुए ब्रह्मानन्द में विभोर हो गये।

(अनु०—मित्रानन्द द्विवेदी)

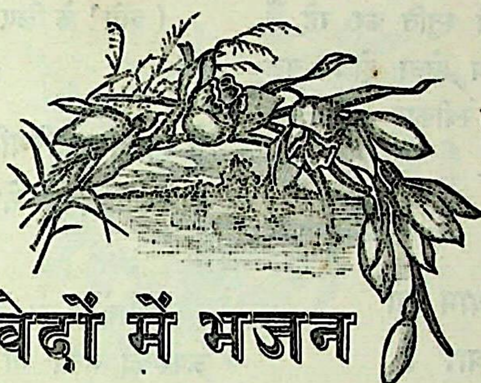
१—देहधारियों को ब्रह्म का दर्शन नहीं हो सकता, अतः पहले कृष्ण ने मनुष्यशरीर से अतिरिक्त ब्रह्मरूप का दर्शन कराया।



केदारनाथ से आगे यात्रा

(राजा देवीप्रसाद, भाऊनीपोल, महादेववालोखाँचो, रायपुर, अहमदाबाद)

प्रायः भारतीय केदारनाथ तक ही जाकर लौट आते हैं और गौरीकुण्ड नालागाँव आकर मन्दाकिनी पारकर ऊखीमठ में ठहरते हैं। वहाँ रावल केदारनाथ को चढ़ावा चढ़ाकर बद्रीनारायण चले जाते हैं। मैं इधर न लौटकर हिमालय के अज्ञातस्थान जानने के लिए केदारनाथ से भी आगे बढ़ा। आगे शिवजी की बूटियों का बाग है। जिस में से एक का भी नाम निघण्टू में नहीं है। वज्रदन्ती, भूतकेशी, पराञ्जपा, निर्विषकाकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, चान्द्री, पीतपुष्पा, महार्घा ऐसी सहस्रों सुगन्धित बूटियाँ हैं। जिन के पुष्प फल केदारनाथ पर चढ़ते हैं। ब्रह्मकमल वहाँ ही होता है। जो बिना ताल के कीच में पैदा होता है। उस के आगे मन्दाकिनी का प्रादुर्भाव है जो डेढ़ दो सौ फुट मोटे बरफ की पाँच मील लम्बी एक ही चट्टान (ग्लेशियर) से गरजकर निकल रही है। मधुगङ्गा की क्षीरधारा का दृश्य क्या ही मनोहर है। सरस्वती के तट सन्निकट चलकर चन्द्रशिला को देखकर आगे जाना चाहिए। आगे महानिर्वाण है जिस का नाम भृगुतुङ्ग है। भक्त तथा पापी वहाँ जाकर अपना शरीर छोड़ते थे। एक पहाड़ पर चढ़कर नीचे कूदते हैं। पत्थर पर गिरने से शरीर चूर चूर हो जाता है। आगे चढ़ना असंभव है। परन्तु मैं प्रयत्न में सफल हुआ। कारण यह कि महानिर्वाण भृगुतुङ्ग पर चढ़कर मैं भी कूदने को दो क्षण के लिए तैयार हुआ था। किंतु हृदय की निर्बलता मुझे न कुदा सकी। मैं ग्लेशियर पर से लुढ़कते हुए पत्थरों पर पैर रखकर चढ़ने का साहससंधान करके, आगे जीवन त्याग करूँगा ऐसी सरल इच्छा करके तुङ्ग से उतर पड़ा। उतरकर उस चढ़ाई पर भी बच ही तो गया। पर वह एक चक्कर था जिस में मैं एक सेकंड और रुकता, तो पीस दूँगा एक गर्दिश में जहाँ कुछ भी नहीं, सत्य हो जाता। अरे, तू तो खड़ा है ग्लेशियर पर, यह पत्थर कहाँ है। यह तो ग्लेशियर की सरक से लुढ़कनेवाले बेलन हैं। बचा, बाल बाल बचा। जो मेरे साथ आदमी था उस की आवाज से मैं आगे कूद पड़ा। बस सत्यलोक पहुँचा। सत्यलोक में रेतीला मैदान, शान्त जल व संध्या करने के लिए एक शिला है। वहीं बैठे बैठे ध्यान लगाया। ध्यान में भगवान् के दर्शन हुए, जरा शान्ति हुई। आगे २१००० फुट ऊँचे तक भरतस्तम्भ पर्वत की चोटी पर चढ़ा। वहाँ मैं ने बरफ की रम्य शुभ्र कञ्चुकी पर 'गीता' ये दो अक्षर लिखे थे। वह रम्य समय और आजकल की कड़ी धूपें मुझे फिर हिमालय की तरफ खींच रही हैं। मैं ने नैनीताल, मंसूरी बद्रीनारायण से आगे तिब्बत की हद माणा पास, कश्मीर, शिमला, मरी स्वर्ग तक की यात्रा की है, परंतु केदारनाथ जैसा स्थान कहीं नहीं देखा। क्षीरधारा के किनारे किनारे रम्य ब्रह्मकमलों की हरियाली व गालीचों जैसी घास पर गिरते पड़ते ऊपर चढ़ते जाइए। आपको हवा भी न मिलेगी। श्वास लेने में कष्ट अवश्य होगा। कहीं कहीं बैठते जाइए। अब आगे हरियाली नहीं बर्फ है। जो बारह मास रहती है। इस महाशृङ्ग को पारकर जो कि १६००० हजार फीट ऊँचा है। पार करके वासुकीताल के दर्शन कीजिए। बस, नैसर्गिक सौन्दर्य इस से आगे नहीं है। वासुकीताल के यात्री मुझ से पत्र-व्यवहार करें।



वेदों में भजन

(ले०—स्वामी रवीन्द्रानन्दजी महाराज, गीतामन्दिर, कर्नाली)

भजन का स्थान कितने महत्त्व का है, यह भक्तों को मालूम है। भक्ति का यदि सब से सुगम और सर्वमान्य रूप है, तो वह है—भजन। इतना ही नहीं, भजन की परंपरा भी किस काल से चल पड़ी है, इस पर कोई मत नहीं प्रकट किया जा सकता है। क्योंकि आज सारा संसार जिन ग्रन्थों को सब से प्राचीन मानता है उन वेदों में भी तरह तरह की ज्ञान की बातों के साथ भजन की ही अधिकता है। इस से स्पष्ट है कि भजन की परंपरा वैदिक काल में भी वर्तमान थी; फिर आज की तो बात ही क्या है ?

यहाँ हमारे पाठकों को सहज में कुतूहल हो सकता है कि वेदों के भजन क्या हैं, उन्हें जान लें। इस संबन्ध में हम इतना ही कहेंगे कि यदि वेदों में से केवल शुद्ध भजन या स्तुतियाँ मात्र संगृहीत की जायँ, तो एक बड़ा भारी पोथा तैयार हो सकता है। वेद वस्तुतः भजनग्रन्थ ही तो हैं। नाना देवों और उपदेवों की प्रार्थनाएँ और स्तुतियाँ सूक्त सूक्त में भरी पड़ी हैं। ऐसी हालत में हम तो यही उचित समझते हैं कि कोई ऐसी कसौटी सामने रखकर हम अपने पाठकों को इन स्तुतियों का दिग्दर्शन करायें जिस से काम थोड़े में पूरा हो जाय। इस कार्य के लिए हम चारों वेदों के केवल आदि या अन्त के कुछ मन्त्रों को ले लेते हैं, क्योंकि यही सब से सरल और सुगम उपाय है। यों तो वेदाध्यायियों के लिए पूरा वेद पड़ा है। वे लोग स्वयं पढ़ें और भजनों के भाव और रूप पर मनन करें।

हाँ, तो हम अभी देखेंगे कि प्रत्येक वेद के मन्त्र और कुछ नहीं, केवल भजनमात्र हैं। कहीं अग्नि की स्तुति है, तो कहीं सूर्य तथा अन्य देवों की।

ऋग्वेद

ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं।
होतारं रत्नधातमं ॥

(सर्वप्रथम मन्त्र)

(पुरोहित, अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ। यज्ञ के देव, यज्ञ के ऋत्विज, अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ। (देवों के बुलानेवाले) उस होता की, सर्वोत्तम वस्तुओं के देनेवाले (अग्निदेव) की, मैं स्तुति करता हूँ।)

सामवेद

अग्नआ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥

(प्रथम मन्त्र)

(हे अग्नि ! हम तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं, तुम यहाँ यज्ञ में आओ। तुम होता हो। यजमान का दिया हुआ आसन स्वीकार करो—उस पर बैठो।)*

× × ×

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभि-
र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥
स्वति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः
स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

(अन्तिम मन्त्र)

(हे देव, हम कानों से भद्र (भला) ही सुनें। हम यज्ञ करनेवाले आँखों से भद्र ही देखें और स्थिर अङ्गोंवाले होकर तुम्हारी प्रार्थना करते हुए उस आयु को भोगें जो देवताओं के लिए रखी गई है। हमारा भला इन्द्रादि सभी देवता करें।)

यजुर्वेद

इषे त्वा ।

(आदिम मन्त्र)

* ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र के समान सामवेद के आदि में भी अग्नि की–तपस् की, ज्ञान की, उस परतत्त्व की–ही उपासना है।

(वृष्टि[1] के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं।)

अथर्ववेद

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥

(आदिम मन्त्र)

अथर्ववेद को भरत मुनि ने रसमय माना है। ऊपर का मन्त्र भी वाचस्पति की प्रार्थना में लिखा गया है। रस और वाचस्पति का संवन्ध कैसा उपयुक्त बैठा है, यह विचारणीय है।

अथर्ववेद का अन्तिम मन्त्र भी प्रार्थनामय है। ऋषि कामना करते हैं—

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो
मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो
अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥

पन्नाय्यं तदश्विना कृतं वा
वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसा उतये गविष्टौ
सर्वां इत् तां उपयाता पिबध्यै ॥

(सब औषधियाँ मधुमान् हो जायँ; आकाश (द्यौ) और जल (आपः) भी मधुमय हो जावें; अन्तरिक्ष भी हमारे लिए मधु से भर उठे। हमारा क्षेत्र का मालिक भी मधु से भरा पूरा हो जावे। हम भी भरे पूरे और निश्चिन्त होकर उस के अनुकूल आचरण करें–उस का अनुगमन करें।)

१ वृष्टि से यहाँ कामवृष्टि का तात्पर्य है। यज्ञ कामवर्षण के ही लिए किया जाता है।



(ले०—श्री परमेश्वर त्रिपाठी)

मनुष्य सदा सुख की खोज में ही लगा रहता है। वह सदा इसी प्रयत्न में लगा रहता है कि उसे सुख किस प्रकार मिले। सुख के साधनों की खोज और उन के इकट्ठा करने के साथ साथ मनुष्य उन अवाञ्छनीय वस्तुओं को हटाने के लिए भी प्रयत्न करता रहता है जो उस के सुख की प्राप्ति के मार्ग में बाधा डालती हैं। किंतु वह सुख क्या है और वह किस प्रकार से और किन किन साधनों की सहायता से मिल सकता है इस बात का पता लगाने का प्रयत्न लोग बहुत कम करते हैं। यदि शान्त चित्त से पहले इस बात का पता लगा लिया जाय कि वास्तविक सुख क्या है और वह किस प्रकार से मिल सकता है, तो मनुष्य को बहुत सी चिन्ताएँ और व्यर्थ का तमाम परिश्रम न करना पड़े।

'किंतु अधिकतर लोग अँधेरे में ही भटका करते हैं। सुख की खोज करते करते वे दुःख के जाल में और भी अधिक उलझते चले जाते हैं। यह संसार का जाल ऐसा ही है। जो जितना अधिक इस की उलझनों से छूटकर दूर भागना चाहता है वह उतना ही अधिक उलझनों में और फँसता जाता है। इस संबन्ध में रहीम का यह कथन कितना उपयुक्त जान पड़ता है कि—

को छूट्यो यहि जाल परि कत कुरंग अकुलाय।
ज्यों ज्यों सुरझि भज्यो चहै त्यों त्यों अरुझत जाय॥

यहाँ पर सुख के मूल के संबन्ध में अधिक छान बीन करने के लिए हमारे पास स्थान नहीं है और न हमें यहाँ पर ऐसा करने की आवश्यकता ही है। सुख का जो सब से बड़ा साधन अभी तक माना गया है वह है संतोष। प्राचीन काल के किसी आचार्य का कहना है कि "संतोष एव पुरुषस्य परं निधानम्" अर्थात् संतोष ही मनुष्य का सब से बड़ा खजाना है। कुछ वर्ष पहले बनारस में संसार भर के दार्शनिकों का एक सुप्रसिद्ध संमेलन हुआ था। उस में एक प्रश्न यह भी रखा गया था कि मानवजाति के सुख का रहस्य क्या है ? बहुत वाद विवाद के पश्चात् उस संमेलन ने यह निर्णय किया था कि संतोष ही सुख का रहस्य है। संमेलन ने संतोष की व्याख्या करते हुए यह भी स्पष्ट कर दिया था कि आवश्यकताओं को कम करने

से ही संतोष प्राप्त हो सकता है। वास्तव में यही वात अनुभव से भी सिद्ध होती है। जव हमारी आवश्यकताएँ कम रहती हैं तव हमारी मानसिक चिन्ताएँ भी कम रहती हैं। जव हमारी आवश्यकताएँ कम रहेंगी तव हम उन को पूरी करने में सरलता के साथ समर्थ हो सकते हैं और इस प्रकार संतोष की भावना भी अपने मन में ला सकेंगे।

अव हमें यह देखना है कि हम अपनी आवश्यकताओं को कम करते हुए किस प्रकार अपने में संतोष के भाव को स्थिर कर सकते हैं। हमारी समझ से तो इस के लिए रहन सहन के ढंग का नियन्त्रण करने की आवश्यकता है। यदि हम अपने रहन सहन को ऐसा बना लें कि हमें प्रायः किसी प्रकार की कमी के कारण कष्ट न हुआ करे और हम अपनी स्थिति से पूर्णतया संतुष्ट रहा करें, तो यह निश्चित है कि हम परम सुखी और प्रसन्न रहने लगें।

आजकल हम प्रायः इस प्रकार के सीधे सादे आनन्दमय जीवन को भूल से गये हैं। लड़कपन से ही हम अनेक ऐसी आशाओं के पीछे लग जाते हैं जिन की जन्म भर कभी पूर्ति नहीं हो पाती है और हम सदा उन्हीं की मृगतृष्णा से पीड़ित होकर अपना जीवन नष्ट कर देते हैं। हमारे रहन सहन के ढंग के विगड़ जाने का सव से प्रधान कारण हमारी आधुनिक शिक्षा है। आजकल के युवकों को देखिए। अवस्था के अधिक हो जाने तथा वहुत कुछ पढ़ लिख जाने पर भी ऐसा जान पड़ता है कि वे अभी बच्चे ही हैं। यद्यपि उन के चेहरों पर झुर्रियाँ दिखाई देने लगती हैं और उन की दृष्टि में गम्भीरता भी आ जाती है, किंतु उन में स्वतन्त्र विचारशक्ति और कार्यशक्ति का पूर्ण अभाव रहता है।

माता पिता कंजूसी के साथ रहकर रुपया इकट्ठा करके अपने लड़कों को पढ़ाते लिखाते हैं। स्वयं सव प्रकारके कष्ट उठाकर वे लड़कों को इस आशा से ऊँची ऊँची डिगरियाँ दिलवाते हैं कि जिस से लड़का किसी ऊँचे ओहदे पर पहुँच जाय और खूव धन कमाने लगे। यदि वे किसी धनी परिवार के हैं, तो वे यह आशा करेंगे कि पढ़ लिखकर हमारा लड़का कोई वड़ी भारी नौकरी पा जायगा अथवा कोई वड़ा मिल, कारखाना, एजेंसी या कंपनी चलायेगा। किंतु वे इस वात की ओर कभी ध्यान नहीं देते हैं कि इन सव वातों से भी बढ़कर एक और वात भी है। वह वात यह है कि लड़का अपने रहन सहन का ढंग किस प्रकार चलायेगा। जो वात जीवन के उद्देश्य से सव से अधिक संवन्ध रखती है उस की शिक्षा की ओर से वे पूर्णतया उदासीन रहते हैं। स्वतन्त्र विचारशक्ति, स्वतन्त्र कार्यशक्ति और स्वावलम्बन की शिक्षा लड़कों को न तो घर पर ही दी जाती है और न स्कूलों और कालेजों में ही।

माता पिता और शिक्षासंस्थाओं की इस उपेक्षा और उदासीनता का फल भी हम प्रत्यक्ष ही देखते हैं। पढ़ना लिखना समाप्त कर चुकने के बाद हमारे देश के नवयुवक जव जीवन में प्रवेश करते हैं और उत्तरदायित्व का भार उन के सर पर रख दिया जाता है तव वे अपने को उस भार के वहन करने के विल्कुल अयोग्य पाते हैं। उन में साहस का पूर्ण अभाव रहता है और वे सदैव असफलता से डरते रहते हैं। वे प्रायः सिद्धान्तविहीन होते हैं। इन्हीं सव दोषों के कारण वे सदैव असफल ही वने रहते हैं।

किंतु हम को तो इस समय ऐसे नवयुवकों की आवश्यकता है जिन का पूर्ण रूप से विकास हुआ

हो, जिन का मन और आत्मा जीवनसंग्राम में भाग लेने के लिए प्रस्तुत हो। हमें तो ऐसे नवयुवक चाहिएँ जो सभी प्रकार की परिस्थितियों में अपने जीवन को दृढतापूर्वक सँभाल सकें।

हमारे नेताओं का कर्तव्य है कि वे इन पथभ्रष्ट युवकों को उचित उपदेश देकर उन्हें ठीक रास्ते पर ले आयें। किंतु आजकल के बहुत से नेता स्वयं रास्ता भूले हुए हैं। उन में स्वावलम्बन और आत्म-बल का अभाव है। किंतु फिर भी जिन्हें हम अपना सच्चा नेता मानते हैं और जिन में साहस, आत्मबल और स्वावलम्बन पाया जाता है उन्हें चाहिए कि हमारे नवयुवकों के जीवन को आनन्दमय बनाने के लिए वे उस में सीधे सादे और उत्तरदायित्वमय रहन सहन की भावना को भर दें।

हमारा प्रत्यक्ष संबन्ध तो वर्तमान से है, भविष्य से नहीं। इस लिए हमें तो सब से अधिक ध्यान वर्तमान नवयुवकों को सुधारने की ओर देना चाहिए। किंतु इस से यह अभिप्राय कदापि न समझना चाहिए कि हम भविष्य की ओर से उदासीन रहें। जो आज भविष्य है, कल वही वर्तमान हो जायगा। जो आज बच्चे हैं वे ही कुछ समय के बाद नवयुवक हो जायँगे। अतः अपने बच्चों की शिक्षा की ओर हमें विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए।

इस संबन्ध में तो चाणक्य का निम्नलिखित कथन बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण और हितकर जान पड़ता है कि—

लालयेत् पञ्च वर्षाणि
दश वर्षाणि ताड़येत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे
पुत्रं मित्रवदाचरेत् ॥

अर्थात् पाँच वर्ष तक पुत्र को हँसाना खेलाना चाहिए, उस के बाद दस वर्ष तक अर्थात् पंद्रह वर्ष की आयु तक उस की ताड़ना करनी चाहिए और जब वह सोलह वर्ष का हो जाय, तब उस के साथ मित्र का सा व्यवहार करना चाहिए। इस से यह बात प्रकट होती है कि सोलह वर्ष की आयु तक लड़का भली और बुरी बातों को समझने के योग्य हो जाता है और उस पर उत्तर-दायित्व का भार रखा जा सकता है। हम तो इस बात को बहुत अच्छी नहीं समझते कि विद्यार्थियों को सदा उत्तरदायित्वपूर्ण कामों से दूर रखना चाहिए। वास्तविक शिक्षा तो क्रियात्मक शिक्षा ही है, केवल पुस्तकों का पढ़ लेना ही पूर्ण शिक्षा नहीं है। आज हमारे शिक्षित व्यक्तियों के जीवन में जो विषमता दिखाई देती है वह इसी अधूरी शिक्षा का परिणाम है। हमारी राय तो यह है कि सोलह वर्ष की अवस्था तक लड़कों की शिक्षा समाप्त हो जानी चाहिए। उस के बाद उन को कुछ रुपया देकर किसी स्वतन्त्र व्यवसाय में लगा देना चाहिए। यदि उन की शक्तियों का पूर्ण विकास हो चुका है और उन में लोकव्यवहार की क्षमता आ गई है, तो वे अपने कार्य में सफलता प्राप्त करने लगेंगे। किंतु जिन में अभी आवश्यक गुण नहीं आये हैं उन को सफलता न मिलेगी। ऐसे अयोग्य व्यक्तियों को पुनः शिक्षा देनी चाहिए। किताबी शिक्षा आगे केवल उन्हीं लोगों को देनी चाहिए जिन में विद्या के प्रति विशेष प्रेम हो और जिन की बुद्धि अध्ययन के लिए विशेष रूप से उपयुक्त हो। हमारी समझ से विद्यार्थियों को लोकव्यवहार का ज्ञान प्राप्त कराने के लिए कम से कम दो देशी भाषाओं, अपने देश की राजनीति, आर्थिक स्थिति तथा

नैतिक बातों की शिक्षा देनी आवश्यक है। इतना ज्ञान सोलह वर्ष की अवस्था तक प्राप्त किया जा सकता है।

पंद्रह वर्ष तक शिक्षा प्राप्त कर चुकने के बाद युवकों को स्वतन्त्रतापूर्वक जीवन में काम करने के लिए लगभग पाँच वर्ष का अवकाश देना चाहिए। यदि इस बीच में उन्हें अच्छी सफलता मिल चुकी है और उन में पढ़ने की विशेष रुचि और योग्यता है, तो उन्हें विश्वविद्यालयों में भेजना चाहिए। जीवन के पाँच वर्ष के अनुभव के बाद विश्वविद्यालयों में जाने से उन की शिक्षा और भी सुदृढ होगी और वे कालेजों और विश्वविद्यालयों के निष्क्रियता उत्पन्न करनेवाले बुरे प्रभाव से भी बचे रहेंगे।

इस समय हमारे शिक्षित नवयुवकों की जो दशा हो रही है उसे देखकर सभी सहृदय व्यक्तियों को दया आती है। शहरों में ऐसे नवयुवकों के झुंड के झुंड नौकरियाँ ढूंढते हुए दिखाई पड़ते हैं। देहातों में बेकार शिक्षित नवयुवक गाँव के लोगों के उपहास के पात्र और व्यङ्ग्यवाणावली के लक्ष्य बने रहते हैं। थोड़े से धन के लोभ से आत्मसंमान सरीखे दिव्य गुण को वे लोग खो देने को तैयार रहते हैं। जिस के पास नौकरी माँगने जाते हैं वही उन्हें दो चार डाँट फटकार बताने को प्रस्तुत रहता है। एक छोटी सी जगह के लिए सैकड़ों अर्जियाँ आती हैं। हम कहते हैं कि क्या वास्तव में हमारा देश ऐसा हो गया है कि वह हमारा पालन पोषण नहीं कर सकता? तनिक शान्त होकर विचार करने से यह बात समझ में आ जाती है कि इस सारी विषमता का कारण हमारा बिगड़ा हुआ रहन सहन ही है। हम तमाम अनावश्यक खर्चों को बहुत महत्त्वपूर्ण समझते हैं और उन्हीं को पूरा करने के लिए धन कमाने की चिन्ता में व्यग्र रहते हैं। जब धन नहीं मिलता तब हाय हाय करने लगते हैं। लोग कहते हैं कि भारतवासियों का रहन सहन बहुत ही सादा है। पर हम तो कहते हैं कि सादा होते हुए भी वह पूर्णतया व्यवस्थित नहीं है। यदि हमारा जीवन ठीक रास्ते पर आ जाय, तो हम बड़े धनिकों को तिनके के समान तुच्छ समझ सकते हैं। फिर हमारे शिक्षित नवयुवकों को किसी के दरवाजे नौकरी ढूँढने के लिए न जाना पड़े। यदि आवश्यकतावश किसी को नौकरी के लिए किसी के यहाँ जाना ही पड़े और नौकरी देनेवाला व्यक्ति संमानपूर्ण व्यवहार न करे, तो हम तुरंत उसे एक तुच्छ और मूर्ख व्यक्ति समझकर छोड़ दें।

किंतु हम में ऐसा करने का साहस तभी आ सकता है जब हम में आत्मविश्वास आ जाय और हम सब लोग एक साथ मिलकर अपनी समस्याओं को सुलझा सकेंगे। हमारा वास्तविक सुधार तो तभी हो सकता है जब पहले हम अपनी शिक्षाप्रणाली को सुधारते हुए अपने रहन सहन का सुधार कर सकेंगे। इस संबन्ध में एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि हमारा जीवन प्रारम्भ से ही धार्मिक होना चाहिए। बिना धार्मिकता के उच्च गुण स्थायी रूप से हम में नहीं आ सकते हैं। इस लिए अपनी शिक्षाप्रणाली को सुधारते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उस में धार्मिक शिक्षा और धार्मिक अभ्यास का पूर्ण रूप से समावेश किया जाय। धर्म ही हमें स्वावलम्बन एवं मानसिक और नैतिक बल दे सकता है जिन के फलस्वरूप अपने जीवन को सीधा सादा बनाकर हम संतोष प्राप्त कर सकते हैं। और संतोष की सहायता से ही सच्चे सुख की प्राप्ति हो जायगी।

हमारे सुख की तत्काल ही वृद्धि करनेवाली एक बात और भी है। वह है अवकाश का सुन्दर और सुखद उपयोग। काम काज से छुट्टी पाने पर जो समय हमारे पास बचता है उस को इस प्रकार व्यतीत करना चाहिए कि जिस से हमारे सुख और संतोष की वृद्धि हो। व्यर्थ के कामों में और गप-शप में समय को नष्ट कर देना कोई बुद्धिमानी नहीं है। हम तो ऐसे समय का सब से अच्छा उपयोग धार्मिक चर्चा और कार्यों के करने में ही समझते हैं। इस से आनन्द की वृद्धि के साथ साथ हमारी आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग भी साफ होता जाता है।

अन्त में हमारा कहना यह है कि हमें सच्चा सुख संतोष के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है और उसी संतोष को अपने में लाने के लिए हमें अपने रहन सहन को सीधा सादा और स्वावलम्बनयुक्त बनाना चाहिए। और जीवन को सुधारने के लिए धार्मिकता से युक्त शिक्षा की आवश्यकता है। साथ ही साथ शिक्षा को क्रियात्मक और उत्तरदायित्वपूर्ण बनाना भी आवश्यक है।

इन सब बातों का मूलमन्त्र यह है कि स्कूलों की अपेक्षा लड़कों के घर और छात्रावासों का महत्त्व अधिक होना चाहिए। कालेज और स्कूल में धर्म का नाम लेने से कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता; धर्म, संतोष और सादगी का अभ्यास घर पर होना चाहिए। इस ओर जब पूरा ध्यान दिया जायेगा तभी हमारा और हमारे बालकों का जीवन शान्तिमय होगा।

'अभ्यासः फलदायकः'

गद्य गीत

(ले०—श्री कुँवर रामपाल सिंह "प्रकाश")

तुझे प्यार करूँ ? अपदार्थ !

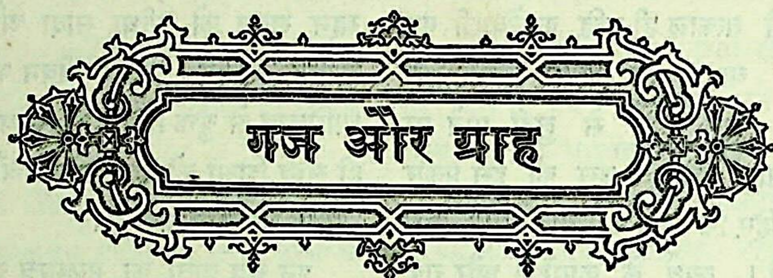
निखिल ऐश्वर्य के रक्त पद्म पर अभिषिक्त मैं ने तेरी लालसा भरी विषदृष्टि का उपहार पाया। न सहकर मैं ने उस से अपनी रक्षा की। तू ने उस अपनी ही प्रवञ्चना को मेरी चञ्चलता समझ ली।

अब मेरा प्रणय अविच्छिन्न भक्ति वन विशुद्ध ज्ञानस्वरूप क्षीरोदधिवासी परात्पर के चरणों पर पड़ा है।

मुझ से कुछ चाहता है, तो उन्हीं की कृपा का अधिकारी बन !

मेरी दया भी तभी प्राप्त होगी,

भिक्षुक !!



गज और ग्राह

(ले०—श्री ठाकुर नाथूसिंह, वड़ोदा)

इस संसाररूपी समुद्र के जाल में हमेशा मनुष्यरूपी गज और अज्ञानरूपी ग्राह का युद्ध हुआ करता है। यह मनुष्य हमेशा अज्ञान में घिरा रहता है। मनुष्य अज्ञान में फँसकर प्रभु को भूल जाता है। यह अज्ञान ही महापाप है। इस पापरूपी ग्राह से यह मनुष्यरूपी गज ईश्वर की कृपा और संतसमागम विना छूट नहीं सकता। संतसमागम और ईश्वर की कृपा होना—यही तो महापुण्य है। मनुष्य अज्ञान में फँसकर इस संसार में सुख चाहता है, परंतु वह सुख अनित्य और असत्य है। यह अनित्य सुख धन की सहायता विना मिल नहीं सकता। उस धन को कमाने में मनुष्य रात दिन लगा रहता है। मनुष्य इस अनित्य सुख की जितनी ज्यादे इच्छा करता है उतने ही ज्यादा दुःख में फँसता जाता है। इस संसार के झगड़े से मनुष्य दुखी होकर हार जाता है। जब मनुष्य इस संसार से हारकर विवश हो जाता है, तब कुछ कुछ होश में आता है और दी दयालु जगत्पिता प्रभु को याद करता है औ पुकारता है कि हे प्रभो, हे दीनदयालो, मे रक्षा करो, मैं बहुत दुखी हूँ। इस त मनुष्य प्रभु की शरण लेता है। यदि प्रभु सच्ची श्रद्धा रखी जाय और अटल प्रेम उत हो जाय, तो प्रभु अवश्य रक्षा करते हैं। श्रद्धा और प्रेम ईश्वर की कृपा और संतस गम विना मिल नहीं सकते। धनवान् गरीब किसी भी स्थिति का मनुष्य हो हरएक को संतसमागम करना ही चाहिए संतसमागम व्यर्थ नहीं जाता। उस से अने फायदे हैं। जैसे-मन शान्त होता है, बु स्वच्छ होती है और विचार अच्छे होते है प्रभु में श्रद्धा होती है और प्रभु उन सुखी करता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

संतसमागम हरिकथा तुलसी दुर्लभ दोय।
दारासुत और लक्ष्मी पापिहुँ के घर होय॥

सनातनधर्मी साहित्य

(ले०—श्री उमादत्त मिश्रः, छात्र गवर्नमेंट सं० का०, काशी)

इस लेख में आर्यधर्म (सनातन) से संबन्ध रखनेवाले शास्त्रों का विवरण पाठकों के संमुख उपस्थित किया जायगा। साहित्य शब्द का व्यवहार आलंकारिक भाषा में लिखे गये गद्य पद्यवाले ग्रन्थों में ही प्रायः लोग करते हैं। किंतु इस लेख में साहित्य पद से उन सब रचनाओं को ग्रहण किया जायगा, जिन का तात्पर्य श्रुति, स्मृति और सदाचार के अनुकूल अभ्युदय की प्राप्ति कराते हुए निःश्रेयस (मोक्ष) मार्ग पर पहुँचाना है।

महर्षि कणाद ने कहा है कि 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' ऐहलौकिक उन्नति के साथ ही पारलौकिक उन्नति भी जिस के द्वारा होती है उसे धर्म कहते हैं।

इस लक्षण से युक्त धर्म का जिन शास्त्रों में निदर्शन हो उन्हें आर्यसाहित्य कहा जाय, तो कोई अनुचित न होगा।

यह स्थूल रूप से दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम 'वैदिकसाहित्य' द्वितीय 'लौकिकसाहित्य'।

लौकिकसाहित्य वैदिकसाहित्य का अङ्गस्वरूप है, सब मिलकर साङ्गवेद नाम से व्यवहृत होते हैं।

आर्यसंस्कृति के मूलभूत स्वतः प्रमाणग्रन्थ ऋक्, यजुः, साम और अथर्व ये चार वेद हैं। संपूर्ण वैदिकसाहित्य चारों वेदों के ही आधार पर है। और इस के अङ्ग तथा उपाङ्गस्वरूप जो हैं उन को लौकिक साहित्यपद से संबोधन किया जाता है। पाणिनीय व्याकरण में कई स्थानों पर वेद और लोक (भाषा) शब्द का व्यवहार आया है।

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्यौतिष् ये छः शास्त्र वेद के अङ्ग हैं। जिन शास्त्रों में यज्ञादि काम्य कर्मों की विधि है उन्हीं शास्त्रों का परंपरया तात्पर्य ईश्वर है, और जिन शास्त्रों में कामनारहित परमेश्वर की उपासना की विधि है उन का साक्षात् तात्पर्य ईश्वर है।

पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र ये चारों वेद के उपाङ्ग हैं। यहाँ सब उपपुराणों को पुराणों के ही अन्तर्गत समझना चाहिए। इसी तरह वैशेषिकशास्त्र न्यायशास्त्र के और वेदान्त शास्त्र मीमांसा के, सांख्य तथा पातञ्जल (योग) धर्मशास्त्र के अन्तर्गत समझना चाहिए। इस प्रकार चार ये, छः पूर्वोक्त अङ्ग और चार वेद मिलाकर चतुर्दश महाविद्या कही जाती हैं।

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥

या० व०।

वेदों के उपवेद क्रमशः आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और स्थापत्यवेद (अर्थशास्त्र) हैं। इन के समेत उक्त चतुर्दश विद्याएँ अष्टादश विद्या के नाम से प्रसिद्ध हैं।

१–इस लेख में निम्नाङ्कित विषयों का उद्देश्य तथा लक्षणपूर्वक संक्षेप में परिचय दिया गया है—१ चारों वेद। २ उपवेद। ३ ब्राह्मणभाग। ४ वेद के षडङ्ग। ५ षड्दर्शन। ६ अष्टादश पुराण। ७ उपपुराण। ८ शैवशास्त्र ९ वैष्णवशास्त्र। १० शाक्तशास्त्र।

चिकित्साशास्त्र का नाम आयुर्वेद, युद्धविद्या का नाम धनुर्वेद, संगीतविद्या का नाम गान्धर्ववेद तथा शिल्पशास्त्र का नाम स्थापत्यवेद है। इस प्रकार स्थूल रीति से नामनिर्देश हुआ।

आगे प्रत्येक का कुछ परिचय संक्षिप्त रूप से कहा गया है।

(वेद)

धर्म और ब्रह्म दोनों के प्रतिपादक स्वतः प्रमाण वाक्य का नाम वेद है। वेद मन्त्र तथा ब्राह्मण दो भागों में विभक्त हैं। जो भाग गायत्री, त्रिष्टुप् आदि छन्दों से युक्त हैं और स्वरसमेत गानयोग्य हैं उन को मन्त्रभाग कहते हैं।

ब्राह्मणभाग के भीतर उपनिषद् आदि सभी आते हैं। यह ब्राह्मणभाग तीन प्रकार का है। विधिरूप, अर्थवाद और तीसरा इन दोनों से विलक्षण न विधिरूप, न अर्थवादरूप है। इन में से विधिरूप के चार भेद हैं। उत्पत्तिविधि, अधिकारविधि, विनियोगविधि और प्रयोगविधि।

यज्ञादि कर्म के स्वरूप को जनानेवाले वाक्यों का नाम उत्पत्तिविधि है। जैसे 'आग्नेयोऽष्टाकपालो भवति' इस के द्वारा यज्ञादि के कर्म का स्वरूप जनाया जाता है।

यज्ञादि के फलसंबन्ध को बतानेवाली विधि का नाम अधिकारविधि है। जैसे 'दर्शपौर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत'।

कर्म के अङ्गसंबन्ध को जनानेवाली विधि का नाम विनियोगविधि है। जैसे 'व्रीहिभिर्यजेत, समिधो यजति' इत्यादि।

अङ्गों के सहित प्रधान कर्म की एकता को जनानेवाली जो पूर्वोक्त तीन विधियाँ हैं उन्हीं का नाम प्रयोगविधि है।

वैदिककर्म के दो भेद हैं। गुणकर्म और अर्थक[र्म]। गुणकर्म के भी चार भेद हैं। उत्पत्ति, आ[प्ति], विकृति और संस्कृति।

अर्थकर्म के भी दो भेद हैं। अङ्ग और प्रधा[न]। इन में भी अङ्ग दो प्रकार का है। सन्निपत्[यो]पकारक और आरादुपकारक। इस तरह ब्राह्मणभा[ग] के विधिरूपांश का भेद संक्षेप में दिखाया गया। [अब] अर्थवाद अंश के भी कुछ भेद दिये जाते हैं।

विधिवाक्य में प्रवृत्ति कराने के लिए प्रशंसाप[र] जो वाक्य हैं और विधिविरुद्ध कार्य से वि[मुख] कराने के वास्ते जो निन्दापरक वाक्य हैं उन [दो] को अर्थवाद कहा जाता है।

अर्थवाद के मुख्यतः तीन भेद हैं। गुणवा[द], अनुवाद, भूतार्थवाद। जिस में दूसरे प्रमाणों [से] विरुद्ध अर्थ समझाया जाय उसे गुणवाद कहते हैं और अन्यान्य प्रमाणों से कहे गये अर्थ [का] पुनः पुनः निश्चय करानेवाले वाक्यों को अनुवा[द] कहते हैं। इन दोनों से विलक्षण वाक्य भूता[र्थ]वाद कहलाते हैं।

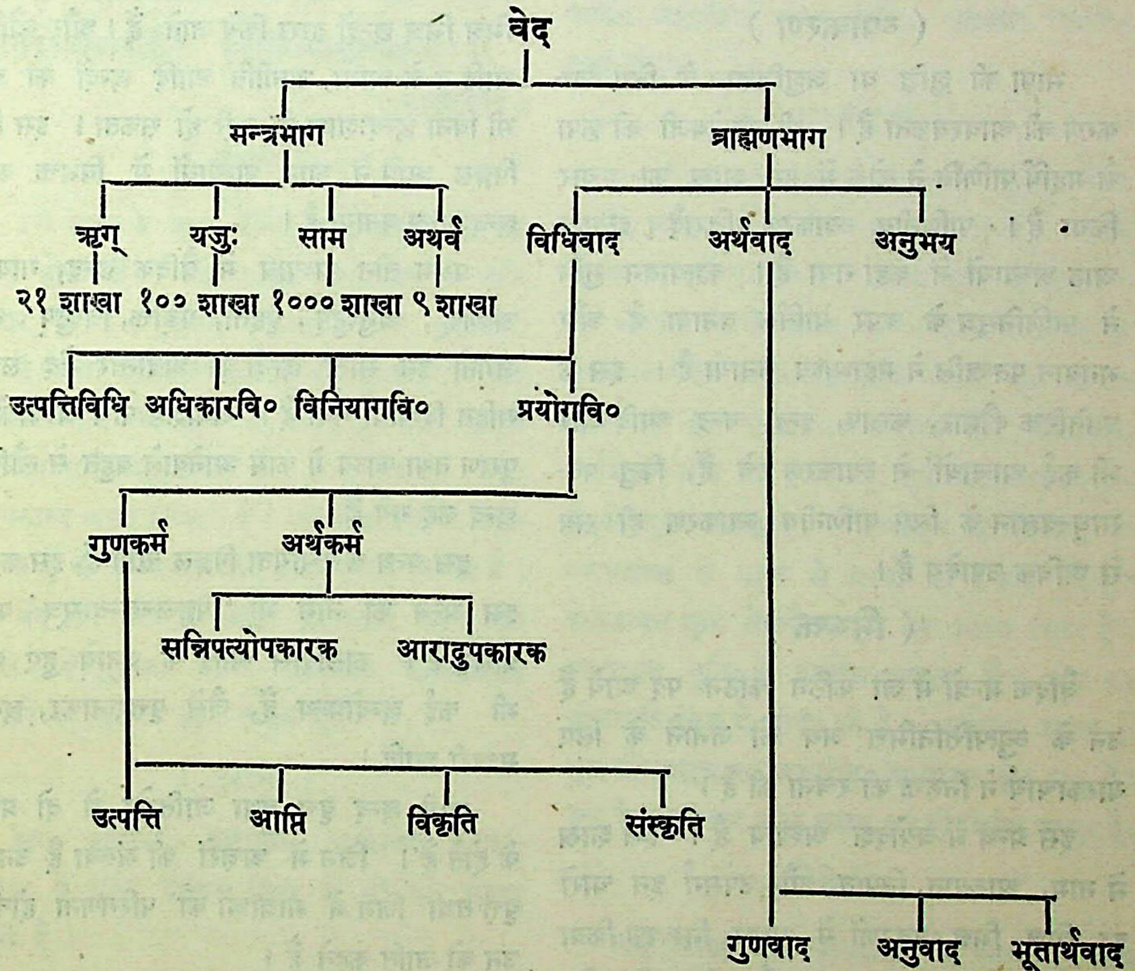
विधि और अर्थवाद इन दोनों से भिन्न वाक्[य] को वेदान्त कहते हैं। कर्म तथा अनुष्ठान [का] विषय वेदान्त में रहने के कारण उस को विधिवा[क्य] नहीं कहा जा सकता। तथा परम पुरुषार्थ परब्रह्म [का] प्रतिपादन ही चरम लक्ष्य होने के कारण निन्दा[-] स्तुति से रहित वेदान्तवाक्यों को अर्थवाद भी न[हीं] कहा जा सकता।

वेद का कर्मकाण्डभाग यज्ञनिर्वाह के लि[ए] ऋक्, यजुः, साम नाम से तीन भागों में है[।] ऋग्वेद में हौत्र प्रयोग, यजुर्वेद में आध्वर्यव प्रयो[ग] और सामवेद में औद्गात्र प्रयोग है। इन्हीं को त्र[यी] भी कहा जाता है।

चौथा अथर्ववेद यज्ञकर्म का उपयोगी नहीं है, किंतु शान्तिक, पौष्टिक और अभिचारादि कर्म को बतानेवाला है।

इन चारों वेदों की अनेक शाखाएँ भी हैं जिन में सब उपलब्ध नहीं हैं। ऋग्वेद की २१ शाखाएँ, यजुर्वेद की १०० शाखाएँ, सामवेद की १००० शाखाएँ, अथर्ववेद की ९ शाखाएँ हैं। व्याकरण महाभाष्य में इस का प्रमाण मिलता है।

× × ×



(वेदाङ्ग)

वेद के मुख्य छः अङ्गों का नाम पहले गिनाया जा चुका है। अब उन के प्रतिपाद्य विषय का परिचय कराया जाता है।

(शिक्षा)

उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत स्वर तथा व्यञ्जनात्मक वर्णों के उच्चारण का यथार्थ ज्ञान करा देना ही शिक्षाशास्त्र का प्रयोजन है।

इस शास्त्र के जाने विना वैदिक मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण नहीं हो सकता, और शुद्ध उच्चारण न होने से यज्ञादि कर्म नष्ट हो जाते हैं तथा अनिष्ट की संभावना होती है। अशुद्ध मन्त्र वज्र के समान यजमान का नाश करते हैं, ऐसा शिक्षा में लिखा है।

(व्याकरण)

भाषा की शुद्धि वा अशुद्धिज्ञान के लिए व्याकरण की आवश्यकता है। श्री महादेवजी की कृपा से महर्षि पाणिनि ने लोक में इस शास्त्र का प्रचार किया है। पाणिनीय व्याकरण वृद्धिरादैच् इत्यादि आठ अध्यायों में कहा गया है। कात्यायन मुनि ने पाणिनिसूत्र के ऊपर वार्तिक वनाया है और भगवान् पतञ्जलि ने महाभाष्य वनाया है। इस के अतिरिक्त कौमार, कलाप, इन्द्र, चन्द्र आदि और भी कई आचार्यों ने व्याकरण रचे हैं, किंतु पदसाधुत्त्वज्ञान के लिए पाणिनीय व्याकरण ही सब से अधिक उपादेय है।

(निरुक्त)

वैदिक मन्त्रों में जो कठिन कठिन पद आये हैं उन के व्युत्पत्तिनिमित्त अर्थ को जनाने के लिए यास्काचार्य ने निरुक्त की रचना की है।

इस ग्रन्थ में त्रयोदश अध्याय हैं। इस शास्त्र में नाम, आख्यात, निपात और उपसर्ग इन चारों का भिन्न भिन्न प्रकरणों में सुन्दर निरूपण किया गया है। निघण्टु नामक एक और भी इसी अभिप्राय का ग्रन्थ है; इसे भी यास्क मुनि ने ही वनाया है। यह पाँच अध्यायों में विभक्त है, और निरुक्तशास्त्र के अन्तर्गत ही माना जाता है। इस के द्वारा वेदोक्त द्रव्य, देवता, पर्यायशब्दों का विशद ज्ञान होता है।

(छन्द)

गायत्री आदि छन्दों से युक्त जो मन्त्रभाग उन में कौन छन्द किस मन्त्र का है इस वात ज्ञान कराने के लिए छन्दशास्त्र की आवश्यक है। इस के अतिरिक्त भिन्न भिन्न अनुष्ठानादिक भिन्न भिन्न छन्दों द्वारा किये जाते हैं। और लौकि साहित्य के आर्या, उपगीति आदि छन्दों का ज्ञा भी विना छन्दःशास्त्र के नहीं हो सकता। इस लि पिङ्गल ऋषि ने आठ अध्यायों में विभक्त क छन्दःशास्त्र वनाया है।

प्रथम तीन अध्याय में वैदिक छन्द, गायत्र उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् त जगती इन सातों छन्दों का अवान्तर भेद लक्ष सहित दिखाया गया है। अवशिष्ट पाँच अध्यायों पुराण तथा काव्य में काम आनेवाले बहुत से लौकि छन्द कहे गये हैं।

इस ग्रन्थ के रचयिता पिङ्गल ऋषि हैं, इस कार इस ग्रन्थ का नाम भी 'पिङ्गलच्छन्दःसूत्र' क प्रसिद्ध है। कालीदास आदि के वनाये हुए औ भी कई छन्दोग्रन्थ हैं, जैसे वृत्तरत्नाकर, छन्द मञ्जरी आदि।

सभी छन्द वृत्त तथा जातिभेद से दो प्रका के होते हैं। जिन में अक्षरों की संख्या है उन वृत्त तथा जिन में मात्राओं की परिगणना होती उन को जाति कहते हैं।

(ज्यौतिष्)

वैदिक कर्म के अङ्गस्वरूप दर्श पौर्णमासादि याग हैं उन के कालज्ञान के लिए श्री सूर्य भग वान् ने प्रथम इस शास्त्र की रचना की। इस अनन्तर गर्ग आदि कई मुनियों ने भी ज्यौतिष्

कतिपय ग्रन्थों की रचना की है। अठारह आचार्य इस शास्त्र के प्रधान प्रणेता हैं। यथाः—

सूर्य्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठात्रिपराशराः।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिराः॥
लोमशः पौलिशश्चैव च्यवनः यवनो गुरुः।
शौनकोऽष्टादशश्चैते ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः॥

(कश्यपः स्मृति)

(कल्प)

इस शास्त्र के द्वारा वैदिक अनुष्ठान के क्रम का ज्ञान होता है। यह शास्त्र प्रयोगभेद से तीन प्रकार का है। हौत्र, आध्वर्यव और औद्गात्र। इन में से जो हौत्रप्रतिपादक हैं वे आश्वलायन और सांख्यायनादि आचार्यों के बनाये हुए हैं। जितने आध्वर्यवप्रयोगप्रतिपादक हैं वे बौधायन तथा आपस्तम्ब आदि मुनिकृत हैं। जो औद्गात्रप्रयोग प्रतिपादक हैं वे कात्यायन और द्राक्षायनादि निर्मित हैं।

वेद के मुख्य छः अङ्गों का वर्णन करके अब पहले कहे पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्रादि उपाङ्गों का परिचय दिया जाता है।

(पुराण)

सर्ग, प्रतिसर्ग, वंशावलि, मन्वन्तर, वंशानुचरित, ये पाँच लक्षण जिस में हों उसे पुराण कहते हैं।

कुछ पुराण ऐसे भी हैं जिन में तीन या दोही लक्षण मिलते हैं। भगवान् बादरायण (वेदव्यासजी) पुराणों के रचयिता हैं। पुराणों के दो भेद हैं। महापुराण और उपपुराण।

महापुराण अठारह हैं।

ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिङ्ग, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड तथा ब्रह्माण्ड।

इसी तरह उपपुराण भी अठारह हैं।

सनत्कुमार, नृसिंह, स्कान्द, शिवधर्म, दुर्वासा, नारद, कपिल, मानव, उशनस्, ब्रह्माण्ड, वरुण, काली, माहेश्वर, साम्ब, सौर, पाराशर, मारीच तथा भृगु।

(न्यायशास्त्र)

इस शास्त्र का दूसरा नाम आन्वीक्षिकी विद्या भी है। न्यायदर्शन पाँच अध्यायों में है। महर्षि गौतम ने इसे बनाया है। चार्वाकादि नास्तिकमतों का खण्डन करके जगत् के कारणरूप ईश्वर का संस्थापन और संशयच्छेदपूर्वक वेदार्थ का निश्चय करना ही इस शास्त्र का प्रयोजन है। इस शास्त्र में ईश्वर जीव से पृथक् है, इस लिए न्यायदर्शन द्वैतवादमूलक शास्त्र है। गौतमसूत्र के आधार पर न्यायशास्त्र के बहुत से ग्रन्थों की रचना हुई है। वात्स्यायन मुनि ने गौतमसूत्र पर भाष्य किया है। कात्यायन मुनि ने वार्तिक बनाया है। उस पर वाचस्पति मिश्र ने टीका की है। वर्तमान समय में मूल गौतमसूत्र का अध्ययन अध्यापन छूट रहा है। उस के स्थान पर नव्य न्याय का ही विशेष आदर है।

(वैशेषिक)

यह शास्त्र भी न्यायशास्त्र के अन्तर्गत माना जाता है। इस के रचयिता कणाद ऋषि हैं।

प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान नामक सोलह पदार्थों के उद्देश्य, लक्षण, परीक्षा द्वारा तत्त्वज्ञानलाभ करना ही इस शास्त्र का प्रयोजन है।

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छः पदार्थों और सप्तम अभाव का व्युत्पादन इस शास्त्र में किया गया है। इस में विशेष नाम का मुख्य पदार्थ है, इस कारण इस का नाम वैशेषिकदर्शन है।

वैशेषिकदर्शन के दस अध्याय हैं। उन में क्रमशः पृथिवी, जल, तेज, वायु, काल, दिक्, आत्मा, अन्तःकरण, शरीर, दान, प्रतिग्रह, आश्रमधर्म, विशेष, बुद्धि, गुण, समवाय, सविकल्पक तथा निर्विकल्पक प्रत्यक्ष, विशिष्ट वैशिष्ट्यावगाही प्रत्यक्ष, अलौकिक सन्निकर्षादि, अनुमान, आत्मगुण, कारणादि तथा शब्दादि का निरूपण है।

(मीमांसादर्शन)

कर्ममीमांसा और ब्रह्ममीमांसा दोनों ही मीमांसादर्शन के भीतर आते हैं। कर्ममीमांसा को पूर्वमीमांसा भी कहते हैं। इस के प्रणेता जैमिनि ऋषि हैं। श्रुतियों के परस्पर विरुद्ध अर्थों का समन्वय करते हुए यज्ञादि के अङ्गों का विवेचन करना इस दर्शन का लक्ष्य है।

धर्मप्रमाण, धर्मभेदाऽभेद, शेषाऽशेषिभाव, कृत्यर्थ एवं पुरुषार्थभेद से प्रयोगविशेष, श्रुत्यर्थ पठनादि द्वारा क्रमभेद, अधिकारविशेष, सामान्यातिदेश, विशेषातिदेश, ऊह, बाध, तन्त्र, प्रसंग, इन द्वादश अध्यायों में मीमांसादर्शन विभक्त है।

इस का दूसरा नाम जैमिनीयदर्शन भी है।

(ब्रह्ममीमांसा)

'श्री वेदव्यासजी' इस शास्त्र के रचयिता हैं। इस को लोग वेदान्तदर्शन, उत्तरमीमांसा अथवा अद्वैतदर्शन भी कहते हैं। अद्वैततत्त्व अर्थात् जीव ब्रह्म का ऐक्य मानना ही इस शास्त्र का लक्ष्य है।

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा इत्यादि वेदान्तसूत्रों पर भगवान् शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रतिपादन करनेवाला शांकरभाष्य रचा। इस शास्त्र का एक नाम मायावाद भी है।

यह दर्शन चार अध्यायों में विभक्त है। उन में क्रमशः जीव और ब्रह्म की एकता, विरोधपरिहार, साधननिरूपण और सगुण, निर्गुण ब्रह्मज्ञान का फल निर्णीत है। प्रत्येक अध्याय में चार चार पाद हैं। इस दर्शन का चरम सिद्धान्त विवर्तवाद है।

यह मुमुक्षुवर्ग के लिए अत्यन्त आदरणीय वस्तु है।

(धर्मशास्त्र)

धर्मशास्त्र का दूसरा नाम स्मृतिसंहिता भी है। इन में अनेक ऋषियों द्वारा कही गई स्मृतियाँ संमिलित हैं। उन में से कुछ के मुख्य नाम निम्नलिखित हैं।

मनु, याज्ञवल्क्य, विष्णु, हारीत, यम, अङ्गिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त, शातातप, पाराशर, गौतम, शङ्ख, लिखित, आपस्तम्ब, उशना, व्यास, कात्यायन, बृहस्पति, देवल, नारद तथा पैठीनस प्रभृति ऋषियों की बनाई हुई स्मृतियाँ अपने अपने निर्माताओं के नाम से प्रसिद्ध हैं।

जैसे—मनुस्मृति, पाराशरस्मृति आदि।

इन में आचार, अनाचार, सत्याऽसत्य, भक्ष्याऽभक्ष्य, दिनचर्या, पातकभेद, प्रायश्चित्तनिरूपण, द्रव्यशुद्धि, जननाशौच, मरणाशौच, साक्षीनिरूपण, राजधर्म, प्रजाधर्म, स्त्रीधर्म, आश्रमधर्म, जातिसंकर, व्रतादि निरूपण इत्यादि नाना विषयों का वर्णन किया गया है।

उपर्युक्त स्मृतियों में प्रधान मनुस्मृति ही है।

इस के अविरुद्ध होने पर ही अन्य स्मृतियों का प्रामाण्य माना जाता है।

इन धर्मशास्त्रों के वचनों को लेकर कई निवन्ध-ग्रन्थ भी वने हैं, जैसे—निर्णयसिन्धु, प्रायश्चित्तकदम्व, आचारादर्श आदि।

लौकिकव्यवहार को शास्त्रानुकूल चलाना ही इस शास्त्र का लक्ष्य है।

(सांख्यशास्त्र)

इस शास्त्र की रचना भगवान् कपिलदेवजी ने की है। इस में आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिदैहिक तापत्रय की निवृत्ति तथा अत्यन्त पुरुपार्थ का विषय कहा गया है।

यह छः अध्यायों में समाप्त हुआ है। इस शास्त्र को श्री कपिलदेवजी ने अपनी माता देवहूती के प्रति कहा था। पौराणिक ऋषि लोग इस शास्त्र का वड़ा आदर करते थे।

इस शास्त्र का लक्ष्य प्रकृति पुरुष का विचार तथा ज्ञान है। इस में पचीस तत्त्व माने गये हैं जिन में पाँच तन्मात्राएँ, एकादश इन्द्रियाँ, पञ्च महाभूत, अहंतत्त्व, महत्तत्त्वादि संमिलित हैं। इस दर्शन के मत से महत्तत्त्व से लेकर पृथिवी आदि जितने पदार्थ हैं सभी साक्षात् अथवा परंपरया मूल प्रकृति के परिणाममात्र हैं। पुरुष कूटस्थ, नित्य और अपरिणामी है। मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ इत्यादि सभी ज्ञान आत्मा के नहीं, किंतु वुद्धि के धर्म हैं। केवल मोहवश होकर आत्मा वुद्धिःस्थ सुख तथा दुःख को अपना मानने लगती है।

(योगशास्त्र)

योगशास्त्र को भगवान् पतञ्जलि मुनि ने वनाया है। इस का दूसरा नाम पातञ्जलदर्शन भी है। यह दर्शन—'अथ योगानुशासनम्' इत्यादि चार पादों में संपूर्ण हुआ है।

प्रथम पाद में चित्त की वृत्तियों का दमन करते हुए समाधि का अभ्यास, वैराग्य का स्वरूप और साधन का निरूपण किया गया है।

द्वितीय पाद में यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि अष्टाङ्ग का विषय है।

तृतीय पाद में योग की विभूति का वर्णन है।

चतुर्थ पाद में कैवल्य (निर्वाणमुक्ति) का निरूपण किया गया है।

सांख्यदर्शन के पचीस तत्त्वों का चरम तत्त्व पुरुष है और योगदर्शन का अन्तिम तत्त्व परात्पर परमेश्वर है।

इस दर्शन में ज्ञानयोग और क्रियायोग दोनों का अधिकारीभेद से निरूपण किया गया है। चित्त-शुद्धलोक को ज्ञानयोग का, जिन का चित्त शुद्ध नहीं है उन को क्रियायोग का आश्रयण करने को कहा गया है। मोक्ष इस शास्त्र का ध्येय है।

(काव्यशास्त्र)

इस शास्त्र के पढ़ने से कवित्वशक्ति तथा गद्य पद्यों के अर्थ का सामर्थ्य, व्यवहार की चतुरता, कविता के दोष गुण का विवेचन करना इत्यादि वहुत से विषयों का ज्ञान होता है।

रसात्मक वचनों द्वारा सुकुमारमति जन को कल्याणमार्ग पर पहुँचाना इस शास्त्र का लक्ष्य है। जिस तरह वालकों को मीठाई के प्रलोभन से कटु औषध भी पिलाया जा सकता है, ठीक उसी तरह काव्यशास्त्र के सरस और स्वादु वाक्यों से उत्पथगामी मनुष्य को भी अपने लक्ष्यमार्ग का ज्ञान हो सकता है।

'कान्तेव सरसतापादनेनाभिमुखीकृत्य रामादिवद्वर्तितव्यं न रावणादिवत्' इत्यादि।

(काव्यप्रकाश)

ईश्वर संबन्धी सत्काव्य बनानेवाले को मोक्षप्राप्ति भी सुलभ है। जगन्नाथ कवि 'गङ्गालहरी' बनाकर मुक्त हो गये। भर्तृहरि को वैराग्यशतक की रचना से तत्त्वज्ञान हो गया। जयदेव प्रभृति कवि गीतगोविन्द आदि काव्यों की रचना कर भगवल्लीनता को प्राप्त हुए। ऐसे अनेक उदाहरण हैं।

× × ×

काव्य

- दृश्य
  - रूपक
    - नाटक
    - प्रकरण
    - भाण
    - व्यायोग
    - समवकार
    - डिम
    - ईहामृग
    - अङ्क
    - वीथी
    - प्रहसन
  - उपरूपक
    - नाटिका
    - त्रोटक
    - गोष्ठी
    - सट्टक
    - नाट्यरासक
    - प्रस्थान
    - उल्लाप्य
    - काव्य
    - प्रेङ्खण
    - रासक
    - संलापक
    - श्रीगदित
    - शिल्पक
    - विलासिका
    - दुर्मल्लिका
    - प्रकरणी
    - हल्लीश
    - भणिका
- श्रव्य
  - पद्य
    - महाकाव्य
    - खण्डकाव्य
    - कोषकाव्य
  - गद्य
    - वृत्तगन्धि
    - उत्कलिकाप्राय
    - चूर्णक
    - मुक्तक
  - मिश्र
    - चम्पू
    - विरुद
    - करम्भक

(आगामी अङ्क में समाप्त)

सर्वधर्मपरिषद्

(ले०—श्री स्वामी चिन्मयानन्दजी, अल्मोड़ा)

धर्म का जीता जागता रूप क्या है ? कौन सा धर्म सब से बड़ा है ? इस का यथार्थ विचार बहुत कम लोग ही पहले करते थे या करते भी होंगे। सभी धर्मों के माननेवाले प्रकाश्य या अप्रकाश्य भाव से अपना अपना धर्म ही बड़ा मानते हैं और उसी का ढिंढोरा पीटते हैं। यह बात थोड़ी बहुत सभी धर्मों के संबन्ध में सच है। संसार में कभी कोई धर्म या मजहब बड़ा हो जाता है—अपना सिर ऊँचा कर लेता है; फिर कालचक्र की गति के अनुसार वह कुछ दब गया, तो कोई दूसरा धर्म ऊपर उठ जाता है। साधारणतया राजशक्ति के साथ साथ राजा का धर्म ही ऊपर उठा करता है। चाहे वह धर्म तर्कयुक्त और विचारपूर्ण हो या न हो, चाहे वह काल से—ऐतिहासिक दृष्टि से—आदिम और भाव से मौलिक हो या न हो, उस में धर्म के यथार्थ तत्त्व का अनुभव करनेवाले सैकड़ों महापुरुष पैदा हुए हों या न हुए हों, इस बात की पर्वाह नहीं है। राजशक्ति की नीवँ पर ही धर्म प्रतिष्ठित दीख पड़ता है। जब हिंदूराज्य प्रबल था तब इस भारतवर्ष में हिंदूधर्म ही प्रधान था (अब भी नहीं है, ऐसा नहीं ; किंतु बीच में कुछ काल के लिए निस्प्रभ सा हो गया था)। जब मुसलमानों का राज्य हुआ, तो उन्हीं के इस्लाम धर्म का प्रचार होता रहा। बौद्ध-धर्मावलम्बियों के दिनों में सारे भारतवर्ष में बौद्धधर्म का ही ज्यादा प्रभाव था। फिर अँगरेजी राज्य में बंगाल आदि के इतिहास पर कुछ नजर डालने पर देखा जाता है कि ईसाईधर्म का भी प्रभाव कम नहीं पड़ा है। आज विश्व के तीन चौथाई राजाओं का धर्म ईसाईधर्म है। उन्नीसवीं सदी में यह धर्म बहुत ज्यादा बढ़ गया था। इधर भारत के बहुतेरे लोग ईसाईधर्म को अपनाने लगे ; उधर विश्व में उस धर्म के प्रचार का नित्य नये नये ढंग से कौशल किया जाता था। इसी प्रकार परिकल्पना के फलस्वरूप ईसाईधर्म को माननेवालों से उन्नीसवीं सदी की महत्त्वपूर्ण घटना हुई थी 'सर्वधर्मपरिषद' की योजना। यह सर्वधर्मपरिषद् अमेरिका के चिकागो शहर में १८९३ ई० के सितंबर मास में हुई थी। इस का उद्देश्य था और कुछ और हुआ और कुछ। कैथलिक ईसाईसंप्रदायवाले समझ बैठे थे कि उस सर्वधर्म-परिषद् में उन का धर्म ही पृथिवी का सब से श्रेष्ठ धर्म प्रमाणित होगा। अस्तु।

अवतरणिका

सर्वधर्मपरिषद् क्या है ? अँगरेजी में इसे Parliament of Religiens कहते हैं। इस शब्द का पर्याय-वाची कौन सा शब्द भाषा में प्रयोग करने योग्य है, उस का समाधान होना चाहिए। इस के पर्याय में बहुत से बंगाली लेखक "विश्वधर्म संमेलन", "धर्ममहासभा" "सर्वधर्ममहासंमेलन" आदि शब्दों का उपयोग करते हैं। इस के लिए "धर्मप्रति-निधिसभा" और "विश्वधर्मसमिति" का भी उप-योग कर सकते हैं। 'गीताधर्म' के 'विश्वधर्माङ्क के परिशिष्टाङ्क' में छपी हुई 'विश्वधर्माङ्क की शब्द-

Parliament of Religions के पर्याय शब्द

सूची' में इस का अनुवाद 'सर्वधर्मपरिषद्' पर्याय से किया गया है। हम इस निवन्ध में Parliament of Religions के पर्याय में 'सर्वधर्मपरिषद्' का ही उपयोग करेंगे।

अब यह विचार होने लगा कि सर्वधर्मपरिषद् का पहला अनुष्ठान कहाँ हुआ था और किस ने कराया था? इस की परिकल्पना भी किस जाति ने और कौन धर्मावलम्बियों ने पहले पहल की थी? बहुत से लोग हाँ में हाँ मिलाकर यह कहेंगे कि सभ्यता और शिक्षा के सब से ऊँचे आसन पर पहुँचे हुए पाश्चात्य देशनिवासियों की ही यह परिकल्पना थी। वर्षों से प्रयत्न करके और लाखों रुपये खर्च करके अमेरिका के लोगों ने इस कल्पना को कार्यरूप में परिणत किया था। आज सर्वधर्मपरिषद् से होनेवाले अपूर्व फल पर जितना ही विचार किया जाता है उतना ही इस की परिकल्पना का श्रेय पश्चिमी जनता को दिया जा रहा है। कलाविज्ञानों में निपुण, प्रभूत ऐश्वर्यवान् एवं स्वतन्त्र राज्य के गर्व से गर्वित पाश्चात्य जनों के लिए यह श्रेय शोभनीय ही है। इस युग में उन्होंने अनूठी घटना ही घटित की थी, इस में कोई संदेह नहीं। किंतु यह परिकल्पना उन की मौलिक नहीं थी। इसी पूर्व भूखण्ड में—एशिया में—ही आज से आठ सौ वर्ष पहले इस की परिकल्पना हुई थी। पाठक, आप जानते हैं, इसी भारतवर्ष में बौद्धधर्म की उत्पत्ति हुई थी और कालक्रम से उस धर्म का सारे विश्व में प्रचार हुआ था। इस धर्म का प्रधान केन्द्र, किसी समय (बल्कि अब भी है) एशिया भूखण्ड का चीन देश था। इस चीन देश में ईसा के जन्म से बारहवीं सदी में एक अपूर्व धर्मपरिषद् हुई थी। वहाँ उन दिनों के सभ्य देशों से सैकड़ों प्रतिनिधि गये हुए थे। हजारों की बैठक और धर्मचर्चा के रूप में वहाँ एक अभूतपूर्व व्यापार हुआ था। धर्म के (संघबद्धभाव से) प्रचार की परिकल्पना भी बौद्धों के ही मस्तिष्क की उपज है। इन्हीं के अनुकरण से ईसाईधर्म के "प्रचारसंघ" का भी उद्भव हुआ। बौद्धयुग की सभ्यता और शिक्षा के आकाशस्पर्शी गौरव का मुकाबला आज तक कोई भी कर नहीं सका। उसी धर्मावलम्बियों की परिकल्पना से चीन में एक विराट् धर्मपरिषद् की बैठक हुई थी। उन दिनों ऐसी बैठक नालन्दा विश्वविद्यालय आदि और भी बहुत स्थानों में हुई थीं। अत: इस प्रकार की धर्मपरिषद् के अनुष्ठान की परिकल्पना का वास्तविक श्रेय उन्हीं को है। बौद्धयुग में (बारहवीं सदी में और अन्यान्य समय में होनेवाली भी) इस प्रकार की धर्मपरिषद् की योजनाएँ जब जब हुई होंगी, उन की खोज ऐतिहासिक गवेषणा (खोज करनेवाले करें। हम ऐतिहासिक पण्डित नहीं हैं। हम तो चाहते हैं कि कोई ऐतिहासिक खोज करनेवाले विद्वान् इस पर भली भाँति प्रकाश डालें।

सर्वधर्मपरिषद् पाश्चात्यों की मौलिक परिकल्पना नहीं है।

उन्नीसवीं सदी में–१८९३ ई० में अमेरिका के चिकागो शहर में सर्वधर्मपरिषद् का जो अनुष्ठान हुआ था वह आज विशिष्ट रूप से इतिहासप्रसिद्ध हो रहा है। चिकागो की सर्वधर्मपरिषद् पर बहुत कुछ प्रकाश हम ने पिछले महीने में प्रकाशित, गीताधर्म में "सर्वधर्मपरिषद्, चिकागो (अमेरिका) और स्वामी विवेकानन्द" शीर्षक निवन्ध में डाला है। संसार के इतिहासप्रसिद्ध चिकागो शहर में १८९३ ई० के सितंबर महीने में ता० ११ से २७ तक कुल सत्र

चिकागो की सर्वधर्मपरिषद्।

दिन सर्वधर्मपरिषद् की कैसी अपूर्व योजना हुई थी, उस निवन्ध से पाठकों को इस वात का कुछ परिचय मिला होगा। हम चिकागो की धर्मपरिषद् की दुवारा व्यर्थ आलोचना इस निवन्ध द्वारा नहीं करना चाहते हैं। यहाँ हम केवल इस परिषद् के आह्वानकारियों के उद्देश्य की व्यर्थता और परिषद् के अपूर्व फल पर विश्ववरेण्य स्वामी विवेकानन्दजी के दो मन्तव्यों का उल्लेखमात्र करेंगे। स्वामीजी ने चिकागो से ता० ११ जनवरी, १८९५ ई० को किसी को लिखा था—"The Parliament of Religions was organized with the intention of proving the Supriority of the Christian religion over other forms of faith;..."—विश्व के और और धर्मों से वढ़कर ईसाईधर्म का महत्त्व या श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिए ही इस सर्वधर्मपरिषद् की योजना की गई थी। मद्रास से प्रकाशित होनेवाले "हिंदू" पत्र (फरवरी, १८९७) ने अपने प्रतिनिधि के साथ होनेवाले श्री स्वामीजी के एक वार्तालाप को प्रकाशित किया था। उस में स्वामीजी ने कहा था—"The Parliament of Religions, as it seems to me, was in tended for a 'heathen show' before the world; but it turned out that the heathens had the upper hand, and made it a Christian show all around. So the Parliament of Religions was a failurc from the christian standpoint, seeing that the Roman catholics, who were the organisers of that Parliament, are, when there is a talk of another Parliament at Paris, now steadily opposing it. But the Chicago Parliament was a Tremendous Success for India and Indian thought. It helped on the tide of vedanta, which is flooding the world. The American People,—of course, mimes the fanatical priests and Church-women, are vory glad of the results of the Parliament."—इस लेख से जाना जाता है कि कैथलिक ईसाई का उद्देश्य ही व्यर्थ नहीं हुआ था, अपितु उस सर्वधर्मपरिषद् में भारत की गौरवपताका और सनातन वेदान्तधर्म की विजयवैजयन्ती फहराई गई थी।

सर्वधर्मपरिषद् में श्री स्वामी विवेकानन्दजी की परिषद् के फल की घोषणा।

श्रीमत् स्वामी विवेकानन्दजी ने चिकागो की सर्वधर्मपरिषद् में अपने गुरु परमहंस श्री रामकृष्णजी के 'सर्वधर्मसमन्वयवाद' का प्रचार किया था। एकमात्र वेदान्तधर्म को छोड़कर हिंदुओं के द्वैतमार्गानुसारी और सव संप्रदाय तथा विश्व का कोई भी धर्म, परमहंस श्री रामकृष्णजी के प्रकट होने से पूर्व, एक दूसरे का मतवाद सहन नहीं कर सकते थे। हालाँ कि वेदान्तमार्गानुसारी भी यथार्थ वेदान्त का भेदान्तमतवाद भूलकर औरों से लड़ते रहते थे। विश्वाचार्य तथा विश्वविजयी वीर श्रीमत् स्वामी विवेकानन्दजी ने चिकागो में सत्रह दिनों तक जो सर्वधर्मपरिषद् हुई थी उस के फलस्वरूप घोषणा की थी कि यदि इस सर्वधर्मपरिषद् ने विश्व को कुछ सिखलाया है तो वह है—"पवित्रता, शुद्धता (शौच) एवं पुण्यभाव संसार की किसी विशेष धर्ममण्डली की निजी संपत्ति नहीं हैं; और हर एक संप्रदाय ने अति उच्च एवं आदर्शचरित्र पुरुषों और स्त्रियों को पैदा किया

है। अब इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के आगे भी यदि कोई अपने धर्म की ही रक्षा और दूसरों के विनाश की कल्पना करे, तो उस पर मुझे तरस आता है। मैं उसे बतला देता हूँ कि शीघ्र प्रत्येक धर्ममत की पताका पर उन के (संप्रदायवालों के) रोकने पर भी—उन की अनिच्छा होने पर भी—यह लिखा जायगा—परस्पर सहायक बनो, विरोधी नहीं; अनुकूल बनो, प्रतिकूल नहीं; रक्षक बनो, विनाशकारी नहीं। सहायता और सहयोग (न कि युद्ध); समावेश और सावर्ण्य (न कि विनाश); योग और शान्ति (न कि कलह)।"

धर्मपरिषद् और पैरिस की विज्ञानसभा।

चिकागो में सर्वधर्मपरिषद् की योजना के बाद १९०१ ई० के अक्टूबर महीने में यूरोप के पैरिस शहर में सर्वधर्मपरिषद् की योजना करने का प्रयत्न हो रहा था। इस समय पैरिस में एक विराट् प्रदर्शिनी (Exhibitian) हुई थी। यह महामेला अपने ढंग का एक अनूठा मेला था। इसी के साथ विश्व के वैज्ञानिक पण्डितों की एक परिषद् भी बैठी थी। विज्ञानमहासभा में भारतवर्ष से श्रीयुत जगदीशचन्द्र वसु भी गये थे। इन का उस विज्ञानसभा में अद्भुत मान हुआ था। पैरिस के महामेला के साथ साथ होनेवाली वैज्ञानिकों की विज्ञानसभा ने ही विशेष रूप से सफलता लाभ की थी। इस महामेला और विज्ञानसभा के साथ ही जो सर्वधर्मपरिषद् की योजना होने की बात थी वह यथार्थतया हो नहीं सकी। इस का कारण यह है कि चिकागो में सर्वधर्मपरिषद् का फल देखकर ईसाईपादरी लोग-विशेषतया रोमन कैथलिक संप्रदाय—खूब ही निराश और क्षुब्ध हुए थे। उन का ख्याल था कि उस परिषद् में ईसाईधर्म का ही महत्त्व प्रतिष्ठित होगा किंतु दैववश फल दूसरे ही प्रकार का हुआ था। ईसाई धर्म के सिवाय हिंदूधर्म का उदार समन्वयवाद सर्व छा गया था। इस बार पैरिस में चिकागो का अनुकरण कर फिर उस प्रकार सर्वधर्मपरिषद् की योजना करने पर रोमन कैथलिक पादरी लोगों ने घोर आपत्तियाँ खड़ी कीं। उन को (शायद) यह डर हुआ था कि फिर यहाँ भी पहले की भाँति ईसाईधर्म विश्व के सब से श्रेष्ठ धर्म के रूप में प्रचारित न होने पा और उस पर कोई मुसीबत आ जाय। इस लि यह स्थिर हुआ कि वहाँ विभिन्न धर्मों के प्रतिनि धियों को बुलाकर केवल उन धर्मों के इतिहास प ही आलोचना की जायगी। उस में अध्यात्मविष और मतामत के संबन्ध में कोई भी चर्चा न हो पायेगी। इस कारण इस सभा का नाम रखा गय था—The congress of the History o Religions—धर्मेतिहासमहासभा। इस धर्मेतिहास महासभा में समग्र एशिया में से तीन जापान पण्डित और भारतवर्ष से केवल स्वामी विवेकानन्द जी उपस्थित थे। चिकागो की सर्वधर्मपरिषद् में केवल भारत से ही कितने लोग उपस्थित हुए थे और वहाँ ऐसा कोई धर्म नहीं था जिस के प्रतिनिधि न गये हों! श्री स्वामी विवेकानन्दजी सारे पाश्चात्य देशों में प्राच्य सभ्यता और हिंदूधर्म के मुखपात्र के रूप में गण्य हो गये थे। इस लिए पैरिस की कांग्रेस ने हिंदूधर्म के इतिहास पर प्रकाश डालने के लिए उन का निमन्त्रण किया। पाश्चात्य संस्कृ पढ़े हुए पण्डितों की यह धारणा है कि हिंदुओं का वैदिकधर्म अग्नि सूर्य आदि प्राकृतिक जड़ वस्तुओं की आराधना से उत्पन्न होनेवाला है। इसी मत के खण्डन के लिए धर्मेतिहासमहासभा ने श्री स्वामी

जी का आह्वान किया था। किसी जर्मन पण्डित ने वहाँ हिंदुओं की शिवलिङ्ग और शालग्रामशिला की पूजा के विषय में कुछ गलत बातें कही थीं। श्री स्वामीजी ने इस का खण्डन किया था और इन पूजाओं पर भली भाँति प्रकाश डाला।ॐ पैरिस की धर्मेतिहास महासभा में धर्मेतिहासों पर खोज करनेवाले पण्डित लोग ही उपस्थित हुए थे। सर्वधर्मपरिषद् का महत्त्व तो हम इसे दे नहीं सकते, किंतु यह बात ठीक है कि इस प्रकार की धर्मसभा भी यूरोप में इस से पहले कभी नहीं हुई थी। अभी हाल में श्री रामकृष्णशताब्दीजयन्ती के उपलक्ष्य में लंडन में सर फ्रांसिस यंगहसबैंड के प्रयत्न से एक धर्मपरिषद् की योजना १९३६ ई० में की गई थी।

श्री रामकृष्णशताब्दी-जयन्ती के उपलक्ष्य में विभिन्न स्थानों में सर्व-धर्मपरिषद् की योजनाएँ।

विश्वाचार्य श्रीमत् स्वामी विवेकानन्दजी के गुरु परमहंस श्री श्री रामकृष्णदेवजी की शताब्दीजयन्ती के उपलक्ष्य में अमेरिका, यूरोप और भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों में सर्वधर्मपरिषद् की योजनाएँ की गई थीं। इन योजनाओं का श्रेय श्री रामकृष्णदेवजी के देश विदेशों के भक्तों और श्री रामकृष्णमठ तथा मिशन को है। लंडन में होनेवाली धर्मपरिषद् का श्रेय वहाँ रहनेवाले श्री रामकृष्णमठ के संन्यासी श्रीमत् स्वामी अव्यक्तानन्दजी, सर फ्रांसिस यंगहसबैंड और मिस् क्लार्क को है। अमेरिका में होनेवाली धर्मपरिषद् का श्रेय श्री रामकृष्णमठ के साधु श्रीमत् ज्ञानेश्वरानन्दजी, श्रीमत् निखिलानन्दजी आदि को है। ‡ इसी शताब्दी-जयन्ती के उपलक्ष्य में धर्मपरिषद्रूप सभाओं की योजनाएँ भारतवर्ष में बंबई, काशीधाम, रंगून और कलकत्ते में श्री रामकृष्णमठ और मिशन की ओर से की गई थीं। ये सभी धर्मपधिद् १९३६ ई० और १९३७ ई० के मध्य में हुई थीं। इन का संक्षेप में कुछ परिचय हम यहाँ दे रहे हैं।

काशी में होनेवाली धर्मपरिषद्।

श्री रामकृष्णशताब्दीजयन्तीमहोत्सव के साधारण कार्यक्रमानुसार ता० १ मार्च से लेकर ता० ५ मार्च तक काशीधाम में एक सर्वधर्मसंमेलन हुआ था। इस धर्मसंमेलन (धर्मपरिषद्) के कुल पाँच अधिवेशनों में देश के विभिन्न स्थानों के विद्वान् तथा विचारशील बहुत से गण्य मान्य व्यक्ति उपस्थित थे। इस धर्मपरिषद् में भारतीय करीब करीब सभी धर्मों के प्रतिनिधि वक्ताओं ने योगदान किया था। समस्त वक्ताओं ने ही दक्षिणेश्वर के देवमानव तथा धर्मसमन्वय के ऋषि परमहंस श्री रामकृष्णदेवजी एवं उन के कृतकृत्य शिष्य श्रीमान् स्वामी विवेकानन्दजी के प्रति ओजस्वी भाषा में अपनी अपनी श्रद्धा प्रकट की और श्री रामकृष्णमठ तथा मिशन से होनेवाली समाज की कल्याणकारिणी एवं शिक्षामूलक कार्यावली की भी उन्होंने भूयसी प्रशंसा की। हिंदूधर्म के अतिरिक्त अन्यान्य धर्मावलम्बी वक्ताओं ने मनुष्यजीवन और उस के उद्देश्य के विषय पर अपने मतामत प्रकट कर परमहंस श्री रामकृष्णजी के जीवनचरित्र तथा उन की शिक्षा के साथ अपने अपने धर्माचार्यों के जीवनचरित्र तथा उनकी शिक्षा की तुलना की। सर्वधर्मपरिषद् के विचार से काशीधाम की धर्मपरिषद् को हम उतना महत्त्व नहीं

ॐ हमें इच्छा है कि फिर कभी इस पर एक निबन्ध-द्वारा 'गीताधर्म' के पाठकों का मनोरञ्जन करेंगे।

‡ अमेरिका के विभिन्न स्थानों में श्री रामकृष्णमठ और मिशन के कुल तेरह केन्द्र (मठ और आश्रम) हैं, जहाँ बेलूर मठ के बंगाली संन्यासी लोग वेदान्तधर्म का प्रचार कर रहे हैं।

देते हैं। किंतु यह ठीक है कि आज से पहले काशीधाम में हिंदू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन, दादू, थियासफी, ब्राह्मसमाज तथा नव्य विचार और पुरानी संस्कृति के सभी प्रकार के लोगों का ऐसा संमेलन कभी नहीं हुआ था।

श्री रामकृष्णशताब्दीजयन्ती के उपलक्ष्य में रंगून में भी सर्वधर्मपरिषद् की योजना की गई थी। ता० ८ एप्रिल १९३६ ई० से लेकर छः दिन तक धर्मपरिषद् की बैठकें हुई थीं। इस परिषद् में पहले दिन कलकत्ते के श्रीयुत विनयकुमार सरकार के सभापतित्व में रंगून विश्वविद्यालय के डा० पी० कक् ने ईसाईधर्म और फुंगी ऌ० जि० कथा ने बौद्धधर्म के संबन्ध में भाषण दिया था। दूसरे दिन भि० सुरमा ने इस्लामधर्म पर और भि० एनक्लेसेरिया ने पारसीधर्म पर वक्तृताएँ दी थीं। श्री रामकृष्णमठ, दिल्ली के श्रीमान् स्वामी शर्वानन्दजी ने हिंदूधर्म पर व्याख्यान दिया था। इस प्रकार वहाँ सूफीधर्म, ब्राह्मधर्म, आर्यसमाज, सिक्खधर्म, थियासफी, ताओईजम्, बाहाईजम् आदि धर्मों एवं श्री रामकृष्ण और विवेकानन्द के संबन्ध में वक्तृताएँ हुई थीं। इस धर्मपरिषद् में मुख्यरूपेण श्री रामकृष्णजी की सर्वधर्मसमन्वय की वाणी प्रचारित हुई है। रंगून के विख्यात फुंगी उ० कुंडलाजी ने कहा कि भगवान् बुद्ध और श्री रामकृष्णजी ने एक ही वाणी का प्रचार किया था एवं वही वाणी आज विभिन्न जनहितकारी अनुष्ठानों से आत्मप्रकाश (अपने को प्रकट) कर रही है। इस उत्सव के उपलक्ष्य में रंगून के इतिहास में और एक अपूर्व व्यापार हुआ था। वह था वहाँ का जुलूस। ता० ५ एप्रिल को करीब करीब सभी धर्मों और संप्रदायों के लोग इस विराट् जुलूस में

रंगून की सर्वधर्मपरिषद्।

इकट्ठे हुए थे। चीन, ब्रह्म और अन्यान्य देशों विभिन्न धर्मावलम्बियों ने भी अपने अपने इष्टदेवों मूर्तियाँ लेकर इस जुलूस में योगदान किया था।

इस के बाद बंबई में एक सर्वधर्मपरिषद् योजना बंबई के श्री रामकृष्णमठ और बंबई जनता की ओर से की थी। यहाँ की सर्वधर्मप षद् कावास्जी जहाँगीर हा में ता० ५ मई से लेकर ७ तक तीन दिन हुई थी। तीन हजार से अधि लोग रोज यहाँ संमिलित हुआ करते थे। पृथिवी करीब सभी धर्मों के प्रतिनिधि वक्तागण उपस्थि थे। सर राधाकृष्णन इस सर्वधर्मपरिषद् के सभा पति थे। बंबई जैसे शहर में इस प्रकार की ध परिषद् क्यों, इतनी बड़ी सभा—संपूर्ण धर्मावलम्बि को लेकर—और कभी नहीं हुई थी। भारत विशिष्ट विज्ञ दार्शनिक पण्डित सर एस्० राधा कृष्णन ने इस सर्वधर्मपरिषद् के सभापतिरूप जो दिलचस्प भाषण दिया था उसे सभी को पढ़ चाहिए। अभ्यर्थनासमिति के सभापति मि० ज करजी ने दर्शकों और प्रतिनिधियों की अभ्यर्थ (स्वागत) करते हुए कहा—"इस सर्वधर्मपरि द्वारा धर्मनैतिक ऐक्य और विश्वजनीन सौभ्रा (भ्रातृभाव) की वृद्धि हुई है।" सर राधाकृष्णन ने अपने भाषण में कहा कि प्राच्य सर्वदा मू सत्य के रहस्य को मानकर उसी सत्य की खोज रहे हैं। किसी भी प्रकार मानसिक क्षोभ के कार उस रहस्य में उन का विश्वास नहीं घटा है पाश्चात्य वह रहस्य स्वीकार नहीं करते हैं। मह मानव श्री रामकृष्णजी ने भगवद्विषयक रहस्यों उपलब्धि की थी। धर्म का रहस्य भी आप भ

बंबई की सर्वधर्म-परिषद्।

भाँति जानते थे। इसी लिए परमहंस देव संसार को धर्मसमन्वय, धार्मिक उदारता और सार्वजनीन सौभ्रात्र की शिक्षा दे गये हैं। धर्म के मार्ग विभिन्न होने पर भी सभी धर्मों का मूल तत्त्व एक ही है। नाम विभिन्न और मार्ग विभिन्न होने पर भी जब सभी धर्मों का लक्ष्य एक ही है, तो सब धर्मों का समन्वयसाधन सभी का काम्य होना चाहिए। शरीर के लिए जैसे "हाईजिन", आत्मा के लिए वैसे ही धर्म की आवश्यकता है। सत्य किसी भी धर्म की निजी संपत्ति नहीं है। भगवान् ने ऐसा विधान नहीं किया है। विभिन्न धर्म के विभिन्न मार्ग का निर्देश इस लिए हुआ है कि जिस को जो मार्ग रुचता हो, वह उसी मार्ग से अपने लक्ष्य पर उपस्थित हो। सभी का उद्देश्य भगवत्प्राप्ति है, इस में किसी को मतद्वैध नहीं है। मनुष्य जिस किसी नाम से भी क्यों न पुकारे, भगवान् एक ही है, दो नहीं। इस सर्वधर्मपरिषद् में जोरोष्ट्रीयान्, ईसाई, जैन, बौद्ध आदि सभी धर्मों के प्रतिनिधि वक्तागण उपस्थित थे। उन सभी ने साम्य, मैत्री और शुभेच्छा के साथ अपने अपने धर्मगुरुओं तथा धर्मप्रतिष्ठाओं के संदेशों पर प्रकाश डाला।

कलकत्ते की सर्व-धर्मपरिषद्।

इस के बाद—बल्कि चिकागो, अमेरिका में होनेवाली सर्वधर्मपरिषद् की योजना के बाद—कोई विश्वव्यापी महत्त्वपूर्ण सर्वधर्मपरिषद् की योजना हुई, तो वह है श्री रामकृष्णमठ और मिशन, बेलूरमठ, हावड़ा (कलकत्ता) की ओर से (कलकत्ते के टाउनहाल में) होनेवाली सर्वधर्मपरिषद्। यह सर्वधर्मपरिषद् ता० १ मार्च, १९३७ से लेकर ता० ८ मार्च, १९३७ तक कलकत्ता टाउनहाल में* हुई थी। इस परिषद् की बैठकें रोज सुबह और शाम को दोनों समय घंटों तक होती थीं। इस प्रकार का संयोजन भारतवर्ष के—बल्कि अमेरिका में होनेवाली १८९३ ई० के बाद सारे विश्व के—इतिहास में एक अनूठी घटना है।

इस सर्वपरिषद् को अपनी आँखों से हमारे बहुत से पाठकों ने स्वयं देखा होगा और हिंदुस्तान के बँगला, हिंदी, अंग्रेजी समाचार पत्रों तथा मासिक पत्रों में भी इस का विवरण उन्होंने अवश्य पढ़ा होगा। इस कारण हम कलकत्ते में होनेवाली सर्वधर्मपरिषद् के विभिन्न वक्ताओं तथा सभापतियों के भाषण एवं उन पर की समालोचना द्वारा इस निबन्ध को बढ़ाना नहीं चाहते हैं। केवल सब दिनों का एक रोजनामचा देकर हम इस प्रबन्ध की इति करते हैं।

कलकत्ते की सर्वधर्म-परिषद् का कार्यक्रम।

ता० १ मार्च, चन्द्रवार को कलकत्ता टाउनहाल में सर्वधर्मपरिषद् की बैठक आरम्भ हुई थी। सर एम्० एन्० मुखर्जी साहब ने सर्वधर्मपरिषद् की अभ्यर्थना-समिति के सभापति के रूप में एक स्वागत अभिभाषण दिया था। आप ने चिकागो में होनेवाली सर्वधर्मपरिषद् और परमहंस श्रीरामकृष्णजी की शताब्दी-जयन्ती पर होनेवाली इस सर्वधर्मपरिषद् पर विशेष रूप से प्रकाश डाला था। १ मार्च को होनेवाली बैठक के सभापति थे सर ब्रजेन्द्रनाथ सील। आप कुछ वर्षों तक मैसूर विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर थे। आप ने परमहंस श्री रामकृष्णजी को दक्षिणेश्वर में देखा था। आप का भाषण बहुत महत्त्वपूर्ण था। ता० २ मार्च, मंगलवार, प्रातःकाल की बैठक के सभापति थे मि० सी० एल० चेन (C. L. Chen)। आप चीनदेशीय हैं। आप बहुत दिन कलकत्ते में चीन देश के कनसाल जनरल रहे हैं। सायंकाल की बैठक के सभापति हुए थे; परमहंस श्री रामकृष्णदेवजी के खास शिष्यों में से एक श्रीमान् स्वामी अभेदानन्दजी महाराज। आप ने अमेरिका में करीब पचीस वर्षों तक वेदान्तधर्म का प्रचार किया है। ता० ३ मार्च, बुधवार, प्रातःकाल के अधिवेशन में भारतीय हिंदीसाहित्यपरिषद्, वर्धा, सी० पी० के श्रीमान् काका कालेलकर

* केवल ता० ३ मार्च के सायंकाल का अधिवेशन कलकत्ता यूनिवर्सिटी इंस्टिट्यूट हाल में हुआ था।

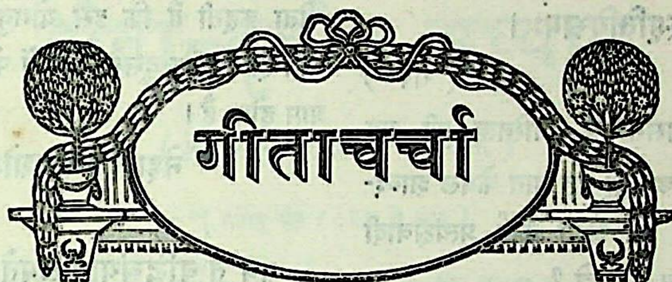
(Kaka Kalelkar) ने सभापति का आसन ग्रहण किया था। ता० ३ मार्च, बुधवार, शाम की बैठक हुई थी विश्ववरेण्य महाकवि डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सभानेतृत्व में। आप का परिचय विश्व में कहीं भी देने का प्रयोजन नहीं है। आप बंगाल के ही नहीं वल्कि समग्र भारत तथा विश्व के एक उज्ज्वल रत्न हैं। ता० ४ मार्च, गुरुवार प्रातःकाल के अधिवेशन में सभापति हुए थे। श्री रामकृष्णमठ के संन्यासी, वेदान्त सेंटर, बोष्टन और ला क्रीसेंटा (कैलिफोर्निया) अमेरिका के श्रीमान् स्वामी परमानन्दजी महाराज। आप आज भी अमेरिका में वेदान्तधर्म का प्रचार कर रहे हैं। आप को अमेरिका में रहते तीस वर्षों से ऊपर हो गये हैं। उस दिन सायंकाल की बैठक में इंग्लैंड के सर फ्रांसीस् यंगहसबैंड (Sir Francis Younghasband), सभापति धर्मवर्द्धिनीपरिषद्, लंडन ने सभापति का आसन स्वीकार किया था। ५ मार्च, शुक्रवार, प्रातःकाल के अधिवेशन में ईरान के प्रो० मुहंमद अली शिराजी साहब सभापति हुए थे। उस दिन शाम को पूना के डा० डी०, आर०, भंडारकरजी ने सभापति का आसन ग्रहण किया था। आप पहले कलकत्ता विश्वविद्यालय के सुयोग्य अध्यापक थे। ता० ६ मार्च, शनिवार, प्रातःकाल को होनेवाली बैठक के सभापति थे हिंदू विश्वविद्यालय, काशी, के महामहोपाध्याय पण्डित श्रीयुत प्रमथनाथ तर्कभूषणजी और शाम को सभापति थीं श्रीमती सरोजनी नायडू। आप भारतमाता की एक विदुषी देशभक्त सेविका हैं। आप के नाम से ही सब लोग जानते हैं कि उन का दान साहित्य-तथा राजनीतिक्षेत्र में कितना है। ता० ७ मार्च, रविवार को प्रातःकाल के अधिवेशन में मैडम ग्यूरल्डीस (Madame Guiraldes of Buenos Aires, Argentia), दक्षिण अमेरिका ने सभापति का आसन ग्रहण किया था। आप अमेरिका से इस सर्वधर्मपरिषद् में शामिल होने के लिए वहां के श्री रामकृष्णमठ के साधु श्रीमान् विजयानन्द के साथ भारतवर्ष में आई थीं। शाम के अधिवेशन में श्रीमान् स्वामी भागवतानन्दजी महामण्डलेश्वर सभापति हुए थे। अन्तिम दिन ता० ८ मार्च सोमवार को सुबह का अधिवेशन डा० एफ्०, वी०, टाउसेक (Dr. F. V. Tousek) जेकोस्लोवेकिया के सभापत्वि में हुआ था। उस दिन शाम की बैठक के अहमदाबाद, गुजरात के प्रिंसिपल ए०, वी०, ध्रुव (हिंदूविश्वविद्यालय,काशी) सभापति हुए थे।

'गीताधर्म' में उन सभापतियों के भाषण हिंदी में अनुवादित होकर छपे हैं। संसार के सभी भागों से सैकड़ों विद्वानों ने इस सर्वधर्मपरिषद् में स्वयं सम्मिलित होने में समर्थ न होकर तारों और चिठ्ठियों द्वारा अपनी अपनी सहानुभूति एवं हार्दिक उत्साह जनाया था। सर्वधर्मपरिषद् के सभी वक्ताओं ने अपने अपने धार्मिक महापुरुषों को श्रद्धाञ्जलियाँ देते हुए इस युग के अवतार परमहंस श्री रामकृष्णजी की अपूर्व तपस्या तथा सर्वधर्मसमन्वयवाद की भूरि भूरि प्रशंसा की।

जिस मिलनमन्त्र का उच्चारण कर सर्वधर्मपरिषद् का कार्यारम्भ हुआ था अन्त में उसी का उच्चारण करते हुए हम भी चाहते हैं कि—

'संगच्छध्वं संवदध्वम्।
सं वो मनांसि जानताम्॥
समानो मन्त्रः समितिः समानी।
समानं मनः सहचित्तमेषाम् ॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
सामनमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥





(ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी और बंबई निवासी A. M. Bhatt जी से)

भट्टजी—गीता में पुनर्जन्मवाद है। पुराने कपड़े छोड़कर नये पहरने का दृष्टान्त भी है। लेकिन इस बात पर विश्वास करने में मेरा मन बहुत ही आगा पीछा करता है। क्या कोई मनुष्य ऐसा है जो अपने पूर्वजन्म के संस्कार लेकर जन्म लिया हो?

गीतानन्द—अर्थात् सरल भाषा में आप की आपत्ति यही है कि मनुष्य को अपने गत जन्मों की स्मृति क्यों नहीं होती? गीता का उत्तर है—

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥
(२।१३)

जीव मरणसमय में "अधीर" हो जाता है, इस लिए पूर्वजन्म की विस्मृति हो जाती है।

भ०—धीर किस को कहते हैं?

गी०—

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥
यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥
(२।१४,१५)

सब प्रकार के द्वन्द्वों द्वारा अभिभूत होने पर भी जो समचित्त रहता है वह धीर है। कवि का वचन भी है—

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते
येषां न चेतांसि त एव धीराः ॥

भ०—जब पूर्वशरीर छोड़ दिया, तो वासना भी उस के साथ ही छूट गई। अब जो नया शरीर धारण किया जायगा वह तो कोरा वस्त्र है, जीर्ण वस्त्र के दाग उस में कहाँ से आवेंगे?

गी०—जो छोड़ा जाता है वह स्थूलशरीर है। वासना सूक्ष्मशरीर में रहती है।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥
शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥
(१५।७,८)

भ०—तब फिर जीव को सूक्ष्म देहस्थ वासनाओं का ज्ञान होने में क्या बाधा है?

गी०—

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप ॥
(७।२७)

संमोहात् स्मृतिविभ्रमः ।

(२।६३)

भ०—मनुष्यवासना के अस्तित्व की यह शास्त्रप्रतीतिमात्र हुई। अर्थात् यह बात केवल शाब्द-प्रमाण से सिद्ध हुई। मेरे जैसा कोई प्रत्यक्षवादी हो, तो उस का समाधान कैसे हो ?

गी०—स्वप्नावस्था में सूक्ष्मशरीर का अभिमान रहता है और जाग्रत् की स्थूल शरीरविषयक सब बातों की विस्मृति हो जाती है। बाप लड़के को नहीं चीन्हता। मित्र से शत्रुवत व्यवहार होता है। तथापि स्थूल शरीर की वासनाएँ वर्तमान ही रहती हैं, नष्ट नहीं होतीं। तमोगुण का आवरण ही स्मृति-लोप का हेतु है। यह नित्य का अनुभव प्रत्यक्षवादी के लिए सुपर्याप्त प्रमाण है।

भ०—समत्वबुद्धि कैसे प्राप्त होती है ?

गी०—योगाभ्यास से। (गीता षष्ठाध्याय) गीता कहती है कि इस योगबुद्धि का अभिक्रमनाश नहीं होता और दूसरे जन्म में पौर्वदेहिक बुद्धिसंयोग प्राप्त होता है।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति ।

(२।४०)

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।

(६।४३)

भ०—क्या कालिदासादि कवि पुनर्जन्म नहीं पाये होंगे ? वे आत्मज्ञान से मुक्त हो गये; ऐसी बात संभवतः नहीं है। तब तो वे शाकुन्तलादि के समान नाटकादि क्यों नहीं रचते ?

गी०—बुद्धिचातुर्य और वासना एक बात नहीं। विशेषतः काव्यरचनादि कार्य में समत्वरूप योगबुद्धि आवश्यक नहीं होती। इस लिए उस का अभिक्रमनाश हो जाता है।

इति दिक्।



गीता–तृतीय अध्याय

(ले०—श्री परमेश्वरी सहायजी)

[गताङ्क पृष्ठ १८३२ से आगे]

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते ॥२७॥
तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥२८॥
प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मन्दान् कृत्स्नविन्न विचालयेत् २९

अर्थ—सब प्रकार के कर्म प्रकृति के सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों से हुआ करते हैं। विमूढ आत्मा अहंकार से समझता है कि मैं करता हूँ। परंतु हे महाबाहो, गुणों और कर्मों के विभाग का जाननेवाला यह समझकर कि गुण गुणों में वर्तते हैं, इन में आसक्त नहीं होता। प्रकृति के गुणों के कारण मोहित हुए पुरुष गुणों और कर्मों में आसक्त हो जाते हैं। उन पूरा न जाननेवाले मन्दमतियों को ज्ञानी पुरुष न विचलित न करे।

नोट—२७ से २९ श्लोक तक का रहस्य बड़ा ही गूढ है। वास्तविक रूप से तो तभी समझ में आ सकता है जब मनुष्य को आत्मज्ञान हो, परंतु इस का भाव बतलाने से बहुत कुछ समझ में आ सकता है। 'मैं अकर्ता हूँ' इस का केवल यही तात्पर्य है कि स्वयं मैं कुछ नहीं करता, और है भी यह सत्य; क्योंकि हम शरीर में अङ्गुष्ठमात्र हैं और स्वयं विना अवयव के कुछ कर नहीं सकते। परंतु हमारे लिए शरीर में जो इन्द्रियाँ हैं वे ही सब काम करती हैं, और ये इन्द्रियाँ गुणों से युक्त हैं। बस, आत्मा इन के द्वारा उतना ही काम कर सकती है जितनी कि इन के अंदर शक्ति है और जिस गुण की है। 'इस को स्पष्ट समझाने के लिए यह बतलाना चाहिए कि यदि किसी को लिखने की आवश्यकता हुई, तो मन के द्वारा वह लिखना चाहता है, उस का हाथ कागज पर लिख देगा और यदि देखना चाहता है, तो नेत्रों के द्वारा देखा जायगा। इसी प्रकार और इन्द्रियों के विषय में भी समझना चाहिए। मान लीजिए कि हम कोई ग्रन्थ विचारना चाहते हैं, तो हम को उस का रहस्य उतना ही समझ में आयेगा जितना कि बुद्धि ग्रहण कर सकेगी; इस से अधिक नहीं। यही कारण है कि एक की समझ में जो बात नहीं आती वह दूसरे की समझ में आ जाती है। पाठक इस से यह न समझें कि जब हम अकर्ता हैं, तो हम को पाप और पुण्य कैसे लग सकता है। इस के लिए यह उदाहरण देखना चाहिए कि यदि राजकर्मचारी स्वयं कुछ न करता हुआ अपनी फौज को कत्लआम का हुक्म दे दे तो उस के दोष का भागी फौज नहीं होगी, वरन् वह राजकर्मचारी ही होगा। इसी प्रकार हम इस शरीर के अधिष्ठाता हैं। यदि हम ने विचार न रखते हुए किसी इन्द्रिय को कुकर्म में लगा दिया, तो उस पाप के भागी हम होंगे, न कि इन्द्रियाँ। इस लिए सोच समझकर काम करना चाहिए एवं गुणों और कर्मों के विभाग को आत्मज्ञान के द्वारा समझना चाहिए, तभी कल्याण होगा। अज्ञानी पुरुषों के लिए जो कथन किया गया है उस का रहस्य पहली टिप्पणी में खोल दिया गया है। अधिक लिखने को कोई आवश्यकता नहीं है।

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥३०॥

अर्थ—हे अर्जुन, अध्यात्मबुद्धि से सब कर्मों के फलों को मेरे ऊपर छोड़कर, विना फल की आशा के ममत्व बुद्धि न रखते हुए, निश्चित होकर तुम युद्ध करो ।

नोट—अर्जुन ने जो लड़ने से इन्कार किया था उसी के कारण भगवान् ने उन को उपदेश देना दूसरे अध्याय से आरम्भ किया था, और अब तक ज्ञान और कर्म का रहस्य बराबर बतलाते रहे हैं । अब इतना बतलाने पर फिर उपदेश किया है कि लड़ो, और इस तत्त्वज्ञान के आधार पर लड़ो जिस का अब तक मैं ने वर्णन किया है । यदि ऐसा करोगे, तो तुम्हें अपने संबन्धियों और वृद्ध पुरुषों के मारने का कोई पाप नहीं लगेगा ।

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः॥३१॥

अर्थ—जो श्रद्धालु और असूयारहित पुरुष सदैव मेरे इस मत का अनुष्ठान करते हैं वे भी कर्मबन्धन से मुक्त हो जाते हैं ।

नोट—यहाँ भगवान् ने स्पष्ट बतला दिया है कि यदि तुम मेरे इस उपदेश के अनुकूल चलोगे और अपनी तिकड़मबाजी नहीं लगाओगे, तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि तुम को इस घोर (युद्धरूप) कर्म से पाप नहीं लगेगा ।

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥३२॥

अर्थ—परंतु जो मेरे इस ज्ञानोपदेश की अवहेलना करनेवाले हैं और ठीक ठीक अनुष्ठान नहीं करते हैं उन सर्वज्ञान विमूढ यानी अविवेकियों को नष्ट हुआ समझो ।

नोट—भगवान् ने यहाँ पर अर्जुन को यह भी बतला दिया है कि तुम मेरे इस उपदेश से सहमत नहीं होगे, इस की अवहेलना करोगे, तो नष्ट हुए विना नहीं रह सकते । जब स्वयं भगवान् उपदेश करें और मनुष्य उस उपदेश का अनुकरण न करे, तो क्या वह कभी भी कर्मबन्धन से छुटकारा पा सकता है ? कदापि नहीं । मनुष्यों को उन की आज्ञा का पालन करना ही धर्म है । यदि भगवान् का उपदेश समझ में न आता हो, तो गुरुमुख से उस उपदेश को सुने और उस का पालन करे । यहाँ अक्ल को दखल नहीं है ।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥३३॥

अर्थ—अपनी प्रकृति के अनुसार ही ज्ञानवान् भी चेष्टा करता है । जब प्राणिमात्र प्रकृति की ओर जाते हैं, फिर इस विषय में किसी का हठ क्या कर सकता है ?

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥३४॥

अर्थ—इन्द्रिय का इन्द्रिय के विषय में राग और द्वेष व्यवस्थित है उस राग और द्वेष के वश में नहीं जाना चाहिए, क्योंकि वे इस के मार्ग में लुटेरे हैं ॥

नोट—राग और द्वेष स्वतः न ज्ञानेन्द्रियों में हैं न कर्मेन्द्रियों में । ये केवल मन से उत्पन्न होनेवाले हैं। यदि मन किसी इन्द्रिय के विषय में फँस गया, तो उस में राग उत्पन्न हो गया और यदि द्वेष का भाव उस में आ गया, तो चाहे कुछ हो मनुष्य की उस विषय में आसक्ति नहीं होती । मान लो किसी ने श्रोत्रों द्वारा गायन सुना और वह मन को भा गया, तो वह मन आत्मा को बार बार प्रेरित करेगा कि गायन सुना जाय । इसी प्रकार यदि किसी कारण से मन में किसी को मारने का भाव उत्पन्न

हो गया, तो मन बार बार उसी विषय को आत्मा में उत्पन्न करेगा। यह राग का उदाहरण हुआ। द्वेष की बात यह है कि यदि मन किसी चीज से हट गया, तो आत्मा में यह सामर्थ्य नहीं है कि उस में राग उत्पन्न कर ले। राग और द्वेष मन से उत्पन्न होनेवाले हैं; स्वतः आत्मा में नहीं। इस लिए मनुष्य को चाहिए कि जब ऐसे राग और द्वेष उत्पन्न होते हों, तो विचारपूर्वक उन को मन से दूर हटा दे। भगवान् ने इस श्लोक में यही उपदेश दिया है। आत्मज्ञानी पुरुष मन के भावों को समझ लेते हैं और इसी कारण उस के प्रवाह में वह नहीं जाते। क्या विना साधन के यह सब हो सकता है? यदि ऐसा होता, तो चित्तवृत्ति-निरोध की क्या आवश्यकता थी!

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥३५॥

अर्थ—अच्छी तरह से आचरण किये हुए पराये धर्म की अपेक्षा अपना गुणरहित धर्म भी श्रेष्ठ है। अपने धर्म में मरना उत्तम है, दूसरे का धर्म भयंकर है।

नोट—भगवान् अर्जुन को अब समझा रहे हैं कि अपने धर्म का पालन करते हुए यदि कोई मर भी जाय, तो वह श्रेष्ठ होगा; परंतु दूसरे का धर्म ग्रहण करना बड़ा ही भयंकर है। यह सब को विदित है कि अर्जुन क्षत्री था और इसी बात को लक्ष्य करके भगवान् ने यह उपदेश दिया है कि तुम क्षत्रियधर्म का पालन करो, इसी में कल्याण है। यदि इस धर्म में मनुष्यों के मार ने का दोष है, तो इस की पर्वाह नहीं, क्योंकि मैं ने क्षत्रियों के लिए युद्ध करने ही का धर्म बनाया है। यदि यह उपस्थित हो गया है, तो तुम्हें लड़ना ही चाहिए। यदि तुम यह समझते हो कि मैं संन्यासी होकर और धारणा ध्यान इत्यादि में मग्न होकर भली भाँति ईश्वराराधन कर सकता हूँ, तो समझ लो कि यह कार्य तुम्हारे लिए बड़ा ही भयंकर होगा। इस से स्पष्ट है कि मनुष्य के लिए अपनी जाति और धर्म के अनुकूल चलना ही ईश्वर की आज्ञा है।

अर्जुन उवाच

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥३६॥

अर्थ—अर्जुन बोले कि अच्छा, हे वार्ष्णेय! इच्छा न रहते हुए भी बलपूर्वक लगाये गये की तरह पुरुष किस से प्रेरित होकर पाप करता है?

श्री भगवानुवाच

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ।३७।
धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्वेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥३८॥
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥३९॥

अर्थ—श्री भगवान् बोले कि रजोगुण से उत्पन्न होनेवाला यह काम है, यह क्रोध है। यह बड़ा भारी खानेवाला और बड़ा पापी है, इस को यहाँ शत्रु समझो। जिस प्रकार धुएँ से अग्नि, धूल से दर्पण और झिल्ली से गर्भ ढका रहता है उसी प्रकार उस (काम क्रोध) से यह ज्ञान ढका रहता है। यह कभी भी तृप्त न होनेवाली कामरूपी अग्नि है। हे कौन्तेय! इस नित्यवैरी से ज्ञानी का ज्ञान ढका रहता है।

नोट—काम और क्रोध की उत्पत्ति प्रकृति के रजोगुण में है। इस विषय के समझने में केवल अड़चन इतनी ही है कि हम इन को जड़ समझ बैठे हैं। यह वास्तविक प्रकृति की आत्मशक्ति है जो कामरूपी अग्नि में रहती है

और आत्मा के अधीन है। जब आत्मा का भाव विषय-भोग में अथवा क्रोध में होता है तभी ये शरीर में प्रकट हो जाते हैं और फिर इन का रुकना आत्मा के काबू से बाहर हो जाता है। ऐसी दशा में जो कुछ भाव उत्पन्न हो जाता है आत्मा वही कर बैठती है। साधारणतया यह देखा जाता है कि जब मनुष्य पर इन का भूत सवार होता है तब उस की बुद्धि काम नहीं देती और ये दोनों जो चाहते हैं आत्मा से बलपूर्वक करा डालते हैं। किंतु जब इन का भूत उतर जाता है तब आत्मा अपने किये पर पछिताती है। बस, अर्जुन के प्रश्न का यही उत्तर है। ये दोनों आत्मा के शत्रु हैं। शारीरिक फिलोसफी के समझने से और उस का अनुकरण करने से मनुष्य का कल्याण होता है, कोरी विद्या पढ़ने से नहीं।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥४०॥

अर्थ—इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इस काम और क्रोध के रहने के स्थान हैं। इन इन्द्रियों के द्वारा यह ज्ञान पर परदा डालकर देह के स्वामी (आत्मा) को मोहित कर देता है।

नोट—इस का अनुभव मनुष्य को तब होता है जब कि स्वयं उस की यह दशा हो अथवा किसी और पुरुष को इस अवस्था में देखे। जब क्रोधाग्नि उत्पन्न होती है, तो नेत्र भयानक हो जाते हैं, कानों से सुनाई नहीं देता। हाथ पैर थर्राने लगते हैं। मन डाँवाँडोल हो जाता है। क्रोधाग्नि सारी इन्द्रियों पर अपना काबू कर लेती है। इसी प्रकार जब शरीर में कामाग्नि उत्पन्न होती है, तो मनुष्य की विचित्र दशा हो जाती है। भगवान् ने इसी शत्रु का वर्णन यहाँ पर किया है। ऐसी दशा में मनुष्य आत्मघात कर डालते हैं।

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥४१

अर्थ—इस लिए हे भरतश्रेष्ठ! तुम इन्द्रियों नियम में रखकर ज्ञान विज्ञान के नाश करनेवा इस पापी को मार डालो।

नोट—जब काम और क्रोध की उत्पत्ति और उत्प होनेवाले पापों का वर्णन भगवान् कर चुके, तो उन कर्तव्य था कि उस से बचने के लिए उपाय बतला उसी को इस श्लोक में बतलाया है। यहाँ ज्ञान तात्पर्य बुद्धि और विज्ञान का आत्मा से है, क्योंकि पा यह समझ नष्ट कर देता है और उस के न रहने से आ मोहित हो जाती है। इस लिए भगवान् ने दोनों वर्णन कर दिया है।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥४२
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महावाहो कामरूपं दुरासदम् ॥४३

अर्थ—स्थूल शरीर से इन्द्रियाँ परे हैं। इन परे मन है, मन से परे बुद्धि है; और जो बुद्धि परे है वह आत्मा है। हे महावाहो, इस प्र जो बुद्धि से परे है उस को जानकर और स्व अपने को सँभालकर दुरासाद्य कामरूपी शत्रु तुम मार डालो।

नोट—यदि उपनिषद् उठाकर देखे जायँ, तो मालू होगा कि पहला अन्नमय कोश है जो कि स्थूल शरीर है इस के बाद प्राणमय कोश है जिस को हम इन्द्रियों कोश कह सकते हैं, क्योंकि प्राण के आश्रित ही इन्द्रियाँ हैं। इस के बाद मनोमय कोश है और इस परे बुद्धिमय कोश है जिस को ज्ञानमय कोश भी कहते हैं

और इन सब से परे हम हैं जो अङ्गुष्ठमात्र पुरुष हैं। यह विज्ञानमय कोश है। भगवान् ने उसी क्रम को यहाँ पर बतलाया है और साथ साथ यह भी कह दिया है कि जो इस विषय को समझ जाता है वह स्वयं अपना उद्धार कर लेता है, क्योंकि हम अपने ही शत्रु हैं और अपने ही मित्र। जो धर्मानुकूल चलता है वह पापों से बच जाता है और जो ऐसा उद्योग नहीं करता वह स्वयं डूब जाता है। हमें कोई समझावे ऐसी किसी को गर्ज नहीं पड़ी है। तुम कर्म करने में स्वतन्त्र हो, जैसा चाहे करो। परंतु कर्मों का फल ईश्वराधीन है। जैसा करोगे वैसा भरोगे। अद्वैत वेदान्ती जो अपना अस्तित्व ही नहीं मानते उन को भगवान् के इस उपदेश से मालूम हो जायगा कि वे स्वयं अपने को धोखे में डाले हुए हैं। भेदभाव किसी शास्त्र में नहीं है। यह तो केवल हमारी क्षुद्र बुद्धि में है जिस से सब शास्त्रों में भिन्नता प्रतीत होती है। इस का तब तक कोई उपाय नहीं हो सकता जब तक मनुष्य स्वयं इस ओर ध्यान न दे और हठधर्मी को त्यागकर वेदमार्ग का अनुकरण न करे।

दूसरे अध्याय में भगवान् ने ज्ञान का उपदेश दिया है। अब इस अध्याय में, जिस का नाम कर्मयोग है, यह बतलाया है कि इस ज्ञान को प्राप्त करने के दो मार्ग हैं—एक सांख्ययोग और दूसरा कर्मयोग। मनुष्य इन में से किसी का अनुकरण करे, उस को आत्मज्ञान की सिद्धि अवश्यमेव हो जायगी। परंतु इन दोनों मार्गों का आधार कर्म पर यानी ईश्वर की आराधना पर है। यदि कोई पुरुष ऐसा नहीं करेगा, तो उस को सफलता कदापि नहीं मिल सकती। भगवान् ने स्पष्ट बतला दिया है कि विना कर्म किये तो शरीर ही स्थिर नहीं रह सकता, फिर ज्ञान की तो बात ही क्या है? कर्म की क्यों आवश्यकता है, इस विषय की भगवान् ने पूर्ण व्याख्या की है जिसे समझने से मनुष्य अवश्यमेव ईश्वराराधन में तत्पर हो सकता है। यदि हम ऐसा न करेंगे, तो सृष्टिचक्र बंद हो जाने का भय है। हमारी स्थिति कर्म पर निर्भर है, यह स्पष्ट रूप से इस अध्याय में बतला दिया गया है। जो पुरुष इस का अनुकरण नहीं करता वह पापी और चोर है। कर्मों द्वारा हम को नित्यप्रति भगवान् की शान्ति और तृप्ति करनी चाहिए। जिस किसी को भी पहले आत्मज्ञान प्राप्त हुआ है वह कर्मों द्वारा ही हुआ है। यदि ऐसे पुरुष ही कर्म छोड़ दें, तो जनसाधारण तो बिल्कुल ही कर्म न करे और संसार डूब जाय। यह याद रहे कि पहले काम और क्रोध को जीतो, और तब नियम में रहते हुए निष्काम बुद्धि से हरिभजन करो। बस, बेड़ा पार हुए विना रह नहीं सकता। यही इस अध्याय का उपदेश है। इस को भली प्रकार ध्यान देकर समझना चाहिए।

गीताचर्चा

(ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी से)

संपादक गीताधर्म—सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् श्री गार्बे साहेब का मत है कि गीता प्रथम अध्याय के १ से १९ तक के श्लोक प्रक्षिप्त हैं। अर्थात् उन के न रहने से कोई ग्रन्थसंगति की हानि नहीं होगी अथवा उन के रहने से कोई अर्थविशेष का लाभ भी नहीं देखा जाता। आप से बढ़कर गीता का कट्टर, हठी, किं बहुना दुराग्रही अन्धभक्त मैं ने शायद ही देखा हो। आप का यहाँ तक कहना है कि प्रथमाध्याय के विना (जिस को श्रीमज्जद्गुरु आचार्य आदि उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं) अवशिष्ट गीताग्रन्थ ठीक ठीक

समझ में नहीं आवेगा। इस के साथ आप द्वितीय अध्याय के पहले दस श्लोक भी सामिल करते हैं। अच्छा! अब मेरा सवाल यह है कि क्या आप इन श्लोकों का गीता के लिए अपरिहार्य प्रयोजन प्रमाणित कर सकते हैं?

गीतानन्द—आज १९ श्लोकों की चर्चा करूँगा। बाकी फिर कभी।

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन्॥
(१।१९)

इस श्लोक का संबन्ध—

मयैवैते निहताः पूर्वमेव। (११।३३)

इस चरण से है।

श्लोक १७–१८

इन के बिना १९ श्लोकस्थ—

स तुमुलो घोषः।

यह वाक्यखण्ड व्यर्थ हो जायगा।

श्लोक १५–१६

श्री कृष्ण और पञ्चपाण्डवों के शङ्ख बजाये विना तदनुगत योद्धा (१७, १८) भी कैसे बजावेंगे।

श्लोक १४

कौरवपक्षियों के शङ्खों से पाण्डवपक्षीय शङ्खों की दिव्यतारूप विशेषता दिखाना ही प्रयोजन है।

श्लोक १३

कौरवपक्ष के योद्धाओं ने जब शङ्ख, भेरी, पणव, आनक, गोमुख सब "सहसा" बजाये तब तुमुल शब्द हुआ, परंतु उस से नभ और पृथिवी व्यनुनादित नहीं हुई।

लेकिन पाण्डवपक्ष के योद्धा "पृथक् पृथक्" शङ्ख बजाये, फिर भी उस तुमुल शब्द से नभ औ[र] पृथिवी गूँज उठी।

यह उत्कर्ष दिखाना इस श्लोक का प्रयोजन है।

पाण्डवों के लिए यह "धर्म्य" युद्ध है, इस वा[त] को दिखाना बारहवें श्लोक का प्रयोजन है। २।[३]

युद्धे चाप्यपलायनम् ।१८।४३

श्लोक २–११

दुर्योधन (प्रभृति कौरवों) की आसुरी संप[त्] दिखाना प्रयोजन है। नहीं तो भीष्मजी को यु[द्ध] घोषणा करने का कारण न उत्पन्न होता। १[६]

श्लोक १

संजय को गीताकथन में प्रवृत्त करने के लि[ए] इस का प्रयोजन है।

संपादक—ये सब जो कुछ भी हों, २०[वें] श्लोक से गीता प्रारम्भ की जाय, तो क्या दोष है!

गीतानन्द—

अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः
प्रवृत्ते शस्त्र संपाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः॥
हृषीकेशं तदावाक्यमिदमाह महीपते।
(१।२०,२१)

अथ माने किस के अनन्तर?

किस कारण से अव्यवस्थित हुए थे?

विना सेनापति की आज्ञा के शस्त्रसंपात कै[से] प्रवृत्त हुआ? विना शस्त्रसंपात के अर्जुन [ने] धनुरुद्यमन क्यों किया? "तदा" माने तब? स[ति] सप्तमी और क्त्वा प्रत्ययान्त के बाद तदा का प्रयो[ग] संगत नहीं।

इति दिक्।

गीता में ज्ञानयोग

(श्री स्वामी चिन्मयचैतन्य, श्री रामकृष्णकुटीर, अल्मोड़ा)

दूसरा अध्याय

साधन आदि का निरूपण

"गीता में ज्ञानयोग" के पहले अध्याय में आत्मज्ञान के लिए अधिकारी कौन है और ज्ञान की प्राप्ति होने से क्या लाभ होता है, ये सब बातें कही गई हैं। अब साधनज्ञान-हीन मुमुक्षु अधिकारी किस प्रकार की साधना से आत्मा का स्वरूप जानकर धन्य होंगे, वह "साधन आदि का निरूपण" नामक दूसरे अध्याय में कहा जाता है। मनुष्यों का मन बड़ा चञ्चल है। वह शरीर को क्षुब्ध और इन्द्रियों को विक्षिप्त—परवश—करनेवाला और इसी कारण बड़ा बलवान् है। ऐसे मन का निरोध करना वैसा ही दुष्कर या कठिन है जैसा कि वायु का रोकना। "मनसैव अनुद्रष्टव्यम्" अर्थात् साधारण मन तथा वाक्यों से अतीत—"अवाङ्-मनोगोचरम्"—आत्मतत्त्व को शुद्ध मन से ही प्रत्यक्ष किया जाता है। केवल मन ब्रह्म को विषय नहीं कर सकता है, किंतु वह श्रवण, मनन आदि से संस्कृत—शुद्ध—होकर तदाकार होता है। उस प्रकार के संस्कृत मन से ही ब्रह्म को जाना जाता है। ब्रह्म तो किसी भी प्रकार मन का विषय हो नहीं सकता, तो उसे जाना कैसे जाय? इस पर कहते हैं कि मन की वृत्ति से व्याप्तकर ब्रह्म को अनुभव किया जाता है। यह तो शुद्ध मन के संबन्ध में कहा गया। किंतु साधारण—असंस्कृत—मन का संकल्प और विकल्प करना ही स्वभाव है। "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध-मोक्षयोः"—मन ही मनुष्य के बन्धन तथा मोक्ष का कारण है। अतः सब से पहले उस मन को ही आत्मज्ञान का लाभ करने के लिए उपयुक्त बनाना चाहिए।

इस लिए श्री भगवान् कहते हैं—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ १॥

असंशयम्, महाबाहो, मनः, दुर्निग्रहम्, चलम्।
अभ्यासेन, तु, कौन्तेय, वैराग्येण, च, गृह्यते ॥

—६।३५

भाषाटीका और अन्वय—महाबाहो (हे महाबाहो!) मनः (मन) चलम् (चञ्चल) (और) दुर्निग्रहम् (कठिनाई से वश में होनेवाला) (है, यह बात) असंशयम् (निःसंदेह है) (अर्थात् इस में कोई संदेह नहीं है), तु (किंतु) कौन्तेय! (हे कुन्तीपुत्र!) अभ्यासेन (अभ्यास से–बार बार यत्न करने से) च (और) वैराग्येण (वैराग्य से) गृह्यते (वश में होता है) ॥ २२-१ ॥

सिद्धान्तशिखरिणी (व्याख्या)—हे महाबाहो अर्जुन! मन चञ्चल है और उस का निग्रह—निरोध—करना बड़ा कठिन है, इस में कोई संदेह नहीं। किंतु अभ्यास और वैराग्य से चित्त के विक्षेपरूप प्रचार—चञ्चलता—को रोककर उस का निग्रह अर्थात् निरोध किया जाता है। चित्त-भूमि में किसी एक समान वृत्ति की बारंबार आवृत्ति का नाम "अभ्यास" है। योगसूत्र में "तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः" कहा गया है। किसी भाव में स्थिति के लिए बार बार प्रयत्न को ही अभ्यास कहते हैं। "दृष्टानुश्रविकविषय-वितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्"—दृष्ट अर्थात् इस संसार के एवं शास्त्रों में विस्तारपूर्वक बतलाये हुए स्वर्गादि

के सुख से वितृष्णा को ही वशीकार नामक "वैराग्य" कहा जाता है। यहाँ श्री भगवान् कृष्णचन्द्रजी कहते हैं कि इसी अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन का निग्रह किया जाता है। योगसूत्रकार पतञ्जलि ने भी कहा है—"अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः" अभ्यास और वैराग्य से ही मन का निरोध करना होता है ॥ २२-१ ॥

परंतु जिस का मन वश में किया हुआ नहीं है उस—

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥ २॥

असंयतात्मना, योगः, दुष्प्रापः, इति, मे, मतिः।
वश्यात्मना, तु, यतता, शक्यः, अवाप्तुम्, उपायतः॥
—६।३६

भाषाटीका और अन्वय—असंयतात्मना (मन को अपने वश में नहीं किये हुए पुरुष द्वारा) योगः (योग) दुष्प्रापः (दुष्प्राप्य—प्राप्त होना कठिन—है), तु (किंतु) यतता (प्रयत्न करते हुए) वश्यात्मना (मन को वश में करनेवाले पुरुष द्वारा) उपायतः (उपाय से अर्थात् साधन करने से) अवाप्तुम् (प्राप्त होना) शक्यः (संभव है), इति (यह) मे (मेरा) मतिः (मत) (है) ॥ २३-२ ॥

सिद्धान्तशिखरिणी (व्याख्या)—मन को अपने वश में नहीं किये हुए पुरुष द्वारा—अर्थात् जिस का अन्तःकरण अभ्यास और वैराग्य से संयत किया हुआ नहीं है, ऐसे पुरुषद्वारा—योग प्राप्त करना कठिन है। अर्थात् उस को आत्मज्ञाननिष्ठारूप योग कठिनता से प्राप्त हो सकता है। परंतु जिस का मन अभ्यास और वैराग्यद्वारा वश में किया हुआ है, उस के बारंबार यत्न करने पर उपायों से यह योग उस से प्राप्त किया जा सकता है, यह मेरा निश्चय है।

:: इस अध्याय में मन को वश में कैसे किया जा सकता है और मन को वश में करके आत्मज्ञाननिष्ठारूप योग की कैसे प्राप्ति हो सकती है, यह विस्तारपूर्वक बतलाया जायगा। योगवासिष्ठ में इसी आत्मज्ञान की प्राप्ति करने के लिए चार उपाय बतलाये गये हैं।

यथा—

'संतोषः साधुसंगश्च विचारोऽथ शमस्तथा।
एत एव भवाम्भोधावुपायास्तरणे नृणाम्॥'

संतोष, साधुसंग, विचार और शम (अन्तःकरण और बाह्य इन्द्रियों का निग्रह करना), ये मनुष्यों के संसारसागर से पार होने के लिए चार उपाय हैं।

'संतोषः परमो लाभः सत्संगः परमा गतिः।
विचारः परमं ज्ञानं शमो हि परमं सुखम्॥
चत्वार एते विमला उपाया भवभेदने।
यैरभ्यस्तास्तु उत्तीर्णा मोहवारिभवार्णवात्॥'

श्रेष्ठ लाभ देनेवाला संतोष, परम गति मिलानेवाला सत्संग, ज्ञान देनेवाला विचार और परम सुख का कारण शम—ये चारों, संसार से छुड़ानेवाले अनूठे उपाय हैं। जिन्होंने इन उपायों का अभ्यास किया हो, वे मानो मोहरूप जल से परिपूर्ण संसारसमुद्र के पार चले गये।

कोई भी वासना हो उस को पूरी करने के लिए पौरुष—पुरुषार्थ अर्थात् उद्यम—अपने प्रयत्न—का प्रयोजन होता है। यज्ञ व्रत आदि जो कुछ भी कर्म किया जाय, उस के लिए भी पौरुष का ही उपयोग किया जाता है। यम नियम आदि की रक्षा के लिए भी साधारण मन के साथ पौरुष द्वारा लड़ना होता है। बहुत से ऐसे दुर्बल हृदय वाले लोग हैं जो दैव या प्रारब्ध आदि मनोहर शब्दों का उपयोग करते हैं और दैव को मान, पौरुष की उपेक्षा कर दुःखमय संसार से बचने के लिए प्रयत्न नहीं करते। उन के लिए यहाँ "दैव" तथा "पौरुष" का कुछ विचार किया जाता है; क्योंकि साधन, अभ्यास आदि के लिए पौरुष—पुरुषार्थ—का ही प्रयोजन होता है।

'साधूपदिष्टमार्गेण यन्मनोऽङ्गविचेष्टितम्।
तत् पौरुषं तत् सफलमन्यदुन्मत्तचेष्टितम्॥'

'उच्छास्त्रं शास्त्रितं चेति द्विविधं पौरुषं स्मृतम्।
तत्रोच्छास्त्रमनर्थाय परमार्थाय शास्त्रितम्॥'

शरीर मन की चेष्टामात्र ही पौरुष—पुरुषार्थ—है। किंतु शास्त्र के अनुकूल और शास्त्र के प्रतिकूल—दो प्रकार का पुरुषार्थ होता है। शास्त्रानुकूल पुरुषार्थ ही परमार्थ—मोक्ष—की प्राप्ति का उपाय है।

'प्राक्तनं चैहिकं चेति द्विविधं विद्धि पौरुषम्।
प्राक्तनोऽद्यतनेनाशु पुरुषार्थेण जीयते॥'

'तस्मात् प्राक् पौरुषाद्दैवं नान्यत् तत् प्रोज्झ्य दूरतः।
साधुसंगमसच्छास्त्रैर्जीवमुत्तारयेत् बलात्॥'

पहले और इस जन्म के हिसाब से फिर दो प्रकार का पुरुषार्थ है। इस हेतु से पहलेवाले पुरुषार्थ को छोड़कर दैव नाम का कुछ भी नहीं है। अतः दैव की उपेक्षा कर पुरुषार्थ से सत्संग और सत् शास्त्र के अनुसार चलकर हठात् जीवभाव से उद्धार हो जाय।

'प्राक् स कर्मेतराकारं दैवं नाम न विद्यते।
बालः प्रबलपुंसेव तज्जेतुमिह शक्यते॥'

'ये समुद्योगमुत्सृज्य स्थिता दैवपरायणाः।
ते धर्ममर्थं कामं च नाशयन्त्यात्मविद्विषः॥'

'पौरुषाद् दृश्यते सिद्धिः पौरुषाद्धीमतां क्रमः।
दैवमाश्वासनं मात्रं दुःखे पेलवबुद्धिषु॥'

जैसे बालक को प्रबल पुरुष द्वारा जीता जाता है, वैसे ही पहले जन्म के पुरुषार्थ (इस जन्म के दैव) को अब के प्रबल पुरुषार्थ द्वारा जीता जा सकता है। जो उद्योग को छोड़कर दैव का आश्रय लेते हैं वे आत्मद्वेषी व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम का नाश कर बैठते हैं। पौरुष—पुरुषार्थ—से ही सिद्धि होती है, पुरुषार्थ ही बुद्धिमानों का आश्रय है। कोमल बुद्धि—नाजुक मिजाज—वालों के लिए दैव दुःख के समय आश्वासन—तसल्ली—रूप है।

'प्राक्तनं पौरुषं चात्र दैवशब्देन कथ्यते।'

क्योंकि पहले जन्म का पुरुषार्थ ही इस जन्म में दैव शब्द से कहा जाता है। अतः—

'सकलकारणकार्यविवर्जितं,
निजविकल्पवशादुपकल्पितम्।
त्वमनपेक्ष्य हि दैवमसन्मयं,
श्रय शुभाशय पौरुषमुत्तमम्॥'

हे शुभेच्छु! कार्यकारणरहित, अपने विकल्प से कल्पित, मिथ्यारूप दैव की अपेक्षा न कर, तुम उत्तम पौरुष—पुरुषार्थ—को ही आश्रय—अवलम्बन—करो॥ २३-२॥

स्थूल, सूक्ष्म आदि शरीर और इन्द्रियों में अपना आत्मभाव—अभेदबुद्धि—रख, मोहित होकर जीव अपने स्वरूप को दबाते रहते हैं और अनर्थरूप संसारसमुद्र में डूबते जाते हैं। इस से स्वयं अपने प्रयत्न से अपना उद्धार कर लेना चाहिए। इस लिए श्री भगवान् कहते हैं—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ ३॥

उद्धरेत्, आत्मना, आत्मानम्, न, आत्मानम्, अवसादयेत्। आत्मा, एव, हि, आत्मनः, बन्धुः, आत्मा, एव, रिपुः, आत्मनः॥
—६१५

भाषाटीका और अन्वय—आत्मना (अपने द्वारा अर्थात् विवेकयुक्त बुद्धि द्वारा) आत्मानम् (अपने को) (संसार से) उद्धरेत् (उद्धार करे, उबारे); आत्मानम् (अपनी, आत्मा को) न अवसादयेत् (अवसन्न न करे अर्थात् अधोगति को न पहुँचावे)। हि (क्योंकि) आत्मा (आप) एव (ही) आत्मनः (अपना) बन्धुः (बन्धु)

(है और) आत्मा (आप) एव (ही) आत्मनः (अपना) रिपुः (शत्रु) (है) ॥ २४-३ ॥

सिद्धान्तशिखरिणी (व्याख्या)—संसारसागर में डूबे हुए अपने को अपने आप ऊँचे उठाना चाहिए अर्थात् योगारूढ अवस्था को प्राप्त कर लेना चाहिए। योग की प्राप्ति के लिए उपायों से प्रयत्न न करने पर आत्मज्ञान नहीं होता है। आत्मज्ञान के अभाव के कारण संसार से मुक्ति भी नहीं होती। इस लिए अपनी आत्मा का अधःपतन ही हुआ कहा जाता है। अतः अपना अधःपतन नहीं करना चाहिए अर्थात् अपनी आत्मा को नीचे नहीं गिराना चाहिए, क्योंकि हम आप ही अपने बन्धु हैं। दूसरा कोई ऐसा बन्धु नहीं है जो संसार से मुक्त कर सकता हो। फिर आप ही हम अपने शत्रु भी हैं। दूसरा कोई भी जो अनिष्ट करनेवाला बाह्य शत्रु है, वह भी अपना ही बनाया हुआ है। इस लिए आप ही हम अपने शत्रु हैं। इस तरह केवल अपने को शत्रु बतलाना भी ठीक ही है ॥ २४-३ ॥

हम आप ही अपने बन्धु हैं और आप ही अपने शत्रु हैं, ऐसा कहा गया। उन में कौन अपना बन्धु है और कौन अपना शत्रु है, अब यह कहा जाता है—

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ ४ ॥

बन्धुः, आत्मा, आत्मनः, तस्य, येन, आत्मा, एव, आत्मना, जितः। अनात्मनः, तु, शत्रुत्वे, वर्तेत, आत्मा, एव, शत्रुवत् ॥
— ६।६

भाषाटीका और अन्वय—येन (जिस से) आत्मना (अपने द्वारा) आत्मा (अन्तःकरणादि) जितः (जीता हुआ है) तस्य (उस) आत्मनः (आत्मा का) (वह) आत्मा (आप) एव (ही) बन्धुः (बन्धु, है), तु (किंतु) अनात्मनः (जिस के द्वारा अन्तःकरण आदि नहीं जीता गया है, उस का) (वह) आत्मा (आप) एव (ही) शत्रुवत् (शत्रु के समान) शत्रुत्वे (शत्रुता में) व[र्तेत]
(वर्तता है) ॥ २५-४ ॥

सिद्धान्तशिखरिणी (व्याख्या)—अपना ब[न्धु] वही है कि जिस ने अपने अन्तःकरण आदि को अपने व[श] में कर लिया हो। क्योंकि उसी के लिए विक्षेप का (म[न] के इधर उधर भटकने का) अभाव होने से आत्मा में ध्या[न] लगाना संभव होता है। फिर जिस ने अन्तःकरण आदि अ[पने] वश में नहीं किया हो वह आप ही अपना शत्रु बनता [है] अर्थात् दूसरे अनिष्ट करनेवाले शत्रु की भाँति वह अपना [ही] अनिष्ट करने में लगा रहता है।

ऐसे मनुष्य को विवेक विचार आदि से रहित होने [के] कारण पशु के समान कहा गया है। यथा—

"जन्ममृत्युजरादुःखमनुयान्ति पुनः पुनः।
विमृशन्ति न संसारं पशवः परिमोहिताः ॥"

अतः,—

"विवेकं परमाश्रित्य वैराग्याभ्यासयोगतः।
संसारसरितं घोरमिमामापद्मुत्तरेत् ॥"

—परम विवेक के आश्रय वैराग्य और अभ्यास[के] योग से इस भयंकर तथा दुःखमय संसारप्रवाह से त[र] जाना चाहिए ॥ २५-४ ॥

मनुष्य का मन स्वभाव से ही बड़ा चञ्चल है। साध[क] को मन वश में करना चाहिए। अभ्यास और वैराग्य[से] ही इस मन को वश में किया जा सकता है। ये सब ब[ातें] इस अध्याय के पहले दो श्लोकों में कही गई हैं। तीस[रे] और चौथे श्लोकों का आशय यह है कि साधक अपने म[न] को बहुत चञ्चल देखकर और विविध शरीरधर्मों के सा[थ] आत्मभाव (एकरूपता की बुद्धि) रख, मोहित हो[कर] अपने को न दबावे और अपने ही प्रयत्न से अप[ना] उद्धार करे।

योगाभ्यास करनेवाले साधकों के लिए योग के साध[न] रूप आसन, आहार और विहार आदि के नियम बतला[ए]

चाहिएँ, एवं योग को प्राप्त किए हुए साधकों के लक्षण और उस का फल आदि भी कहना चाहिए। इस लिए अब ये सब बातें क्रमशः बतलाई जाती हैं।

आत्मज्ञाननिष्ठारूप योग और उस के फल की प्राप्ति के लिए—

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥ ५॥

योगी, युञ्जीत, सततम्, आत्मानम्, रहसि, स्थितः।
एकाकी, यतचित्तात्मा, निराशीः, अपरिग्रहः॥
—६।१०

भाषाटीका और अन्वय—योगी (योगाभ्यास करनेवाला) सततम् (निरन्तर) रहसि (एकान्त स्थान में) स्थितः (स्थित हुआ) एकाकी (अकेला, ही) यतचित्तात्मा (चित्त और देह का संयमपूर्वक) निराशीः (आकाङ्क्षाओं से रहित) (तथा) अपरिग्रहः (संग्रहरहित) (होकर) आत्मानम् (मन को) युञ्जीत (ध्यान में लगावे) ॥२६-५॥

सिद्धान्तशिखरिणी (व्याख्या)—ध्यान करनेवाला साधक योगी अकेले ही, जहाँ योग में विघ्न करनेवाले दुर्जन न हों, ऐसे एकान्त स्थान में स्थित हुआ, निरन्तर अपने अन्तःकरण को ध्यान में स्थिर करे। "एकान्त स्थान में स्थित हुआ" और "अकेले" इन विशेषणों से यह सिद्धान्त पाया जाता है कि सब कर्मों का त्याग कर ज्ञान का साधन करे। क्योंकि जहाँ किसी मनुष्य या वस्तु की सहायता नहीं मिला करती, ऐसे एकान्त स्थान में अकेले—किसी की सहायता न लेकर—यज्ञादि कोई भी कर्म हो नहीं सकता। जिस का चित्त अर्थात् अन्तःकरण और आत्मा अर्थात् शरीर संयत—वश में किया हुआ—है वह यतचित्तात्मा कहलाता है। इस प्रकार यतचित्तात्मा, निराशी—तृष्णा से रहित—और संग्रहरहित होकर 'अर्थात् समस्त कर्मों का त्यागरूप संन्यास करने पर भी शरीर आदि की रक्षा के लिए किसी वस्तु के संग्रह में आसक्ति न रखकर ध्यान का अभ्यास करे॥ २६-५॥

पूर्व श्लोक में यह कहा गया है कि एकान्त स्थान में अकेले योग का अभ्यास करना चाहिए। अब, ध्यान के लिए कैसा आसन होना चाहिए, वह कहा जाता है—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥ ६॥

शुचौ, देशे, प्रतिष्ठाप्य, स्थिरम्, आसनम्, आत्मनः।
न, अत्युच्छ्रितम्, न, अतिनीचम्, चैलाजिनकुशोत्तरम्॥
—६।११

भाषाटीका और अन्वय—शुचौ (पवित्र) देशे (स्थान में) चैलाजिनकुशोत्तरम् (क्रम से कुशा, मृगछाला और वस्त्र से बनाये हुए), न (न) अत्युच्छ्रितम् (अति ऊँचा) (और) न (न) अतिनीचम् (अति नीचा) (तथा) स्थिरम् (निश्चल) आत्मनः (अपने) आसनम् (आसन को) प्रतिष्ठाप्य (स्थापन करके)॥ २७-६॥

सिद्धान्तशिखरिणी (व्याख्या)—जिस योग का उपदेश यहाँ दिया जाता है उस योग का फल है सम्यग्ज्ञान अर्थात् आत्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान। उस ज्ञान का फल है कैवल्य अर्थात् मुक्ति। बैठते हुए, सोते हुए, चलते हुए या जो कुछ करते हुए—हर एक अवस्था में ही (स्मरण, मनन आदि का) अभ्यास रखना चाहिए। परंतु "आसीनः संभवात्" इस न्याय के अनुसार कहीं पर बैठकर ही योग का अभ्यास करना आसान है। इस लिए कैसे स्थान में और कैसे आसन पर बैठकर साधन करना चाहिए, वह कहा जाता है।

शुद्ध स्थान में अर्थात् झाड़ना या गोमय आदि से लीपना आदि संस्कारों से साफ किये हुए पवित्र और एकान्त स्थान में अपने स्थिर—अचल—आसन का स्थापन करे। "अपने" इस विशेषण से दूसरे के आसन में बैठकर योग का अभ्यास करना मना किया गया। लय में (ध्यान की

ममता में) गिर जाने का डर न रहे, इस लिए आसन का "न अति ऊँचा" यह विशेषण दिया गया है। जमीन या पत्थर आदि की ठंडाई से वात या अग्निमान्द्य (भूख की कमी) आदि की बीमारी न हो, इस लिए आसन "न अति नीचा" हो, ऐसा बतलाया गया। चैलाजिनकुशोत्तरम् में पाठक्रम को उल्टा समझकर पहले कुशा, उस पर मृगछाला और उस मृगचर्म के ऊपर वस्त्र बिछाना चाहिए ॥ २७-६ ॥

ऐसे आसन का स्थापन कर क्या करे ?—

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ ७ ॥

तत्र, एकाग्रम्, मनः, कृत्वा, यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्य, आसने, युञ्ज्यात्, योगम्, आत्मविशुद्धये ॥
—६।१२

भाषाटीका और अन्वय—तत्र (उस) आसने (आसन पर) उपविश्य (बैठकर) (एवं) मनः (मन को) एकाग्रम् (एकाग्र) कृत्वा (करके) यतचित्तेन्द्रियक्रियः (चित्त तथा इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में किये हुए) (साधक) आत्मविशुद्धये (अन्तःकरण की शुद्धि के लिए) योगम् (योग) युञ्ज्यात् (अभ्यास करे) ॥२८-७॥

सिद्धान्तशिखरिणी (व्याख्या)—उस आसन पर बैठकर ध्यानयोग का साधन करे। कैसे करे ?—मन को ध्यान के योग्य विषय से अतिरिक्त और सब विषयों से हटाकर, उसी एक ध्येय विषय में लगाकर और चित्त तथा इन्द्रियों की बाह्य क्रियाओं को संयत—वश—में करके साधन करे। क्यों करे ?—आत्मशुद्धि अर्थात् अन्तःकरण की शुद्धि के लिए करे ॥ २८-७ ॥

उस कहे गये आसन पर शरीर को कैसे स्थित करना चाहिए ?—

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥

समम्, कायशिरोग्रीवम्, धारयन्, अचलम्, स्थिरः
संप्रेक्ष्य, नासिकाग्रम्, स्वम्, दिशः, च, अनवलोकयन्
—६।

भाषाटीका और अन्वय—कायशिरोग्रीवम् (शरी सिर तथा गले को) समम् (समान) च (और) अच (अचल) धारयन् (धारण किये हुए अर्थात् रखक स्थिरः (दृढ) (हो) स्वम् (अपने) नासिकाग्रम् (नासि के अग्रभाग को) संप्रेक्ष्य (देखकर) दिशः (और दिशा को) अनवलोकयन् (न देखता हुआ)—॥ २९-८ ॥

सिद्धान्तशिखरिणी (व्याख्या)—काया, सिर ग्रीवा को समान और अचल भाव से रख स्थिर होकर बै समान भाव से रखने पर भी काया आदि का चलन है (हिलना) संभव है; इस लिए 'अचल' यह विशे दिया गया। इस तरह स्थिर बैठकर अपनी नासिक अग्रभाग को देखता हुआ—। यहाँ देखने का सा करता हुआ समझना चाहिए, क्योंकि यहाँ अपनी नासि के अग्रभाग को देखने का विधान हो ही नहीं सकता। तो केवल नेत्रों की दृष्टि को उस ओर लगाने का विधान कि गया है, ताकि बाह्यरूप आदि विषय देखने में न आवें इस भाँति दृष्टि का स्थापन करना भी अन्तःकरण के सं धान के लिए आवश्यक है। क्योंकि यदि अपनी नासि के ही अग्रभाग को देखने का विधान दिया जाय, तो भी वहीं स्थित होगा, आत्मा में नहीं। किंतु आगे रहवें श्लोक में "आत्मसंस्थं मनः कृत्वा" आदि के आत्मा में ही मन की स्थिति करने को बतलाया जायगा इस लिए नासिका के अग्रभाग को देखने का सा भाव कर हुआ ही कहा गया है। इस प्रकार नेत्रों की दृष्टि नासि के अग्रभाग पर लगाकर और दिशाओं को न देख हुआ—॥ २९-८ ॥

(क्रमशः

સમાલોચના અને પ્રાપ્તિસ્વીકાર

સમાલોચના

૧ શ્રી સત્યનારાયણની કથા (આધ્યાત્મિક)—જેનીવાણી સાધુમય છે. એજ સાધુવાણીયો જેનુ નામ વિસ્મૃતિદાસ છે. ભક્તિ નામની તેની સ્ત્રી તથા સ્મૃતિદાસતેનોજ ભાઈ છે. બુદ્ધિ રૂપે કલાવતી તેની કન્યા છે. રૂષીઓ—ક્ષમાજી, શૌચ્યાજી, સંતોષજી વગેરે છે. એ સર્વ દેહ માંજ છે. આત્મા એજ સત્યાત્મા એજ શ્રી સત્યનારાયણ પ્રભુ છે. એમના યજન પૂજન નો વિધિ છે.

કીંમત રૂ૦-૪-૦ ચાર આના.

૨ આત્મનિવેદન—આત્મા અને દેહનો સંબંધ કેવા પ્રકારનો છે ; "क्षेत्रज्ञं चापि माम् विद्धि" એ મહાવાકય પ્રમાણે ક્ષેત્ર અને ક્ષેત્રજ્ઞના તાત્વિક બોધ થી અંતઃકરણના મળ તથા વિક્ષેપનો ત્યાગ અને આત્મજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ માં ઘણી મદદ મળે છે. આત્મસ્વરાજની પ્રાપ્તિ કેવા સંસ્કારોના પોષણ થી પ્રાપ્તથાય છે તે બતાવેલુ છે.

કીંમત રૂ૦-૮-૦ આઠ આનાઃ

૩ સંસારસારસંગ્રહ—સંસારમાં સારવસ્તુ શું છે, અને અસાર વસ્તુ શું છે, તેનુ વર્ણન ચાળીસ સુદ્ધા કહાડી તેનો નિર્ણય કરવામાં આપ્યો છે; જેનાથી આત્મસુખ પ્રાપ્ત થઈ શકે છે.

કીંમત રૂ૦-૮-૦ આઠ આના.

૪ સંસારદ્રષ્ટાંતરહસ્ય—સંસાર વ્યવહારમાં સુખ શાંતિ કેવી રીતે મળે તેનુ રહસ્ય સમજાવેલુ છે. કર્મ કરવામાં કઈ કઈ જગોએ ભૂલો થાયછે, તેને સારૂ કેવી સાવધાનતા રાખવી જોઈએ તે દ્રષ્ટાંતો આપી સમજાવેલુ છે.

કીંમત રૂ૦-૬-૦ છ આના.

૫ સુંદર ગ્રહસ્થાશ્રમ—ગ્રહસ્થધર્મતું સ્વરૂપ સંસાર નો સર્વ કોઈ કરેછે, પણ તેમાં સુખ અને શાંતિ મેળવામાં તેનુ પાલન કેવી રીતે કરવુ જોઈએ તે દેખાડવામાં આવ્યુ છે.

કીંમત રૂ૦-૩-૦ ત્રણ આના.

ઉપરનાં પુસ્તકો સંબંધમાં કેટલાક અભિપ્રાયઃ—

૧ લોકસંગ્રહી ગીતાવ્યાસ સ્વામી શ્રી વિદ્યાનંદજી મહારાજ—"આ પુસ્તકો ધાર્મિક વૃત્તિના માણસ ને સારૂ વાંચન પુરૂપાડે છે."

૨ રા૦ રા૦ રમણુલાલ વસંતલાલ દેસાઈ એમ૦ એ૦—"લેખકની માતૃભાષા મહારાષ્ટ્રી હોવા છતાં ગુજરાતી માં પુસ્તકો લખવામાટે તેમને ધન્યવાદ ઘટે છે. એકંદર રચેલાં પુસ્તકો ઉપરથી વ્યવહાર અને ધર્મ તરફ તેમનુ સાફ વળણુ હોવાનું જણાઈ આવે છે. મનને રંજન કરે એવાં ઘર ગચુ દ્રષ્ટાંતોને સીધે પુસ્તકો વાંચવાં ગમે તેવાં છે. એ પુસ્તકોના વાંચનથી મન સારે માર્ગે વળે તેમ છે."

૩ રા૦ રા૦ પ્રભાશંકર લીલાધર દોશી બી૦ એ૦ એલ૦ એલ૦ બી૦—"પુસ્તકોની ભાષા ઘણી સરળ છે. બોધદાયક તત્ત્વજ્ઞાન અને નીતિ નુ સ્પષ્ટિકરણ યોગ્ય વિદ્વત્તાથી કરવામાં આવેલુ છે. તે ઉપરથી હરેક ના મન ઉપર ઉંડી છાપ પડ્યા વગર રહેશે નહી. લેખકનો પ્રયાસ સફલતાથી પાર પડેલો છે. એમકહ્યા વગર ચાલતુ નથી. તેથી તેમને ધન્યવાદ ઘટે છે.

૪ રા૦ રા૦ ટી૦ એન૦ કર્ણીક એગ્યુ મિક્સ્ચરવાલા, મુંબાઈ—"સંસારસારસંગ્રહ પુસ્તક દરેકના મન ઉપર સારી છાપ પાડ્યા વગર રહેશે નહીં. દરેક કુટુંબમાં રાખવા લાયક છે."

પુસ્તકો મગવાનું ઠેકાણું.

(૧) શંકરરાવ મહીપતરાવ ખોપકર વડોદરા સિયાબાગ ભાઉદાસ મહેલામાં—

(૨) ખુવાશો દરેક દસ પુસ્તકો લેનારાને એક પુસ્તક મફત મળશે—

(૩) ટપાળ ખર્ચ જુદો પડશે.

प्राप्तिस्वीकार

गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित निम्नलिखित पुस्तकें हमें प्राप्त हुईं। इस के लिए इन पुस्तकों के प्रकाशक श्री घनश्यामदासजी जालान को अनेक धन्यवाद।

१-श्री उड़िया स्वामीजी के उपदेश-(सचित्र) संपादक—श्री मुनिलालजी; प्रथम सस्करण; पृष्ठ-संख्या—२१०; आकार—डवल क्राउन १६ पेजी; मूल्य ।=)

२-नवधा भक्ति (सचित्र)—लेखक — श्री जयदयालजी गोयनका; प्रथम संस्करण; पृष्ठसंख्या-६५; आकार वही; मूल्य =)

३-श्रीमद्भगवद्गीता भाषा (सचित्र तथा प्रत्येक अध्याय के माहात्म्य सहित)—प्रथम संस्करण; पृष्ठसंख्या—३५४; आकार-डवल क्राउन ३२ पेजी; मूल्य ।)

४-ध्यानावस्था में प्रभु से वार्तालाप-लेखक-श्री जयदयाल गोयनका; प्रथमसंस्करण; पृष्ठसंख्या-४३; आकार-डवल क्राउन १६ पेजी; मूल्य –)॥

विद्याविभाग, काँकरोली द्वारा प्रकाशित निम्नलिखित पुस्तकें हमें प्राप्त हुईं। इस के लिए इन के प्रकाशक को अनेक धन्यवाद।

१-संप्रदायप्रदीप (सचित्र, सानुवाद)—मूल लेखक—श्री पं० गदाधर द्विवेदीजी; अनुवादक-पो० कण्ठमणि शास्त्री विशारद; प्रथम संस्करण; पृष्ठसंख्या—लगभग २८०; आकार—डवल क्राउन १६ पेजी; मूल्य २)

२-संप्रदायप्रदीप (गुजराती अनुवाद)। अनुवादक — भट्ट श्री जटाशंकर शास्त्री; प्र[illegible] संस्करण; पृष्ठसंख्या—९६; आकार-डवल क्रा[illegible] १६ पेजी; मूल्य नहीं लिखा है।

३-रसिकरसाल-लेखक कविवर पो० कुम[illegible] मणि शास्त्री; संपादक- पो० कण्ठमणि शा[illegible] विशारद; पृष्ठसंख्या—२७० के करीब; आका[illegible] डवल क्राउन १६ पेजी; मूल्य १॥)

नन्दकिशोर एंड ब्रदर्स द्वारा प्रकाशित निम्नलि[illegible] पुस्तक हमें प्राप्त हुई। इस के लिए उन्हें अ[illegible] धन्यवाद।

१-सरल अंग्रेजी शिक्षा-लेखक श्री गोप[illegible] चन्द्र वेदान्तशास्त्री; पृष्ठसंख्या—२८०; आका[illegible] डवल क्राउन १६ पेजी; मूल्य १)

श्री गोपालचन्द्र वेदान्तशास्त्री द्वारा प्रका[illegible] निम्नलिखित पुस्तक हमें प्राप्त हुई। इस के लिए [illegible] अनेक धन्यवाद।

१-सरल बंगला शिक्षा-लेखक— श्री गोप[illegible] चन्द्र वेदान्तशास्त्री; द्वितीय संस्करण; पृष्ठसं[illegible] २६८; आकार-डवल क्राउन १६ पेजी; मूल्य [illegible]

श्री दुर्गाप्रसादजी रिटायर्ड एडवोकेट [illegible] प्रकाशित निम्नलिखित पत्रिका हमें प्राप्त हुई। इस[illegible] लिए आप को अनेक धन्यवाद।

१-संकीर्तन-शङ्कासमधानाङ्क- प्र० सं० स्वामी शिवानन्द सरस्वती ऋषिकेश; संपादक - प्रभुदत्त ब्रह्मचारी 'सुदर्शन'; पृष्ठसंख्या - ३[illegible] वार्षिक मूल्य ३≡); इस अङ्क का मूल्य २); प्र[illegible] स्थान—सुदर्शन कार्यालय, मेरठ।

गीताधर्म के नियम

१—गीताधर्म प्रति अंग्रेजी मास की पहली तारीख को प्रकाशित होता है।

२—इस का वार्षिक मूल्य ४) मात्र है। इस का वर्ष जनवरी से दिसंबर तक समझा जाता है। छः मास का मूल्य २।) रुपया है, परंतु छः मासवाले ग्राहकों को वार्षिक बड़ा विशेषाङ्क नहीं मिलेगा। प्रति संख्या का मूल्य ।=) है। नमूने के लिए ।=) आने का टिकट भेजना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ६।।) और प्रति संख्या का ।≡) है।

३—अपना नाम और पूरा पता साफ साफ लिखकर भेजना चाहिए, जिस में पत्र के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४—जिन सज्जनों को किसी मास का गीताधर्म न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछना चाहिए। पता न लगने पर डाकघर के उत्तर के साथ जिस महीने की संख्या न मिली हो उस के अगले महीने की पंद्रह तारीख तक पत्र लिखें। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उन पर विचार करना कठिन होगा। गीताधर्म यहाँ से दो बार अच्छी तरह जाँचकर रवाना किया जाता है। पत्रव्यवहार करते समय अपना **ग्राहकनंबर अवश्य लिखा जाय।**

५—पत्र के उत्तर के लिए सदा **जवाबी कार्ड अथवा टिकट** आना चाहिए, अन्यथा हम उत्तर देने में असमर्थ हैं।

६—यदि एक ही दो मास के लिए पता बदलवाना हो, तो अपने डाकखाने से उस का प्रबन्ध करा लेना चाहिए। यदि सदा अथवा अधिक काल के लिए पता बदलवाना हो,तो उस की सूचना हमें अवश्य देनी चाहिए।

७—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें (२ प्रति से कम नहीं) और बदले के पत्र "संपादक 'गीताधर्म', साक्षीविनायक, काशी" के पते से भेजना चाहिए। मूल्य तथा प्रबन्ध संबन्धी पत्र "मैनेजर 'गीताधर्म', साक्षीविनायक, काशी" के पते से आने चाहिएँ।

८—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने का तथा उसे लौटाने या न लौटाने का पूरा अधिकार संपादक को होगा। लेखों के घटाने बढ़ाने का अधिकार भी संपादक को है।

९—लेख, कविता एवं कहानियों का सरल भाषा में धर्म के अनुकूल तथा हाशिया छोड़कर पृष्ठ के एकही ओर स्पष्ट लिखित होना आवश्यक है। अधूरे या धर्मविरुद्ध लेख नहीं छापे जायँगे। जिन लेखों में चित्र रहेंगे, वे तब तक न छापे जायँगे जब तक लेखक उन के मिलने का प्रबन्ध न कर देंगे।

(भारत के प्रसिद्ध शहरों में गीताधर्म कार्यालय की शाखाएँ)

गीताधर्म मिलने के पते

१ **काशी,** गीताधर्म कार्यालय, साक्षीविनायक।

२ **प्रयाग,** पं० वृषकेतु उपाध्याय, जार्जटाउन (गिरधारीलाल का बंगला ३३।)

३ **बंबई,** श्री नगीनदास फूलचंद चिनाई, चिनाई बिल्डिंग, मसजिद बंदररोड।

४ **कलकत्ता,** श्री सेठ रामप्रसादजी मूँदरा, ३२ क्रासस्ट्रीट, मूँगापट्टी, कलकत्ता M. P.

५ **अहमदाबाद,** सेठ बद्रीप्रसाद, कामनाथ महादेव, रायपुर दरवाजा बाहर।

६ **बड़ोदा,** मणिभाई जशभाई देशाई, सुलतानपुरा।

७ **इंदौर,** श्री कमलाशंकर जे. पंड्या M. B. E. H. प्राइवेट मेडिकल प्रेक्टीशनर, पीपली बाजार।

८ **ग्वालिअर,** बाबू उमराव विहारी माथुर, अम्बानिवास, नौमहला।

९ **नागपुर,** लाला नन्दलाल मैकूलाल (किराना मर्चेंट), सीतावर्डी।

१० **जबलपुर,** लाला रामचन्द्र, रईस व ठेकेदार, मुकादमगंज।

११ **गाडरवारा,** आचारीजी का मन्दिर।

१२ **नरकटियागंज (चंपारन),** पण्डित राधावल्लभ मिश्र, अध्यापक जानकी संस्कृत विद्यालय।

१३ **जमशेदपुर,** एम. एल. तिवारी, तिवारी बेचर एंड कं० लिमिटेड।

१४ **लाहौर,** सेठ शालिग्राम नरसिंहदासजी, लाहौर कैंट।

१५ **लखनऊ,** श्री नन्दविहारीलाल ओरियंटल ग० सिक्यूरिटी लाइफ इंश्योरेंस कं० लि०, ओरियंटल बिल्डिंग, हजरतगंज।

१६ **डभोई,** सेठ चुन्नीलाल गिरधरलाल जीनवाला।

१७ **सनखेड़ा,** बक्षी जेठालाल केशवलालजी, बजारमां (स्टेट बड़ोदा)।

१८ **आनन्द,** पटेल गोरधनभाई शामलदासजी मास्तर।

१९ **उदयपुर,** अक्षयकीर्ति शर्मा 'अक्षय', सुपरिंटेंडेंट मेवाड़ आफ कोलाजी विक्टोरिया हाल म्युजियम (राजपूताना)।

२० **उज्जैन,** पं० दुर्गाप्रसादजी तिवारी, लेफ्टीनेंट, माधवनगर।

२१ सिहोरा, श्री रामप्रसाद शर्मा, लोकल बोर्ड सेक्रेटरी, सिहोरा रोड।

२२ गाजीपुर, श्री शिवमूर्ति पाण्डेयजी, भगवती औषधालय, धानापुर।

२३ [illegible], गोस्वामी श्री दयालगिरिजी, ज्वाइंट सेक्रेटरी–गीताप्रचारमण्डल, कर्णकुटी।

२४ [illegible], माधवलाल डी० शाह (स्टेट बडौदा)।

२५ कानपुर, श्रीमान् बाबू गङ्गानारायण खरे, म्युनिसिपल हाईस्कूल, नवाबगंज।

२६ दिल्ली, श्रीमान् पं० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय बी० ए०, सेक्रेटरी आल इंडिया ब्राह्मणमहासभा तथा वर्णाश्रम स्वराज्य संघ, २३०३ चरखेवालान स्ट्रीट, कूचा बीबीगौहर।

२७ सिन्ध, मेसर्स वेरहामल नन्दरामजी, न्यू अंडरपीस गुड्सर्मचेंट, शिकारपुर।

२८ हैदराबाद, श्रीमान् गोपीकिशनजी C/o सेठ सीतारामजी रामगोपालजी,
माता नी नगारखाना, बेगमबाजार, हैदराबाद (दक्षिण)।

२९ पादरा, श्रीमान् जेठालाल मनसुखरामजी, कापड़ नी दुकान, बजारमां।

३० पेटलाद, श्रीमान् काछिया मोतीभाई जेठालाल, एजेंट पेटलाद बुक्सेलर, ठे० बड़कुवां पासे।

३१ रतलाम, मनबोधनलाल संकठाप्रसाद पाण्डेय, असिस्टेंट ट्राफिक कन्ट्रोलर B. B. & C. I. Ry.

३२ आजमगढ़, पं० श्रीधर उपाध्याय, कुर्मीटोला।

३३ हरिद्वार, मैनेजर, महारानी अहिल्याबाई वाड़ा।

३४ जैपुर, श्रीमान् लक्ष्मीशरण गङ्गाशरणजी माथुर, जड़ियों का रास्ता, जैपुर सिटी।

३५ भुज (कच्छ), श्रीमान् महेता यशश्चन्द्रभाई मोतीभाई, ज्वाइंट प्राइवेट सेक्रेटरी।

36 Africa—Gordhan Bhai Soma Bhai Patel, The Indian School, Saba Saba P. O. MARAGUA, (Kenya Colony) British East Africa.

37 Fiji (Island)—S. B. Patel, Bar-at-Law, Lauutka.

38 Mombasa—Purashottam D. master, P. 274 British East Africa.

39 Java—Natwarlal Govardhandas Parikh
Messers Chandulal & Co., 4, Gang Gipo, Survaya.

40 Japan—Messers R. C. Patel & Co., P. N. 339 Kove.

४१ बलिया, पं० श्यामसुन्दरजी उपाध्याय B. A., L-L. B. , सेक्रेटरी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड।

४२ लहेरियासराय, श्री विश्वनाथनारायण सिंह, B. A. L-L. B. (दरभंगा)।

४३ बाँकीपूर, वैद्यरत्न पं० ब्रजबिहारी चतुर्वेदी, रत्नाकर औषधालय, भिखना पहाड़ी, पटना।
४४ महादेवपारा, वसिष्ठनारायण त्रिपाठी, मु० महादेवपारा, पो० मेहनगर, आजमगढ़।
४५ प्रतापगढ़, पं० रविदत्त पाण्डेय B. A., L. T., असिस्टेंट मास्टर, अजीत सोमवंशी हाईस्कूल प्रतापगढ़ सिटी (अवध)।
४६ अमृतसर, गोस्वामी जीवनदास, महामन्त्री-पंजाब प्रान्तीय वर्णाश्रम स्वराज्य संघ, दुरगियाना, अमृतसर (पंजाब)।
४७ करांची, रतीलाल नरवेजी, कोटक, प्रागजी दामजी बिल्डिंग, प्रिंसेस स्ट्रीट, करांची।
४८ गोरखपुर, श्री हरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी बी. ए., एल-एल. बी. बेतिया हाता।
४९ बगहा, पं० रामसागर मिश्र, हेड पण्डित D. M. एकडमी, पो० बगहा, चंपारन।
५० बाराशीवनी, सेठ चौथमलजी, बालाघाट, सी. पी.।
५१ कलकत्ता, जयदेव गङ्गाराम, १४११ रूपचंदराय स्ट्रीट।
५२ जौनपुर, श्रीराम उपाध्याय B. A., L-L. B. एडवोकेट, महल्ला—जोगियापुर।
५३ छिंदवाड़ा, प्रधानाध्यापक हरिप्रसाद द्विवेदी आ० शास्त्री, श्री सनातनधर्म संस्कृतविद्यालय, सिवनी, श्री राममन्दिर के पास, (सी० पी०)।
५४ मुहमदाबाद, पं० कुबेरनाथ पाण्डेय, हेडमास्टर अपर प्राइमरी स्कूल, जि. गाजीपुर।
५५ गोधरा, श्रीमान् आशाभाई खुशालभाई, श्रीकृष्ण आयल मिल्स कं० (गुजरात)।
५६ अकोला, सेठ जगन्नाथ, सीताराम विसनदयाल की फर्म, झोपड़ावाजार में।
५७ बाजवा, शेठ हीमत भाई रणछोड़दास ठक्कर (गुजरात)
५८ भायली, शेठ नटवरलाल रणछोड़दास ठक्कर (गुजरात)

श्री विद्यानन्द ग्रन्थमाला और गीताधर्म प्रेस से प्रकाशित पुस्त[कों]
और चित्रों की सूची

१ विद्यानन्दविनोद हिंदी	॥)
२ „ गुजराती	॥)
३ विद्यानन्द भजनावली	–)
४ हरिस्तुति श्रीमच्छंकराचार्यविरचित	=)
५ विन्ध्यवासिनीस्तोत्र	–)
६ अरविन्द	=)
७ कुलपति मालवीय	=)
८ हिलोर	॥)

९ व्यास
१० कृष्णजन्मभूमि
११ श्रीमद्भगवद्गीता विष्णुसहस्रनाम सहित
१२ कला में कृष्ण की अभिव्यक्ति
१३ आदर्श और यथार्थ
१४ गीताधर्म के प्रथम वर्ष की फाइल सजिल्द
१५ विश्वधर्माङ्क

तिरंगे चित्रों की सूची

१ सरस्वतीजी	।)	१८×२३
२ हनुमान्जी	।)	„
३ गीताधर्म	।)	१२×२३
४ सरस्वतीजी	)॥	७॥×१०
५ गङ्गाजी	„	„
६ योगेश्वर कृष्ण	„	„
७ गीताधर्म	„	„
८ काशी विश्वनाथ	„	„
९ स्वामी विद्यानन्दजी	„	„
१० लक्ष्मीनारायण	„	„
११ हनुमान्जी	„	„
१२ गोस्वामी तुलसीदास	„	„
१३ रामचन्द्रजी	„	„
१४ लक्ष्मणजी	„	„
१५ सीताजी	)॥	७॥×१०

१६ भक्तों के हृदयकमल में भगवान् कृष्ण		„
१७ कारागार में कृष्णजन्म	„	„
१८ यशोदा कृष्ण	„	„
१९ जनकपुर की फुलवारी	„	„
२० गीता का उपदेश देते हुए भगवान् कृष्ण		„
२१ राधाकृष्ण	„	„
२२ कमलीवाले राधेकृष्ण	„	„
२३ गणेशजी	„	„
२४ प्रपत्ति	„	„
२५ भगवान् वेदव्यास	„	„
२६ बाबा विश्वनाथ	„	„
२७ जगद्गुरु श्री शंकराचार्य	„	„
२८ उषा और संध्या	„	„
२९ दूध पीते हुए गोपाल	„	„

एकरंगे चित्रों की सूची

१ जगत् के माता पिता	)॥=	७॥ × १०	६ भगवान् बुद्धदेव	)॥=	७॥ × १०
२ [illegible]	,,	,,	७ स्वामी विद्यानन्दजी	,,	,,
३ [illegible]	,,	,,	८ श्री रामकृष्ण परमहंस	,,	,,
४ [illegible]	,,	,,	९ स्वामी विद्यानन्दजी की कथा अहमदाबाद	,,	
५ [illegible] गांधी	,,	,,	१० स्वामी विद्यानन्दजी की कथा कलकत्ता	,,	

हिंदी संस्कृत आदि की किसी भी पुस्तक के लिए गीताधर्म बुकडिपो को लिखिए। एजेन्सी के लिए पत्र व्यवहार कीजिए। व्यापारियों को भरपूर कमीशन दिया जायगा।



गीताधर्म के विज्ञापन छपाई के रेट

कवर का तीसरा पृष्ठ	२०)	प्रतिमास
,, ,, ,, एक कालम (आधा पृष्ठ)	१२)	,,
,, ,, चौथा पृष्ठ	३०)	,,
,, ,, ,, एक कालम (आधा पृष्ठ)	१८)	,,
कवर के द्वितीय पृष्ठ के सामनेवाला पृष्ठ	१८)	,,
,, ,, ,, एक कालम (आधा पृष्ठ)	१०)	,,
पाठ्यविषय की समाप्ति के सामनेवाला पृष्ठ	१८)	,,
,, ,, सामने एक कालम (आधा पृष्ठ)	१०)	,,
विज्ञापन के फर्मे के बीच में कहीं भी एक पृष्ठ	१५)	,,
,, ,, एक कालम (आधा पृष्ठ)	८)	,,
लेखों के अन्त में या विषयसूची के नीचे एक कालम (आधा पृष्ठ)	१२)	,,
,, ,, आधा कालम (चौथाई पृष्ठ)	७)	,,

१—एक साथ साल भर के लिए स्थायी विज्ञापनदाताओं को २५ प्रतिशत और छः माह के लिए स्थायी विज्ञापनदाताओं को १० प्रतिशत कमीशन दिया जाता है।

२—हमारे यहाँ अश्लील, कुरुचिपूर्ण अथवा अधार्मिक विज्ञापन नहीं छापे जायँगे। इस का निर्णय समिति के द्वारा होता है।

३—विज्ञापन छपाई के रुपये पहले ही आ जाने चाहिएँ। विशेष नियमों की जानकारी के लिए इस पते पर पत्र लिखें—

मैनेजर, विज्ञापनविभाग,
गीताधर्म कार्यालय,
साक्षीविनायक, काशी।

हरिद्वार में आगामी फाल्गुन चैत्र (१९९४) वाले कुम्भ पर अखिल भारतवर्षीय गीतासंमेलन का दूसरा अधिवेशन होगा

सभी साधु महात्माओं, गीताप्रेमियों और विद्वानों से प्रार्थना है कि वे अभी से अपने विचारों और कार्यों द्वारा हमारी सहायता करें।

मन्त्री—

गीतासंमेलन

गीताधर्म कार्यालय

काशी।

× × ×

गीताव्यास स्वामी *विद्यानन्दजी* **आजकल** माधव बाग धर्मशाला सीपीटैंक, बंबई में प्रवचन कर रहे हैं।

श्री पद्मनारायण आचार्य एम० ए० द्वारा गीताधर्म प्रेस, साक्षीविनायक, काशी में संपादित, मुद्रित और प्रकाशित।

तुलसीसुधा

तुलसी या जग आयके सबसों मिलिए धाय ।
का जाने का भेस में 'नारायन' मिल जाय ॥

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ॥

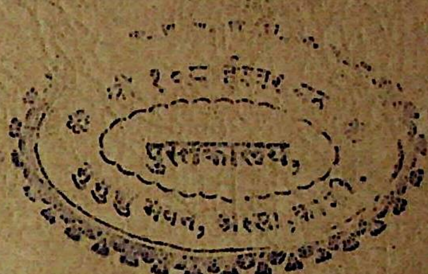
देह धरे को दंड है सब काहू को होय ।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान सों मूरख भुगतै रोय ॥

जड़ चेतन गुण दोष मय विस्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुण गहहिं पय परिहरि बारि बिकार ॥

प्रीति राम सों नीति पथ चलिय राग रिस जीति ।
तुलसी संतन के मते इहै भगति की रीति ॥



स्वामी श्री १०८ श्री घनश्यामानन्दजी की सेवा में ५।६।३७



विश्वधर्माङ्क

का

परिशिष्टाङ्क

गीताधर्म

भजनाङ्क

काशी

संस्थापक—
गीताव्यास लोकसंग्रही
स्वामी विद्यानन्दजी

मई, ३७
वर्ष २ अङ्क ५

संपादक—
पद्मनारायण आचार्य
एम० ए०

श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे !
हे नाथ नारायण वासुदेव !

हर हर महादेव शंभो !
काशी विश्वनाथ गङ्गे !

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे !
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे !

× × × ×

स्वामीजी का संदेश

गीताव्यास स्वामी विद्यानन्दजी ने हरिद्वार से विश्वधर्माङ्क के पाठकों को यह संदेश भेजा है—
परम प्रेमास्पद प्रभु के प्रेमियो !

विश्वधर्माङ्क के लिखने, छापने और पढ़ने का एक ही लक्ष्य है कि हम सब लोग विश्व भर उसी एक विश्वनाथ की एक रचना समझें। इस विश्व की सभी चीजों में एकता का अनुभव करें। वि में फैले हुए नाना धर्मों और मतों के बीच में रहने के साथ साथ एक पवित्र धर्मभाव को अपनावें।

यद्यपि देश, काल और पात्र के अनुसार धर्म, मत तथा आचार विचार में भेद होना साधार बात है, पर यदि हम व्यापक और उदार दृष्टि से विश्व को देखा करें और ईश्वर में विश्वास रखें, तो भे रहते हुए भी हम मेल और मैत्री का भाव रख सकते हैं। इस प्रकार ऐक्य और सर्वभूतहितरति भावना बढ़ते बढ़ते एक दिन हमें उस परम अवस्था में पहुँचा देगी जिसे मोक्ष कहते हैं।

तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।

इस प्रकार विश्वधर्माङ्क का लक्ष्य है—

१. मोक्ष प्राप्त करना।
२. विशाल विश्व में एक भगवान् को देखना।
३. सभी धर्मों में एकता के तत्त्व का अनुभव करना।

हरिः ॐ तत्सत्

वार्षिक मूल्य
भारत में ४) रू०, विदेश में ६।।)

एक प्रति
भारत में ।=), विदेश में ।।

विषयसूची

चित्रसूची

सरस्वती के मूल्य में कमी

'सरस्वती' के वार्षिक मूल्य में २) की कमी हो गई है। इसलिए पुराने ग्राहकों से, जिनका चंदा दिसंबर सन् १९३६ से समाप्त होता है—और जनवरी सन् १९३७ से 'सरस्वती' के नये ग्राहक बननेवालों से भी निवेदन है कि वे सिर्फ ४।।) उसका वार्षिक मूल्य भेजें। जिनका वार्षिक मूल्य ६।।) आ चुका है उनका अधिक चंदे का हिसाब दुबारा वी० पी० भेजते समय ठीक कर दिया जायगा।

इंडियन प्रेस, लि०
प्रयाग। }

मैनेजर, 'सरस्वती'

गीताधर्म के नियम

१—गीताधर्म प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित होता है।

२—इसका वार्षिक मूल्य ४) मात्र है। इसका वर्ष मार्गशीर्ष से कार्तिक तक समझा जाता है। छः मास का मूल्य २।) रुपया है, परंतु छः मासवाले ग्राहकों को वार्षिक बड़ा विशेषाङ्क नहीं मिलेगा। प्रतिसंख्या का मूल्य ।=) है। नमूने के लिए ।=) आने का टिकट भेजना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ६॥) और प्रतिसंख्या का ।≡) है।

३—अपना नाम और पूरा पता साफ साफ लिखकर भेजना चाहिए, जिसमें पत्र के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४—जिन सज्जनों को किसी मास का गीताधर्म न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछना चाहिए। पता न लगने पर डाकघर के उत्तर के साथ जिस महीने की संख्या न मिली हो उसके अगले महीने की कृष्ण एकादशी तक पत्र लिखें। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उनपर विचार करना कठिन होगा। गीताधर्म यहाँ से दो बार अच्छी तरह जाँचकर रवाना किया जाता है। पत्रव्यवहार करते समय अपना **ग्राहकनंबर अवश्य लिखा जाय।**

५—पत्र के उत्तर के लिए सदा **जवाबी कार्ड अथवा टिकट** आना चाहिए, अन्यथा हम उत्तर देने में असमर्थ हैं।

६—यदि एक ही दो मास के लिए पता बदलवाना हो तो अपने डाकखाने से उसका प्रबन्ध करा लेना चाहिए। यदि सदा अथवा अधिक काल के लिए पता बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिए।

७—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें (२ प्रति से कम नहीं) और बदले के पत्र "संपादक 'गीताधर्म', साक्षीविनायक, काशी" के पते से भेजना चाहिए। मूल्य तथा प्रबन्ध संबन्धी पत्र "मैनेजर 'गीताधर्म', साक्षीविनायक, काशी" के पते से आने चाहिएँ।

८—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने का तथा उसे लौटाने या न लौटाने का पूरा अधिकार संपादक को होगा। लेखों के घटाने-बढ़ाने का अधिकार भी संपादक को है।

९—लेख, कविता एवं कहानियों का सरल भाषा में धर्म के अनुकूल तथा हाशिया छोड़कर पृष्ठ के एक ही ओर स्पष्ट लिखित होना आवश्यक है। अधूरे या धर्मविरुद्ध लेख नहीं छापे जायँगे। जिन लेखों में चित्र रहेंगे, वे तब तक न छापे जायँगे जब तक लेखक उनके मिलने का प्रबन्ध न कर देंगे।

गीताधर्म के विज्ञापन छपाई के रेट

कवर का तीसरा पृष्ठ ३०) प्रतिमास
" " " एक कालम (आधा पृष्ठ) १८) "
" " चौथा पृष्ठ ४०) "
" " " एक कालम (आधा पृष्ठ) २४) "
कवर के द्वितीय पृष्ठ के सामनेवाला पृष्ठ २५) "
" " " एक कालम (आधा पृष्ठ) १५) "
पाठ्यविषय की समाप्ति के सामनेवाला पृष्ठ २५) "
" " सामने एक कालम (आधा पृष्ठ) १५) "
विज्ञापन के फर्मे के बीच में कहीं भी एक पृष्ठ २०) "
" " एक कालम (आधा पृष्ठ) १२) "
लेखों के अन्त में या विषयसूची के नीचे
एक कालम (आधा पृष्ठ) १६) "
" " आधा कालम (चौथाई पृष्ठ) ९) "

१—एक साथ सालभर के लिए स्थायी विज्ञापनदाताओं को २५ प्रतिशत और छः म[...] के लिए स्थायी विज्ञापनदाताओं को १० प्र[...]शत कमीशन दिया जाता है।

२—हमारे यहाँ अश्लील, कुरुचिपूर्ण [...] अधार्मिक विज्ञापन नहीं छापे जा[...] इसका निर्णय समिति के द्वारा होता है।

३—विज्ञापन छपाई के रुपये पहले ही आ[...] चाहिएँ। विशेष नियमों की जानकारी के[...] इस पते पर पत्र लिखें—

मैनेजर, विज्ञापनविभाग,
गीताधर्म कार्यालय,
साक्षीविनायक, का[...]



कुछ ध्यान देने योग्य आवश्यक

सूचनाएँ

प्रार्थना

(१) गीतापति भगवान् कृष्ण के अनुग्रह से लोकसंग्रही स्वामी विद्यानन्दजी के द्वारा गीताधर्म पत्र की स्थापना हो गई है। महात्मा और महापुरुष आशीर्वाद दे रहे हैं, भक्त और प्रेमी ग्राहक और संरक्षक बन रहे हैं। अनेक वृद्ध, युवा और बालक मिलकर इस पत्र की सेवा कर रहे हैं। अपने अपने ढंग से सभी लोग इस ज्ञानयज्ञ में भाग ले रहे हैं।

हमारी प्रार्थना है, आप भी इस मासिक यज्ञ में सहायता कीजिए। 'गीताधर्म' मासिक यज्ञ है।

गीताधर्म का लक्ष्य है आत्मकल्याण और लोकसंग्रह। इससे गीताधर्म के ग्राहक बनकर, ग्राहक बनाकर और अन्य उचित उपायों से गीताधर्म का प्रचार करके इस लक्ष्य की पूर्ति करना आपका कर्तव्य है।

'गीताधर्म' भगवान् का पत्र है। इसकी सेवा भगवान् की सेवा है।

प्रत्येक गीताधर्मप्रेमी से यह अनुरोध है कि जैसे आप स्वयं ग्राहक बने हैं वैसे ही प्रत्येक महीने में औरों को भी ग्राहक बनावें।

(२) गीताव्यास लोकसंग्रही स्वामी विद्यानन्दजी का पता गीताधर्म कार्यालय से पूछिए।

(३) रुपया किसे देना ?—'गीताधर्म' की शाखाओं तथा प्रचारकों का नाम अन्त में दिया रहता है। ग्राहकों से प्रार्थना है कि वे इनको छोड़कर और किसी सज्जन को रुपये न दें। यदि उन्हें ग्राहक अथवा संरक्षक बनना हो तो रुपये मनीआर्डर से सीधे कार्यालय को भेज दें।

(४) हमारी समिति ने यह निश्चय किया है कि संस्कृत विद्या, भारतीय संस्कृति तथा साहित्य से संबन्ध रखनेवाले ग्रन्थ प्रकाशित किये जायँ और इस ग्रन्थमाला का नाम रहे 'विद्यानन्द ग्रन्थमाला'। ग्रन्थमाला के ग्रन्थों की सूची अन्यत्र पढ़िए।

(५) दो विशाल विशेषाङ्क—(१) विश्वधर्माङ्क और (२) गीताङ्क।

(६) प्रश्नोत्तर—जिज्ञासु लोग प्रश्न भेजते हैं; हम गुरुजनों से पूछकर उनके उत्तर भेजने का यत्न करते हैं। काशी के प्रसिद्ध गीता के आचार्य श्री गीतानन्दजी ने यह वचन दिया है कि कोई भी जिज्ञासु हमसे गीता पर प्रश्न करे, उसका उत्तर यथाशक्ति अवश्य देंगे। तत्त्वबोध और सत्संग का यह अपूर्व अवसर है।

(७) पत्रव्यवहार—अँगरेजी या हिंदी में ही रहना चाहिए और जो लोग उत्तर चाहें उन्हें टिकट अथवा जवाबी कार्ड भेजना चाहिए।

(८) गुड्स रेलवे स्टेशन बनारस कैंट पर भेजना चाहिए।

(९) पार्सल बनारस टाउन के पते से भेजना चाहिए।

(१०) उलहना—कृपालु ग्राहक पत्रिका न मिलने पर शीघ्र पोस्ट में अथवा अपने स्थान के शाखाकार्यालय में जाँचकर, हमें न मिलने का उलहना पत्र द्वारा दिया करें।

मैनेजर—

'गीताधर्म', काशी

(भारत के प्रसिद्ध शहरों में गीताधर्म कार्यालय की शाखाएँ)

गीताधर्म मिलने के पते

१ काशी, (क) गीताधर्म कार्यालय, साक्षीविनायक। (ख) गीताधर्म कार्यालय, भदैनी।
(ग) विद्यामन्दिर कार्यालय, पाण्डेघाट, (घ) श्री शिवनारायण बी. ए., अर्दली बाजार।

२ प्रयाग, पं० वृषकेतु उपाध्याय, जार्जटाउन ३४ (चड्ढा साहब का बँगला)

३ बंबई, श्री नगीनदास फूलचंद चिनाई, चिनाई बिल्डिंग, मसजिद बंदररोड।

४ कलकत्ता, श्री सेठ रामप्रसादजी मूँदरा ३२, क्रासस्ट्रीट मूँगापट्टी कलकत्ता M. P.

५ अहमदाबाद, सेठ बद्रीप्रसाद, कामनाथ महादेव, रायपुर दरवाजा बाहर।

६ बड़ोदा, मणिभाई जशभाई, कंसारा की बाड़ी, मांडवी रोड।

७ इंदौर, हीरालाल पन्नालाल, न्यू क्लाथ मारकेट।

८ इंदौर, श्री कमलाशंकर जे. पंड्या M. B. E. H. प्राइवेट मेडिकल प्रेक्टीशनर, पीपली बाजार।

९ ग्वालिअर, बाबू उमराव विहारी माथुर, अम्बानिवास नौमहला।

१० नागपुर, लाला नन्दलाल मैकूलाल (किराना मर्चेंट), सीतावर्डी।

११ जबलपुर, सेठ रामकुमार, लार्डगंज।

१२ जबलपुर, लाला रामचन्द्र, रईस व ठेकेदार, मुकादमगंज।

१३ गाडरवारा, आचारीजी का मन्दिर।

१४ नरकटियागंज (चंपारन), पण्डित राधावल्लभ मिश्र, अध्यापक जानकी संस्कृत विद्यालय।

१५ जमशेदपुर, एम. एल. तिवारी, तिवारी वेचर एंड कं० लिमिटेड।

१६ लाहौर, सेठ शालिग्राम नरसिंहदासजी, लाहौर कैंट।

१७ लखनऊ, श्री नन्दविहारीलाल ओरियंटल ग० सिक्यूरिटी लाइफ इंश्योरेंस कं० लि०,
ओरियंटल बिल्डिंग, हजरतगंज।

१८ डभोई, सेठ चुन्नीलाल गिरधरलाल जीनवाला।

१९ सनखेड़ा, बक्षी जेठालाल केशवलालजी, बजारमां (बड़ौदा)।

२० आनन्द, पटेल गोरधनभाई शामलदासजी मास्तर।

२१ **उदयपुर,** अक्षयकीर्ति शर्मा 'अखय', सुपरिंटेंडेंट मेवाड़ आफ कोलाजी विक्टोरिया हाल म्युजियम, (राजपूताना)।

२२ **उज्जैन,** पं० दुर्गाप्रसादजी तिवारी, लेफ्टीनेंट, माधवनगर।

२३ **सिहोरा,** श्री दयाप्रसाद वर्मा, लोकल बोर्ड सेक्रेटरी, सिहोरा रोड।

२४ **गाजीपुर,** श्री शिवमूर्ति पाण्डेयजी, भगवती औषधालय, घानापुर।

२५ **बालाघाट,** गोस्वामी श्री दयालगिरिजी, ज्वाइंट सेक्रेटरी–गीताप्रचारमण्डल, कर्णकुटी।

२६ **महेसाणा,** माधवलाल डी० शाह (स्टेट बडौदा)

२७ **कानपुर,** श्रीमान् बाबू गङ्गानारायण खरे, म्युनिसिपल हाईस्कूल, नवाबगंज।

२८ **दिल्ली,** श्रीमान् पं० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय बी० ए०, सेक्रेटरी आल इंडिया ब्राह्मणमहास[भा] तथा वर्णाश्रम स्वराज्य संघ, २३०३ चरखेवालान स्ट्रीट, कूचा बीबीगौहर।

२९ **सिन्ध,** मेसर्स बेरहामल नन्दरामजी, न्यू अंडरपीस गुड्समर्चेंट, शिकारपुर।

३० **हैदराबाद,** श्रीमान् गोपीकिशनजी C/o सेठ सीतारामजी रामगोपालजी माता नी नगारखाना, बेगमबाजार, हैदराबाद (दक्षिण)।

३१ **पादरा,** श्रीमान् जेठालाल मनसुखरामजी, कापड़ नी दुकान, बजारमां।

३२ **पेटलाद,** श्रीमान् काछिया मोतीभाई जेठालाल, एजेंट पेटलाद बुक्सेलर, ठे० बड़कुवां पासे।

३३ **रतलाम,** मनबोधनलाल संकठाप्रसाद पाण्डेय, असिस्टेंट ट्राफिक कन्ट्रोलर B. B. & C. I. ry.

३४ **आजमगढ़,** पं० श्रीधर उपाध्याय, कुर्मीटोला।

३५ **हरिद्वार,** मैनेजर, महारानी अहिल्याबाई बाड़ा।

३६ **जैपुर,** श्रीमान् लक्ष्मीशरण गङ्गाशरणजी माथुर, जड़ियो का रास्ता, जैपुर सिटी।

३७ **भुज (कच्छ),** श्रीमान् महेता यशश्चन्द्रभाई मोतीभाई, ज्वाइंट प्राइवेट सेक्रेटरी।

३८ **आफ्रीका,** Gordhan Bhai Soma Bhai Patel, The Indian School, Saba Saba P. O. MARAGUA, (Kenya Colony) British East Africa.

39 Fiji (Island)—S. B. Patel, Bar-at-Law, Lauutka.

40 Mombasa—Purashottam D. master, P. 274 British East Africa.

41 Java—Natwarlal Govardhandas Parikh Messers Chandulal & Co., 4, Gang Gipo, Survaya.

42 Japan—Messers R. C. Patel & Co., P. N. 339 Kove.

४३ बलिया, पं० श्यामसुन्दरजी उपाध्याय B. A., L-L. B., सेक्रेटरी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ।

४४ लहेरियासराय, श्री विश्वनाथनारायण सिंह, B. A. L-L. B. (दरभंगा) ।

४५ बाँकीपूर, वैद्यरत्न पं० व्रजविहारी चतुर्वेदी, रत्नाकर औषधालय, भिखना पहाड़ी, पटना ।

४६ महादेवपारा, वसिष्ठनारायण त्रिपाठी, मु० महादेवपारा, पो० मेहनगर, आजमगढ़ ।

४७ प्रतापगढ़, पं० रविदत्त पाण्डेय B. A, L. T., असिस्टेंट मास्टर, अजीत सोमवंशी हाईस्कूल, प्रतापगढ़ सिटी (अवध) ।

४८ अमृतसर, गोस्वामी जीवनदास, महामन्त्री—पंजाब प्रान्तीय वर्णाश्रम स्वराज्य संघ, दुरगियाना, अमृतसर (पंजाब) ।

४९ करांची, रतीलाल नरवेजी, कोटक, प्रागजी दामजी बिल्डिंग, प्रिंसेस स्ट्रीट, नन्दकुवादा ।

५० रांची, गुलाबनारायण शर्मा, तिवारी महल्ला ।

५१ गोरखपुर, श्री हरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी बी. ए., एल-एल. बी. बेतिया हाता ।

५२ बगहा, पं० रामसागर मिश्र हेड पण्डित D. M. एकडमी, पो० बगहा, चंपारन ।

५३ बाराशिवनी, सेठ चौथमलजी, बालाघाट, सी. पी. ।

५४ कलकत्ता, जयदेव गङ्गाराम, १४।१ रूपचंदराय स्ट्रीट ।

५५ जौनपुर, श्रीराम उपाध्याय B. A., L-L. B. एडवोकेट, महल्ला—जोगियापुर ।

५६ छिंदवाड़ा, प्रधानाध्यापक हरिप्रसाद द्विवेदी आ० शास्त्री श्री सनातनधर्म संस्कृतविद्यालय, सिवनी, (श्री राममन्दिर के पास) (सी० पी०) ।

५७ मुहम्मदाबाद, पं० कुबेरनाथ पाण्डेय, हेडमास्टर अपर प्राइमरी स्कूल, जि. गाजीपुर ।

५८ गोधरा, घी आशाभाई खुशालभाई, श्रीकृष्ण आयल मिल्स कं० (गुजरात) ।

५९ अकोला, सेठ जगन्नाथ, सीताराम विसनदयाल की फर्म, झोपड़ाबाजार में ।

उद्योगमन्दिर जबलपुर
की

तीन पुस्तकें

१. त्रिधारा — श्री माखनलाल चतुर्वेदी, 'एक भारतीय आत्मा' संपादक कर्मवीर, खंडवा, श्री सुभद्राकु
चौहान और श्री केशवप्रसाद पाठक की सर्वोत्तम कविताओं का संग्रह, मूल्य १)

२. उन्मादिनी — श्री सुभद्राकुमारी चौहान की ९ सर्वश्रेष्ठ कहानियों का संग्रह, मूल्य १।≈)

३. सभा का खेल — श्री सुभद्राकुमारी चौहान रचित बालोपयोगी सरल कविताओं का संग्रह, मूल्य ।)

अवश्य पढ़िए। स्टाक खतम हो जाने पर दूसरे संस्करण के लिए ठहरना पड़ेगा।

पुस्तक मँगाने का पता

गीताधर्म बुक डिपो,

बनारस।

१—विद्यानन्द ग्रन्थमाला का स्थायी ग्राहक बनिए।

२—पूजा और दर्शन के लिए सुन्दर कलापूर्ण चित्र हमसे माँगिए।

३—गीताधर्म का ग्राहक बनकर अपना कल्याण कीजिए।

४—यदि आप उत्तमोत्तम पुस्तकों के पढ़ने के प्रेमी हैं—तो गीताधर्म बुकडिपो से माँगिए।

पता—मैनेजर गीताधर्म,

साक्षीविनायक,

बनारस।



भजनाङ्क

गीता धर्म

संस्थापक—
गीताव्यास लोकसंग्रही
स्वामी विद्यानन्द

वर्ष २ अङ्क ५

संपादक—
पद्मनारायण आचार्य
एम० ए०

मई, १९३७

काशी

संपादकीय सूचना

१. धर्म का जीता जागता रूप है भजन। भजन ही धर्म का प्राण है। इसी से विश्वधर्माङ्क को पूर्ण करने के लिए इस भजनाङ्क की आवश्यकता थी।

हरि अनन्त, हरि कथा अनन्ता। विचारकर देखें तो भजनाङ्क बहुत बड़ा हो सकता था, पर यहाँ तो जितना समय और स्थान मिलता है उतनी ही सेवा हम कर पाते हैं।

२. पहला चित्र इस अङ्क में है राधा का। उसका सलोना और रसभरा वर्णन किया है भक्तप्रवर कवि मैथिलीशरणजी ने। जिन्हें इस काव्यमय वर्णन और व्याख्या के सिवाय और भी अधिक स्पष्ट जानना हो वे कृष्णाङ्क में निकले 'नवनीत' और श्री अरविन्द की व्याख्या पढ़ने का कष्ट करें।

राधा हैं भगवद्भजन का साकार रूप। भगवदाराधन का ऐसा शृङ्गारपूर्ण चित्र देखकर कौन तल्लीन न हो उठेगा! भारत के कवि और योगी सभी एक स्वर से राधा की उपासना करते हैं—इसपर विचार करिए और चित्र का दर्शन करिए।

३. पाँच भजन देने का हमारा विचार था—१ गणेश, २ सूर्य, ३ शिव, ४ शक्ति और ५ विष्णु की स्तुतियाँ। ये ही पाँच हिंदुओं के मुख्य देव हैं। गणेश तो हमारी हर एक पूजा में आते

हैं, सूर्य की संध्या में नित्य उपासना होती है, शिव के लिए शिवमहिम्न, दुर्गा के लिए दुर्गासप्तशती का चतुर्थ अध्याय (शक्रादि स्तुति) और विष्णु के लिए गीता एकादश अध्याय का पाठ करना चाहिए। यही हमने संतो महात्माओं से सीखा है। यदि कभी अवसर मिला, तो हम अपने विचार और अनुभव भी लिखेंगे। तब तक आप स्वयं जितना बने करके देखिए। भजन तो भजकर देखने की चीज है।

४. **सर्वश्रेष्ठ भजन** कौन सा है ? बड़ा छोटा सा, बड़ा मीठा उत्तर है--

राम

× × × × ×

राम राम रमु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा।
राम नाम नव नेह मेह को मन ! हठि होहि पपीहा॥

× × × × ×

'राम जपु'

राम जपु, राम जपु, राम जपु, बावरे !
घोर भव नीर निधि नाम निज नाव रे॥ १॥
एकै साधन सब रिद्धि सिद्धि साधि रे।
ग्रसे कलि रोग जोग संजम समाधि रे॥ २॥
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो, बाम रे।
राम नाम ही सों अन्त सबही को काम रे॥ ३॥
जग नभवाटिका रही है फल फूलि रे।
धुआँ कैं सौ धौरहर देखि तू न भूलि रे॥ ४॥
राम नाम छाँडि जो भरोसो करै और रे।
तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे॥ ५॥

(ऐसी और भी दुर्लभ विनय और स्तुतियों का भजन करना हो, तो तुलसी की विनयपत्रिका पास में रखिए।)



राधा

१

शरण एक तेरे मैं आई,
धरे रहे सब धर्म हरे!
बजा तनिक तू अपनी मुरली,
नाचें मेरे मर्म हरे!
नहीं चाहती मैं विनिमय में,
उन वचनों का वर्म हरे!
तुझको, एक तुझी को अर्पित,
राधा के सब कर्म हरे!

× × ×

२

झुक, वह वाम कपोल चूम ले,
यह दक्षिण अवतंस हरे!
मेरा लोक आज इस लय में,
हो जावे विध्वंस हरे!
रहा सहारा इस अंधी का,
बस, यह उन्नत अंस हरे!
मग्न अथाह प्रेमसागर में,
मेरा मानसहंस हरे!

—(कविवर मैथिलीशरण)

सर्वधर्मपरिषद् की प्रार्थना*

संगच्छध्वं संवदध्वं ।
सं वो मनांसि जानताम् ॥
समानो मन्त्रः समितिः समानी ।
समानं मनः सहचित्तमेषाम् ॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥

—ऋग्वेद

× × ×

१ एक साथ चलो, एक साथ बोलो, एक साथ तुम्हारे मन सोचें समझें।
(अर्थात् कायेन, वाचा और मनसा सभी प्रकार से आप लोग एक साथ रहो ।)

२ मन्त्र एक हो, समिति एक हो, इनका मन भी चित्त के साथ ही एक हो ।
(अर्थात् जो कुछ करो सोच समझकर एक होकर एक मन से करो ।)

३ जिस प्रकार आप लोगों का सुन्दर साथ हो गया है (इस संसार और समाज में एक साथ जन्म हुआ है) उसी प्रकार आप लोगों का संकल्प एक हो, हृदय एक हो और मन एक हो। इसी एकत्व का संदेश भारत के सभी ऋषियों, मुनियों और आचार्यों ने दिया है।

Walk in unison, speak in unison. let your minds be of one accord. Let your words be common, common the place of assembly, common the mind with thoughts united. May same be your cry, your resolve the same, may your hearts be united bearing happily with one another.

---

* यह वैदिक प्रार्थना मनन करने लायक है । संसार की सबसे पुरानी और सबसे अच्छी प्रार्थना है । ऋग्वेद के ऋषियों की सबसे अन्तिम कामना भी यही है । अभी कल ता० १ मार्च, १९३७ को होनेवाली सर्वधर्मपरिषद् में भी यही प्रार्थना गाई गई थी ।

हमें इसमें एक बातपर विशेष ध्यान देना चाहिए । वह है मन का महत्त्व । भजन, पूजन, व्रत, विधान आदि सबमें मन ही मुख्य है । जहाँ मन ठिकाने आया कि सब ठीक हुआ ।

यही मनोयोग और मनःसंयम का उपदेश ऋग्वेद का है, यही कृष्ण की गीता का उपदेश है, और यही है उपदेश बुद्ध के धम्मपद का । —सं०

सनातनधर्मी हिंदुओं की प्रार्थना*

देववन्दना

यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतस्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥

जिसकी ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र, और मरुत् दिव्य स्तोत्रों से स्तुति करते हैं, जिसका साम गानेवाले अङ्ग, पद, क्रम सहित वेदों तथा उपनिषदों के द्वारा गान करते हैं, जिसका योगी लोग ध्यानावस्थित और तन्मय मन से दर्शन करते हैं और जिसका देव और असुर (कोई भी) अन्त (१—असली रहस्य, २—पार) नहीं पाते, उस देव को नमस्कार है ।

(एक बार मालवीयजी ने कथा में कहा था कि इससे बढ़कर दूसरी कोई देवस्तुति नहीं है ।)

हरिवन्दना

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धाः बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः ।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं नो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥

जिसकी शैव लोग शिव मानकर उपासना करते हैं, जिसे वेदान्ती ब्रह्म मानते हैं, बौद्ध जिसे बुद्ध मानते हैं, जिसे प्रमाणपटु नैयायिक कर्ता मानते हैं, जैन लोग जिसे अर्हत् मानते हैं, मीमांसक जिसे कर्म मानते हैं, वही तीनों लोकों के मालिक हरि (१ घटघट व्यापी, २ विष्णु, ३ सूर्य, ४ जगदीश्वर) हमारे लिए मन चाहे फल को बनावें (और देवें) ।

मुनिवन्दना

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥

बालरूप शुकदेव को नमस्कार ! उन मुनि को नमस्कार, जो सभी प्राणियों के हृदय हैं, जिनके पास कोई पहुँच नहीं सका (अर्थात् जिन्होंने किसी को पास फटकने भी नहीं दिया, संसार जिनके पास पहुँच भी नहीं सका), जिनका कोई भी कृत्य बाकी नहीं बचा था और जिनके घर से (विरक्त होकर) भागने पर (स्वयं) कृष्णद्वैपायन व्यास भी विरह से कातर होकर चिल्ला उठे थे—पुत्र ! पुत्र !

---

* इसे हम सभी हिंदुओं की प्रार्थना कह सकते हैं । क्योंकि यह प्रार्थना कोई भी हिंदू (किसी भी संप्रदाय और मत का व्यक्ति) कर सकता है और हिंदू-विश्वविद्यालय जैसे स्थानों में ऐसी प्रार्थना होती भी है । ऐसे तो हिंदुओं के कई अन्य संप्रदायों की—जैसे बौद्ध, जैन, सिक्ख, वैष्णव आदि की—अलग अलग प्रार्थनाएँ भी हमने आगे दी हैं । —सं०

तन्मयता के कारण जिन्हें वृक्ष भी पुकारकर कह उठे थे—पुत्र ! पुत्र ! उन्हीं सर्वभूत हृदय को मेरा नमन !

विश्ववन्दना

(अर्थात् विश्वरूप की वन्दना)

विष्णुसहस्रनाम

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये
सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते
सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥
नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने ।
नमस्ते केशवानन्त वासुदेव नमोऽस्तुते ॥
वासनात् वासुदेवस्य वासितं भुवनत्रय
सर्वभूतनिवासोऽसि वासुदेव नमोऽस्तुते
नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः
आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागर
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति

विष्णुसहस्रनाम की प्रशंसा सभी बड़े लोगों की है, आजकल के युग में मालवीयजी और गां जी ने भी उसका महत्त्व माना है।

ये पाँच श्लोक उसी विष्णुसहस्रनाम के नवनी हैं। जिस प्रकार पुरुषसूक्त में ऋग्वेद का निचो आ जाता है उसी प्रकार इन पाँच श्लोकों में विष्णु सहस्रनाम का सार तत्त्व आ गया है। इनके पाठ और मनन से भगवान् के विश्वरूप का दर्शन होता है और विश्व की सभी चीजें सुलभ हो जाती हैं।

गीत

(ले०—श्री सोहनलाल द्विवेदी बी० ए०, एल-एल० बी०)

[बागेश्वरी ३ ताल]

रसना रामनाम रट री !
रामनाम अमृत से पूरण कर अन्तस् घट री !
भक्तिभाव का पहिर मनोहर पीताम्बर पट री,
जीवन तरी लगे लहराती भवसागर तट री !

रसना० ....

जैनियों की प्रार्थना

(१)

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥
चत्तारि मंगलं, अरहंत मंगलं, सिद्धमंगलं,
साहुमंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा, अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलि पणतो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारिसरणं पवज्जामि, अरहंत-सरणं पवज्जामि, सिद्धसरणं पवज्जामि, केवलि-पण्णत्तो धम्मो शरणं पवज्जामि।

ॐ नमोऽर्हते ॥

भावार्थ—अरहंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो, लोक के सर्वसाधुओं को नमस्कार हो।

इस लोक में चार मङ्गलस्वरूप हैं—अरहंत, सिद्ध, साधु तथा केवल भगवान् के द्वारा कहा गया धर्म।

चार ही लोक में उत्तम हैं—अरहंत, सिद्ध, साधु तथा केवलि भगवान् द्वारा प्रणीत धर्म।

मैं इन चारों की शरण को प्राप्त होता हूँ। अरहंत की शरण को प्राप्त होता हूँ। सिद्ध की शरण को प्राप्त होता हूँ। साधु की शरण को प्राप्त होता हूँ। केवलि भगवान् के द्वारा कहे गये धर्म की शरण को प्राप्त होता हूँ।

(२)

अरिहंत नमो भगवंत नमों परमेश्वर जिनराज नमो।
प्रथम जिनेश्वर प्रेमे पेखत सिद्धं सघला काज नमो ॥
प्रभु पारंगत परम महोदय अविनाशी अकलंक नमो।
अजरअमर अद्भुत अतिशय निधि प्रवचन जलधिमयंक नमो ॥
सिद्ध बुद्ध तूँ जगजन सज्जन नयनानन्दन देव नमो।
सकल सुरासुर नरवर नायक सारे अहो निश सेव नमो ॥
तू तीर्थंकर सुखकर साहिब तू निःकारण बन्धु नमो।
शरणागत भविने हितवत्सल तुँ ही कृपारससिन्धु नमो ॥
केवल ज्ञानादर्शे दर्शित लोकालोक स्वभाव नमो।
नाशित सकल कलङ्क कलुषगण दुरित उपद्रव भाव नमो ॥
जगचिन्तामणि जगगुरु जगहित कारक जगजन नाथ नमो
घोर अपार भवोदधितारण तूँ शिवपुरणो साथ नमो ॥
अशरण शरण विराग निरञ्जन निरुपाधिक जगदीश नमो।
बोध दीनुं अनुपम दानेसर ज्ञानविमल सुरीश नमो ॥

सबसे प्राचीन भजन का ग्रन्थ

ऋग्वेद

बौद्धों की प्रार्थना

नमो तस्स भगवतो अरहतो संमासंबुद्धस्स ।
नमो तस्स भगवतो अरहतो संमासंबुद्धस्स ।
नमो तस्स भगवतो अरहतो संमासंबुद्धस्स ।
बुद्धं सरणं गच्छामि । धम्मं सरणं गच्छामि ।
संघं सरणं गच्छामि ।

दुतियंपि बुद्धं सरणं गच्छामि ।
दुतियंपि धम्मं सरणं गच्छामि ।
दुतियंपि संघं सरणं गच्छामि ।
ततीयंपि बुद्धं सरणं गच्छामि ।
ततीयंपि धम्मं सरणं गच्छामि ।
ततीयंपि संघं सरणं गच्छामि ।

पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदम् समादियामि ।
अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदम् समादियामि ।
कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदम् समादियामि ।
मुसावादा वेरमणी सिक्खापदम् समादियामि ।
सुरा मेरय मज्जा पमा दट्ठाना
वेरमणी सिक्खापदम् समादियामि ।

'पूर्ण प्रज्ञ, अर्हन्, भगवान् (बु
को नमस्कार हो । पूर्ण प्रज्ञ, अर्
भगवान् (बुद्ध) को नमस्कार हो।
प्रज्ञ, अर्हन्, भगवान् (बुद्ध) को
स्कार हो । मैं बुद्ध की शरण में ज
हूँ, धर्म के शरणापन्न होता हूँ, संघ
शरण में जाता हूँ । द्वितीय बार
बुद्ध के शरणापन्न होता हूँ, धर्म
शरण में जाता हूँ, संघ की शरण
जाता हूँ। तीसरी बार मैं बुद्ध के शर
पन्न होता हूँ, धर्म की शरण में ज
हूँ, संघ की शरण में जाता हूँ।' 'मैं
की हिंसा न करने की प्रतिज्ञा करता
मैं उस वस्तु के न लेने की प्रतिज्ञा कर
हूँ, जो मुझे न दी गई हो । कामना
में मिथ्याचरण न करने की मैं प्रतिज्ञ
करता हूँ। असत्य वचन से बचने की
प्रतिज्ञा करता हूँ। मैं सुरा मद्यादि माद
वस्तुओं से बचने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

सिक्खों की प्रार्थना

एक ओं सतनाम कर्तापुरुष निर्भउ निर्वैर
अकाल मूरत अजूनी सैभं गुरुप्रसाद जप ।
आदि सच जुगादि सच है भी सच
नानक होसी भी सच ॥ वाह गुरू ॥

ईसाइयों की प्रार्थना

Almighty God! unto whom all hearts be open, all desires known, and from whom no secrets are hid; cleanse the thoughts of our hearts by the inspiration of Thy Holy Spirit, that we may perfectly love Thee, and worthily magnify Thy Holy name Through Christ, our Lord. Amen.

O Lord Christ! we Thy faithful soldiers dedicate this new-born day to Thee, praying that it may shine in Thy service as a pure pearl in the chaplet of our life, O Thou Great King of Love, to whom be praise and adoration for evermore. Amen.

Teach us, O Lord! to see Thy life in all men and in all the peoples of Thine earth, and guide our Nation through its leaders to preserve Thy peace, that the menace of war be far from our days. Through Christ our Lord. Amen.

To the most Holy and Adorable Trinity, Father, Son and Holy Spirit, three Persons in one God; to Christ our Lord, the only Wise Counseller, the Prince of Peace; to the Seven Mighty Spirits before the Throne; and to the glorious Assembly of just men made perfect, the Watchers, the Saints, the Holy Ones, be praise unceasing from every living creature; and honour, might and glory, henceforth and for evermore. Amen.

सर्वशक्तिमान् प्रभु जो सबके हृदय को देखते हैं, सबकी अभिलाषाओं को जानते हैं और जिनसे कोई भी भेद छिपा नहीं है, अपने दिव्य आत्मा की प्रेरणा से हमारे हृदय के विचारों को शुद्ध करें, जिससे हम प्रभु से पूर्णतः प्रेम करें तथा प्रभु के पवित्र नाम की महिमा यथार्थतः वढ़ावें। अपने प्रभु यीशू-मसीह के द्वारा। आमीन्।

हे प्रभु यीशू! हम तुम्हारे भक्त सैनिक इस नवजात दिवस को तुम्हें समर्पित करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि यह हमारे जीवनरूपी माला में शुद्ध मुक्ता के समान तुम्हारी सेवा में प्रकाशित होवे। हे प्रेम के अधिराजा, तुम्हारी स्तुति और पूजा सदा सर्वदा होती रहे। आमीन्।

हे प्रभो! हमें शिक्षा दो कि सब मनुष्यों में तथा तुम्हारी पृथिवी के समस्त देशों में तुम्हारे जीवन को देखें, तथा हमारे राष्ट्र को इसके नेताओं के द्वारा अपनी शान्ति को कायम रखने के लिए संचालित करो जिससे युद्ध की भीषणता हमसे दूर रहे। हमारे प्रभु यीशूमसीह के द्वारा। आमीन्।

पवित्रतम और पूज्य त्रिमूर्ति (Trinity) का—पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा का जो एक ही ईश्वर के तीन रूप हैं, शान्ति के राजकुमार, ज्ञानी, उपदेष्टा प्रभु यीशू का, प्रभु के सिंहासन के समीप सात शक्तिमान् आत्माओं का, रक्षकों, संतों और महात्माओं का सदा सर्वदा प्रत्येक प्राणी के द्वारा स्तवन हो तथा अद्यावधि और सदा सर्वदा उसकी शक्ति और ऐश्वर्य की अभ्यर्थना हो। आमीन्।

The peace of God, which passeth all understanding, keep your hearts and minds in the knowledge and love of God, and of this Son Christ our Lord and the blessing of God, Almighty, the Father the Son, and the Holy Ghost, be amongst you, and remain with you always. Amen.

ईश्वरीय शान्ति जो अचिन्त्य है, तुम्हारे और मन को ईश्वर तथा उसके पुत्र हमारे प्रभु के प्रेम और ज्ञान में रत रखें, तथा सर्वशक्ति परम पिता ईश्वरपुत्र (यीशू) तथा दिव्य आ का आशीर्वाद (प्रसाद) तुमपर हो तथा सदा तु साथ रहे। आमीन्।

मुसल्मानों की प्रार्थना

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम। अलहम्दोलिल्लाहे रब्बिल आल्मीन्। अर्रहमानिर्रहीम। मालिके यौमिद्दीन्। इय्याका ना' बदो व इय्याका नस्त' ईन्। इह्देनस् सिरातलमुस्तक़ीम। सिरातल्लज़ीना अन' अम्त' अलैहिम गैरिल मग़दूबे' अलैहिम वलज्ज़ालीन्। आमीन्।

दयालु, करुणामय प्रभु के नाम पर अखिल के प्रभु, भगवान् की अभ्यर्थना हो। वह करुणामय, धर्मदिवस का अधिपति है। वही मय है। वही शक्तिमान् है। उस सत्पथ में तू मार्गप्रदर्शक बन, जो पथ तुझमें रमण करने का है; उनका नहीं है जो तुझे नहीं मानते अधर्माचरण करते हैं।

पारसियों की प्रार्थना

यानीम मनो यानीम वचो यानीम षयओथनेम अषओनो जरथुश्त्र हे। फ्रा अमेषा स्पेंता गाथाओ गेयुरवाइन। नेमो वे गाथाओ अषओनीश।

अहया यासा नेमङ्हा उस्तान—ज़स्तो रफेध्रह्या मइनयेंयुश मज़्दाओ पउरवीम स्पेंतह्या अषा विस्पेंग षयओथना।

वङ्हेउश ख्रतूम मनङ्हो या षनेवीशा गेयूश्चा उर्वानेम। या षयओथनाम हाइतिम यज़्मइदे।

पुण्यात्मा जरथुश्त्र के कर्म धन्य थे, वचन थे और विचार धन्य थे। पवित्र (स्वर्गीय) आत्मा ने धर्मग्रन्थों का प्रकाश किया। हे दिव्य धर्म तुम्हारा हम स्तवन करते हैं।

हे मज्द! तुम्हारी अर्चना करते हुए हम तुम्हारी कृपाप्राप्ति की अभिलाषा करते हैं और तुम्हारी हाथ बढ़ाये तुम्हारी दानशील आत्मा के प्रसाद लिए प्रार्थना करते हैं। हम अत्यन्त नम्रता विनती करते हैं कि सबके प्रति हमारे कर्म सत्यभा से संपादित हों और तुम्हारी उदारचित्तता के सम के लिए हम तुमसे करबद्ध प्रार्थना करते हैं जि हम गौ की आत्मा के प्रति श्रद्धा दिखला सकें।

हम पवित्र अहुनावदगाथा को श्रद्धापूर्वक स्म करते हैं जो परम पावन है। अहुनावदगाथा प्रार्थना का हम श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं।

अहुनवइतिम गाथाम अषोनिम अषहे रतुम यज़्मइदे ।
अहुनवइतियाओ गाथियाओ हंदाता यज़्मइदे ।
गहे ह्वाताम आअत्येस्ने पइतिवेंगहो मज़्दाओ ।
अहुरो वइथा अषत हचा याओंगहाम चा ।
तास चा ताओसचा यज़्मइदे ।
नमस्चा अयार्‌मेतीश जाय चा ॥
नमस्चा अयार्‌मेतीश जाय चा ।
नमस्चा अयार्‌मेतीश जाय चा ॥
अशेम वोहु वहेश्तम् अस्ति, उस्ता अस्ति,
उस्ता अहमाइ ह्यदषाइ वहेश्ताइ अषेम ।

यषओथनेम नामक हा की हम उपासना करते हैं। पवित्रता के अधिष्ठातृ देवता दिव्य अहुनावद-गाथा की हम उपासना करते हैं। अहुनावदगाथा की प्रार्थना की हम अर्चना करते हैं। हम उन नर नारियों का स्तवन करते हैं जिन्हें अहुर्मज्द (ईश्वर) ने पवित्रता के द्वारा उपासना में श्रेष्ठ माना है। पवित्रता सर्वोत्तम वस्तु है। आनन्द उसको होता है जो पवित्रता के उद्देश्य से ही पवित्र रहता है।

पूज्य मालवीयजी का भजनप्रेम

एक वार मालवीयजी कथा कहने जा रहे थे। विश्वविद्यालय के गायनाचार्य पं० शिवप्रसादजी भजन गा रहे थे—'केशव कहि न जाय का कहिए।' मालवीयजी स्वयं उस भजन को गाने लगे। झूम झूमकर उन्होंने गाया और हम सबको झुमा दिया। केवल गाया ही नहीं, उन्होंने उसकी व्याख्या भी की। पूरे भजन की व्याख्या में कथा का समय भी पूरा हो गया। फिर भजन होने लगा और प्रसाद लेकर हम लोग चल पड़े।

तबसे हम तो कई वार इसपर कथा कह चुके। इसका भजन और मनन तो प्रायः हम नित्य ही करते हैं। विश्वविद्यालय की चराचर सृष्टि देखकर कौन न कह उठेगा—

देखत तव रचना विचित्र अति,
समुझि मनहिं मन रहिए।
केशव कहि न जाय का कहिए†।

---

† गीताधर्म बुकडिपो से प्राप्य, नवप्रकाशित पुस्तक 'कुलपति मालवीय' से। —सं०

श्री वैष्णवों की प्रार्थना

(१)

नमो नमो वाङ्मनसातिभूमये
नमो नमो वाङ्मनसैकभूमये।
नमो नमोऽनन्तमहाविभूतये
नमो नमोऽनन्तदयैकसिन्धवे॥

(२)

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी
न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्यं
त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥

(३)

न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके
सहस्रशो यन्न मया व्यधायि।
सोऽहं विपाकावसरे मुकुन्द
क्रन्दामि संप्रत्यगतिस्तवाग्रे॥

(४)

निमज्जतोऽनन्तभवार्णवान्तः
चिराय मे कूलमिवासि लब्धः।
त्वयापि लब्धं भगवन्निदानीम्
अनुत्तमं पात्रमिदं दयायाः॥

(५)

अभूतपूर्वं मम भावि किं वा
सर्वं सहे मे सहजं हि दुःखम्।
किं तु त्वदग्रे शरणागतानाम्
पराभवो नाथ न तेऽनुरूपः॥

(६)

निरासकस्यापि न तावदुत्सहे
महेश हातुं तव पादपङ्कजम्।
रुषा निरस्तोऽपि शिशुः स्तनंधयो
न जातु मातुश्चरणौ जिहासति॥

(७)

धिगशुचिमविनीतं निर्दयं मामलज्जं
परमपुरुष योऽहं योगिवर्याग्रगण्यैः।
विधिशिवसनकाद्यैर्ध्यातुमत्यन्तदूरं
तव परिजनभावं कामये कामवृत्तः॥

(८)

अपराधसहस्रभाजनं
पतितं भीमभवार्णवोदरे।
अगतिं शरणागतं हरे
कृपया केवलमात्मसात्कुरु॥

(९)

न मृषा परमार्थमेव मे
शृणु विज्ञापनमेकमग्रतः।
यदि मे न दयिष्यते ततो
दयनीयस्तव नाथ दुर्लभः॥

(१०)

तदहं त्वदृते न नाथवान्
मदृते त्वं दयनीयवान्न च।
विधिनिर्मितमेतदन्वयं
भगवन् पालय मास्म जीहपः॥

(११)

वपुरादिषु योऽपि कोऽपि वा
गुणतोऽसानि यथा तथाविधः।
तदहं तव पादपद्मयो-
रयमद्यैव मया समर्पितः॥

(१२)

मम नाथ यदस्ति योऽस्म्यहं
सकलं तद्धि तवैव माधव।
नियतस्वमिति प्रबुद्धधीः
अथवा किं नु समर्पयामि ते॥

(१३)

अवबोधितवानिमां यथा
मयि नित्यां भवदीयतां स्वयम्।
कृपयैवमनन्यभोग्यताम्
भगवन् भक्तिमपि प्रयच्छ मे॥

(१४)

तव दास्यसुखैकसंगिनाम्
भवनेष्वस्त्वपि कीटजन्म मे।
इतरावसथेषु मास्म भू-
दपि मे जन्म चतुर्मुखात्मना॥

मन वाणी के अगोचर, किंतु भक्तों की मन वाणी के एकमात्र आधार आप परमेश्वर को मेरा बारंबार प्रणाम है। देश, काल और वस्तुकृत परिच्छेद से रहित, महान् ऐश्वर्यवाले तथा दया के एकमात्र असीम सागर आप भगवान् को बार बार नमस्कार है ॥ १॥

मैं न तो धर्मिष्ठ हूँ, न आत्मज्ञानी; और न आप के चरणकमलों में भक्ति ही रखनेवाला हूँ। मैं अकिंचन हूँ, आपके सिवा कोई दूसरा मेरा सहारा नहीं है; इसलिए आप के ही शरण लेने योग्य चरणों की शरण में आ पड़ा हूँ॥२॥

हे मुकुन्द! संसार में ऐसा कोई निन्दित कर्म नहीं है जिसे हजारों बार मैंने नहीं किया हो, पर वही मैं आज पापों का कटु परिणाम भोगने के समय आपके सामने असहाय होकर रोता चिल्लाता हूँ ॥ ३ ॥

हे भगवन्! इस अपार भवसागर के भीतर डूबते हुए मुझे आप बहुत दिनों के बाद तट के रूप में प्राप्त हुए हैं। इधर आपको भी इस समय यह दया का सबसे बड़ा पात्र प्राप्त हो गया है। (अब अवश्य ही दया करके आप इस भवसागर से मेरा उद्धार कीजिए) ॥ ४॥

हे नाथ! मुझपर जो कुछ बीत चुका है उससे विलक्षण कौन सा नूतन दुःख अब मुझे मिलेगा! (मेरे लिए कोई भी कष्ट नया नहीं है, सब कुछ भोग चुका हूँ। जो होगा—) सब सहलूँगा, दुःख तो मेरे साथ ही उत्पन्न हुआ है, परंतु आपकी शरण में आये हुए का आपके सामने ही अपमान हो, यह आपको शोभा नहीं देता। (अतः मेरे उद्धार में देर न लगाइए) ॥५॥

हे महेश्वर! यदि आप मुझे अपने पास से दूर हटावें, तो भी मैं आपके चरणकमलों को छोड़ने का कभी साहस नहीं कर सकता; क्योंकि माता यदि कुपित होकर उसे अपनी गोद से अलग कर दे, तो भी दूध पीता हुआ बच्चा माँ के चरणों को कभी नहीं छोड़ना चाहता ॥६॥

हे परम पुरुष! मुझ अपवित्र, उद्दण्ड, निठुर और निर्लज्ज को धिक्कार है जो स्वेच्छाचारी होकर भी आपका पार्षद होने की इच्छा करता है, जिस पार्षदभाव को बड़े बड़े योगीश्वरों के अग्रगण्य तथा ब्रह्मा, शिव और सनकादि भी, पाना तो दूर रहा, मन में सोच भी नहीं सकते ॥ ७ ॥

हे हरे! हजारों अपराधों से भरा हुआ मैं भयंकर भवसागर के उदर में गोते लगा रहा हूँ। अब आप कृपा करके अपनी शरण में आये हुए मुझ असहाय को केवल अपना लीजिए ॥ ८॥

हे नाथ! मैं आपके सामने झूठ नहीं कहता, सत्य ही निवेदन करता हूँ; मेरा यह एक चैलेंज सुन लीजिए। यदि आप मुझपर दया नहीं करेंगे, तो मुझसे बढ़कर दया का पात्र आपको मिलना कठिन है ॥ ९ ॥

इसलिए हे भगवन्! आपके सिवा मेरा कोई स्वामी नहीं और मेरे सिवा आपके लिए कोई दया का पात्र नहीं है। विधाता के जोड़े हुए परस्पर के इस संबन्ध को आप निभाइए, तोड़ न दीजिए ॥ १० ॥

हे प्रभो! शरीर, इन्द्रिय, मन प्राण और बुद्धि आदि में मैं जो कोई भी होऊँ, तथा गुण के अनुसार (भला बुरा) जैसा भी होऊँ, मैं तो आज ही अपने को आपके चरणकमलों में समर्पित कर चुका ॥ ११ ॥

हे नाथ! मेरी बुद्धि में तो यही आता है कि स्वयं मैं और जो कुछ भी मेरा है वह सब आपका ही नियत धन है; ऐसी दशा में, हे माधव! मैं आपको क्या समर्पण करूँ ॥ १२ ॥

हे भगवन्! जिस प्रकार आपने स्वयं ही मुझमें सदा रहनेवाली इस भवदीयता (मैं आपका हूँ—इस भाव—) को मुझे बता दिया, उसी तरह कृपा करके अपनी अनन्य भक्ति भी मुझे दीजिए ॥ १३ ॥

आपके दास्य भाव में ही सुख का अनुभव करनेवाले सज्जनों के घर में तो मुझे कीड़े की भी योनि मिले (तो मैं प्रसन्न हूँ), पर दूसरों के घर में तो मुझे ब्रह्मा की भी योनि न मिले (यही मेरी प्रार्थना है) ॥१४॥

रामभक्तों की प्रार्थना

राम की स्तुति

(मुनियों द्वारा)

(सुनि प्रभु वचन हरषि मुनि चारी ❀ पुलकित तनु अस्तुति अनुसारी)
जय भगवंत अनंत अनामय ❀ अनघ अनेक एक करुनामय ॥
जय निर्गुन जय जय गुन सागर ❀ सुख मंदिर सुंदर अति नागर ॥
जय इंदिरा रमन जय भूधर ❀ अनुपम अज अनादि सोभाकर ॥
ज्ञान निधान अमान मान प्रद ❀ पावन सुजसु पुरान बेद बद ॥
तज्ञ कृतज्ञ अज्ञता भंजन ❀ नाम अनेक अनाम निरंजन ॥
सर्व सर्वगत सर्व उरालय ❀ बससि सदा हम कहुँ परिपालय ॥
द्वंद बिपति भवफंद बिभंजय ❀ हृदि बसि राम काम मद गंजय ॥

दो० परमानंद कृपायतन, मन पर पूरन काम ।
प्रेम भगति अनपायनी, देहु हमहिं श्री राम ॥

देहु भगति रघुपति अति पावनि ❀ त्रिविध ताप भव दाप नसावनि ॥
प्रनत काम सुरधेनु कलपतरु ❀ होइ प्रसन्न दीजै प्रभु येह बरु ॥
भव बारिद कुंभज रघुनायक ❀ सेवत सुलभ सकल सुख दायक ॥
मन संभव दारुन दुख दारय ❀ दीनबंधु समता बिसतारय ॥
आस त्रास इरिषादि निवारक ❀ विनय विवेक विरति बिसतारक ॥
भूप मौलि मनि मंडनि धरनी ❀ देहि भगति संसृति सरि तरनी ॥
मुनि मन मानस हंस निरंतर ❀ चरन कमल बंदित अज शंकर ॥
रघुकुल केतु सेतु स्रुति रक्षक ❀ काल कर्म सुभाव गुन भक्षक ॥
तारन तरन हरन सब दूषन ❀ तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूषन ॥

(यह प्रार्थना प्रायः सभी ढंग के भक्तों में चलती है ।—सं०)

बैरागियों की प्रार्थना

ईशस्तुति

(वेदों द्वारा)

जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने ।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुज बल हने ॥
अवतार नर संसार भार विभंजि दारुन दुख दहे ।
जय प्रनत पाल दयाल प्रभु संयुक्त सक्ति नमामहे ॥
तव विषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे ।
भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुनन्हि भरे ॥
जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिविध दुख ते निर्वहे ।
भव खेद छेदन दच्छ हम कहुँ रक्ष राम नमामहे ॥
जे ज्ञान मान विमत्त तव भव हरनि भगति न आदरी ।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी ॥
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे ।
जपि नाम तव बिनु स्रम तरहिं भव नाथ सोइ स्मरामहे ॥
जे चरन सिव अज पूज्य रज शुभ परसि मुनि पतिनी तरी ।
नख निर्गता मुनि वंदिता त्रैलोक्य पावनि सुरसरी ॥
ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे ।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे ॥
अब्यक्त मूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने ।
षट् कंध साखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने ॥
फल जुगल विधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आस्रित रहे ।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे ॥
जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं ।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जसु नित गावहीं ॥
करुनायतन प्रभु सद्गुनाकर देव यह बर माँगहीं ।
मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं ॥

(रामायण आजकल का हमारा धर्मग्रन्थ, नीतिग्रन्थ सभी कुछ हो रहा है। उसी को हमारे अनेक साधुओं और गृहस्थों ने कर्मकाण्ड का शास्त्र भी बना लिया है। रामायण के दोहे चौपाई मन्त्र और स्तुति तो आपसे आप हो गये हैं। ये दोनों स्तुति रामायण की श्रेष्ठ प्रार्थनाओं में से है। हजारों भक्त इनका नित्य पाठ और भजन करते हैं। जो पाठक चाहें स्वयं करके देखें। —सं०)

भजन

व्यासवचनामृत

भक्ति नव प्रकार की होती है। उसमें भजन का स्थान बहुत ऊँचा है, क्योंकि श्रवण, स्मरण और कीर्तन तीनों मिलकर भजन कहलाते हैं। जब कि भक्ति के किसी एक अङ्ग को लेकर मनुष्य संसार-सागर पार कर सकता है, तब जहाँ तीन तीन अङ्ग एक स्थान पर हैं, उसकी महिमा कौन कह सकता है? स्वयं भगवान् रामचन्द्र कहते हैं कि भजन करनेवाला मुझे 'परम प्रिय' है। भजन के लिए किसी प्रकार का बन्धन भी नहीं है; कोई भी हो, केवल निष्कपट होकर भजे।

पुरुष नपुंसक नारि नर, जीव चराचर कोइ।
सर्बभाव भजि कपट तजि,मोहिं परम प्रिय सोइ॥

—रामचरितमानस

× × ×

आप कहेंगे कि भगवान् तो घट घट व्यापक हैं, वह क्यों किसी को प्रिय किसी को अप्रिय समझेंगे? नहीं, वह किसी को अप्रिय नहीं समझते, उनके लिए सभी समान हैं। लेकिन भजन करनेवाला उन्हें 'परम प्रिय' है। उसमें भगवान् विशेष रूप से प्रकट रहते हैं। स्वयं उन्होंने कहा है—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

—गी० ९।२९

'मैं सब भूतों में समान भाव से व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है, न कोई प्रिय; परंतु जो भक्त मुझे प्रेम से भजते हैं, वे मुझमें और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।'

× × ×

१—भजन कैसे भी करो वह सदा फलदायक है। भगवान् का नाम सुनो, गुणानुवाद करो, स्वयं उनके चरित्रों की कथा कहो तुम्हें सुख और शान्ति अवश्य मिलेगी; कल्याण और निःश्रेयस की प्राप्ति जरूर होगी।

भाय कुभाय अनख आलस हूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

२—जाति पाँति की भी कोई रुकावट नहीं है। जो जिसका भजन करता है वह उसी का हो जाता है। आप हरि का भजन करेंगे, तो आपका स्वतन्त्र अस्तित्व कहाँ रहा, आप भी हरिमय हो गये, इसी लिए कहा है—

जाति पाँति पूछै नहिं कोई।
हरि कौ भजै सो हरि कौ होई॥

३—परमात्मा परम कृपालु हैं। वह शब्द नहीं देखते—भाव देखते हैं। शब्दाडम्बर से तो हम संसारी—चर्मचक्षुवाले—धोखा खाते हैं। प्रभु तो हृदय में निवास करते हैं। हृदय को ही देख लेते हैं। हमारे वचन और कर्म तो भाव के ही रूपान्तर हैं। अतः भाव यदि शुद्ध और सच्चे हैं तो टेढ़े-मेढ़े शब्द और कर्म भी भीतर से शुद्ध ही समझे जायँगे। यही कारण है कि—

उलटा नाम जपत जग जाना।
बालमीकि भे ब्रह्म समाना॥

उन्हें तो 'मरा' में ही 'राम' का रूप दिखलाई पड़ गया।

× × ×

नाम तो बस रूप का बोध कराने का साधनमात्र है। इसी लिए नाम का इतना माहात्म्य है, यह जप और नामकीर्तन का रहस्य है। सीधे रूप का बोध होना असंभव समझकर ही सभी जगह नाम की आवश्यकता पड़ती है। कोई भी धर्म हो, कोई भी उपासनापद्धति हो, सबमें भगवन्नाम का स्मरण कीर्तन मान्य है। कलियुग में जब कि कठिनाइयों के कारण उपासना के अन्य अङ्ग दुर्ग्राह्य हो गये हैं तभी नाम का इतना महत्त्व रखा गया है—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

—बृ० नारद० १४१।१५

'कलियुग में जीवन के निस्तार का और कोई उपाय नहीं है, नहीं है, नहीं है; केवल भगवान् का नाम लेना ही, नाम लेना ही, नाम लेना ही हमारे जीवन का परम ध्येय है*।'

× × ×

अब भजन किया किसका जाय, यह भी जानने की इच्छा स्वभावतः हो सकती है। भजन का फल यह है कि जो जिसे भजता है वह उसी के समान हो जाता है—उसी के लोक में जाता है†। इसलिए सकल चराचर के स्वामी, जगन्नियन्ता, परम पिता अज, शाश्वत और अनन्तवीर्य भगवान् नारायण का ही भजन करना चाहिए। कहा भी है—

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा॥

—लिङ्गपुराण २।७।११

'सब शास्त्रों को मथकर अर्थात् उनका सार निकालकर और बार बार विचारकर यही सिद्ध हुआ है कि भगवान् नारायण का ही ध्यान करना चाहिए।'

× × ×

नारायण कोई भी हो सकते हैं। नारायण तो वस्तुतः नरों के अयन हैं। वह किसी धर्म या जाति-विशेष के बन्धन में नहीं हैं। हम पहले भी कह चुके हैं, नाम तो केवल नामवाले की ज्ञानप्राप्ति का सहारा है। इसलिए नारायण, गॉड, अल्लाह, बुद्ध, अर्हत्, ब्रह्म, पुरुष आदि सभी एक हैं। जो जिस नाम से उनका सुगमतापूर्वक ध्यान कर सके उसी नाम से भजें। लेकिन भजन करना आवश्यक है, क्योंकि बिना इसके दूसरे सभी साधन शून्यवत् हैं। नाम का साथ होने से ही अन्य साधनों का महत्त्व है और यह महत्त्व भी दसगुना बढ़ जाता है। गोस्वामी तुलसीदास ने राम के नाम को लेकर इसी बात को बिलकुल गणित के रूप में कह डाला है। वे कहते हैं—

राम नाम को अंक है, सब साधन हैं सून।
अंक गये कछु हाथ नहिं, अंक रहे दस गून॥

'राम का नाम अङ्क है, तथा अन्य साधन शून्य हैं। जिस प्रकार अङ्क से हीन होने पर शून्य का कुछ भी महत्त्व नहीं रह जाता और अङ्क से युक्त होने पर दसगुना बढ़ जाता है।' (जैसे १ के साथ ० होने से १० हो जाता है और अकेले केवल ० रह जाता है, उसी प्रकार राम नाम के साथ होने से सभी साधनों का महत्त्व दस गुना बढ़ जाता है।)

× × ×

इसलिए वेद, पुराण और महर्षियों के समान हम भी यही कहेंगे कि बड़े पुण्य के फल से मनुष्य का नाम से अनुराग होता है

वेद पुराण संत मत येहू।
सकल सुकृत फल रामसनेहू॥

गोस्वामी तुलसीदासजी इसी बात को कैसे सुन्दर ढंग से अपने शब्दों में कहते हैं—

राम नाम मनिदीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरौ, जौ चाहसि उँजियार॥

---

* इसमें एक बात तीन बार कहने का तात्पर्य है कि यह ध्रुव सत्य है। इसमें संशय का स्थान नहीं।

† प्रमाण के लिए इसी अङ्क में अन्यत्र प्रकाशित श्री गीतानन्दजी के प्रश्नोत्तर में देखा जा सकता है।

मेरी शरण

'सर्वधर्मान् परित्यज्य'

गीतान्यास

(ले०—लोकसंग्रही स्वामी विद्यानन्दजी महाराज, घंटाकोठी, कनखल)

गीता का सार तत्त्व है—

'मेरी शरण गहो'

'मामेकं शरणं व्रज'

भजन का मूल मन्त्र भी यही है—सब धर्मों का त्याग करके मेरी शरण में आओ।

सभी संतों, महात्माओं, भक्तों और आचार्यों ने इस मन्त्र की अपने अपने ढंग से व्याख्या की है। इसी से तो इस श्लोक को मन्त्र कहते हैं, क्योंकि मन्त्र को मनन करने और उससे अपना अर्थ सिद्ध करने का सभी को अधिकार है। अतः हम यहाँ इस श्लोक और मन्त्र की विशेष व्याख्या न करेंगे। यह तो बड़े वाद-विवाद और झगड़े की बात होगी। हम केवल इतना ही कहेंगे कि प्रभु के प्रेमियो! प्रभु की एक बात पर ध्यान दो, मामेकं शरणं व्रज—एक मेरी शरण लो। शरण लेने का नाम ही है भजन। अर्थात् भाइयो, और चीजें चाहे छोड़ो चाहे रखो, पर भजन तो सदा करो। भजन से ही जीवन बनेगा।

प्र०—वह भजन कैसे करना ?

उ०—सीधे सच्चे और श्रद्धालु हृदय से। जब तुम हृदय से भजन करने चलोगे, प्रभु तुमको ढंग सिखा देंगे। ध्रुव और प्रह्लाद को जिस प्रभु ने भजन करने का ढंग सिखा दिया था, जो प्रभु आज भी हजारों शरण में गये भक्तों को भक्ति सिखा देता है वही प्रभु तुम्हें भी सिखा देगा, निश्चय सिखा देगा।

यहाँ एक बात मैं अपने अनुभव की कहूँ। भाइयो, सज्जनों का लक्षण तो यह है कि अपने गुण की वे कभी चर्चा नहीं करते—वे अपना उदाहरण कभी नहीं देते। ऐसा व्यक्तिगत उल्लेख विनय और नम्रता के विरुद्ध होता है। इसी से अपने अनुभव की बात कहने में भी मुझे संकोच होता है। कहीं लोग इसे अहंकार और सिद्धि का प्रदर्शन न समझें। पर साधु जब अपने भाई बहनों का भला करने चलता है, तो वह निन्दा स्तुति की परवा नहीं करता। वह सौजन्य की और व्यक्तिगत प्रतिष्ठा की रक्षा की ओर ध्यान नहीं देता। वह जो ठीक समझता है वही कहता और करता है। आज मैं भी, इसी से, अपने अनुभव की बात कहूँगा।

मैंने जब संन्यास लिया तब मैं लड़का था। मुझे पढ़ने लिखने पर भी यह कभी न मालूम हो सका कि प्रभु का भजन कैसे किया जाता है और प्रभु कैसे मिलते हैं ? मैं हिंदुस्तान भर घूमा और बहुत से साधु संतों से मिला, पर कुछ पता न चला और न संतोष मिला। पर अन्त में जब मैं हृदय से रो पड़ा कि प्रभु, क्या अब मुझे कभी दर्शन न मिलेगा ? तो आप से आप गीता माई ने आकर रास्ता दिखा दिया। मैं भगवान् का भजन करने लगा। माँ गीता का पाठ और प्रचार करने लगा। अब तो मेरा जीवन ही एक भजन बन गया है। और मेरी यह धारणा

हो गई है कि हर एक को भगवान् भजन करने का उपाय अलग अलग बतलाते हैं। उन्होंने कहा ही है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते
तांस्तथैव भजाम्यहम्।

जो मेरे पास जिस प्रकार पहुँचते हैं, मैं उनसे उसी प्रकार मिलता हूँ, उनको वैसा ही भजन का उपाय बताता हूँ।

अतः मैं कोई एक उपाय भजन का किसी को नहीं बता सकता। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि तुमसे जिस प्रकार बने श्रद्धा और भक्ति से भजन करो, निश्चय तुम आगे बढ़ोगे और आपसे आप रास्ता सूझ पड़ेगा।

इतने पर भी तुम हठ करते हो और हमसे भजन का ढंग पूछते हो, तो हम एक बात और कह देंगे—

१. भक्तों की गाथाएँ पढ़ो, महात्माओं के अनुभव सुनो, कथा वार्ताएँ सुनो और सत्संग करो।

२. एकान्त में बैठकर गीता और रामायण का पाठ करो और समझी हुई बातों का मनन करो।

३. सदा तन, मन और वाणी से सच का व्यवहार करो। बस, इससे अधिक मैं कुछ नहीं कह सकता।

भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढ़मते।
धन यौवन यूँ जायँगे जैसे उड़त कपूर।
मन मूरख गोविन्द भज क्यों चाटत जगधूर॥

श्रीमन्नारायण नारायण नारायण॥

शरण आये

(भक्त प्रवर गोस्वामी तुलसीदासजी)

मैं हरि पतित पावन सुने।
मैं पतित तुम पतितपावन दोउ बानक बने॥
ब्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमागम भने।
और अधम कितेक तारे जात कापै गने॥
जानि नाम अजानि लीन्हें नरक सुरपुर मने।
दास तुलसी 'सरन आये' राखिए अपने॥

प्रार्थना और भजन का सबसे सहज उपाय

[सत्यदेव की पूजा]

(ले०—श्री सत्यव्रत शास्त्री)

आजकल के अर्थशास्त्री कहते हैं कि हमारा लक्ष्य है कम से कम परिश्रम में अधिक से अधिक लाभ उठाना। विचार कर देखा जाय, तो यही हर एक मनुष्य की प्रवृत्ति है। मनुष्य छोटा प्राणी है, उसकी आयु भी छोटी, उसकी शक्ति भी छोटी है और उसके चारों ओर अनन्त रत्नों का भंडार भरा हुआ है। जब यह दो हाथ का छोटा मनुष्य इस बड़े विश्व के भंडार को देखता है, तो आपसे आप उसकी इच्छा होती है कि किस छोटे से छोटे उपाय से शीघ्र ही हम इन चीजों को पा लें।

प्रार्थना और भजन के भी हजारों ढंग हैं। अतः यहाँ भी मनुष्य यही सोचा करता है कि सबसे सरल उपाय मिले और हम सब कुछ कर डालें। बड़े लोगों ने दया करके ऐसा एक उपाय बताया है। उसका नाम है—

सत्यदेव की पूजा

दर्शनाङ्क में सत्यदेव की व्याख्या निकल चुकी है।

यह व्रत इतना सहज और व्यापक है कि भारत में आज सबसे अधिक प्रचार इसी का है। यही आजकल का सार्वजनिक यज्ञ हो गया है। लोग जलसा करते हैं, पूजा करते हैं और साथ ही जीवन में एक शिक्षा सीखते सिखाते हैं—वह है सत्य का जीवन बिताने की शिक्षा।

यह सत्यदेव की पूजा सर्वथा लौकिक और सामान्य बात है, पर उससे लाभ सबसे अधिक होता है; यदि हम इतना न भूलें कि यह सत्य का भजन है, सत्य की प्रार्थना है, सत्य की पूजा है।

'प्रार्थना' का विवेचन

[भिन्न भिन्न देशों तथा धर्मों की प्रार्थनाओं का एक विवेचन]

(ले०—श्री शिवशंकर त्रिवेदी, एम० ए०)

प्रार्थना शब्द का अभिप्राय है आदरपूर्वक विनती करना। किसी दैवी और विलक्षण शक्ति के संमुख जब विनती के रूप में कोई अभिलाषा प्रकट की जाती है तब उसे प्रार्थना कहते हैं। बहुत प्राचीन काल से ही प्रार्थना का यही मतलब समझा जाता है। दैवी और अद्भुत शक्तियों से प्रायः लोग डरते भी रहते हैं। इस भय के कारण प्रार्थना में भी भय का कुछ न कुछ अंश पाया जाता है *।

प्रार्थना के उद्भव के संबन्ध में विचार करने से हमें यह विदित होता है कि यन्त्र मन्त्र और जादू टोना से प्रार्थना का बड़ा घनिष्ठ संबन्ध है। शायद यह कहना भी गलत न होगा कि जादू टोना में कहे जानेवाले मन्त्रों और उच्चारणों से ही प्रार्थना का प्रारम्भ हुआ है। जादू टोना के मन्त्रों और प्रार्थनाओं के तत्त्वों की छान बीन करनेवाले अनेक विद्वानों ने दोनों में यह एक भेद ढूँढ़ा है कि प्रार्थनाओं में किसी विशेष देवता या किसी न किसी विशेष शक्ति को संबोधित किया जाता है तथा उससे यह कहा जाता है कि आप अमुक कार्य में सिद्धि दीजिए। और जादू टोना के मन्त्रों में यह बात नहीं होती। किंतु इस प्रकार का कोई स्पष्ट भेद देखने में नहीं आता। अनेक बाजीगर और तान्त्रिक लोग अपनी शक्तियों का प्रदर्शन करते समय यह कहते हुए देखे जाते हैं कि अमुक घटना घटित हो जाय। यह कार्यसिद्धि की प्रार्थना ही हुई। ये लोग 'अगियाबैताल' 'कोइलियावीर' आदि विचित्र नामों का संबोधन भी करते हैं अर्थात् वे एक न एक शक्ति को बुलाते भी हैं। वास्तव में बात तो यह जान पड़ती है कि जादू टोना और प्रार्थना का बड़ा पुराना संबन्ध है तथा दोनों एक दूसरे से बहुत अधिक मिल जुल गये हैं। अनेक देशों में कई प्रकार की प्रार्थनाएँ बहुत धीरे धीरे की जाती हैं कि जिससे कोई दूसरा उन्हें सुनने न पाये। कहीं कहीं कुछ विशेष प्रकार की प्रार्थनाएँ ऐसी भी हैं जो दूसरे व्यक्तियों से छिपाकर गुप्त स्थानों में की जाती हैं। कुछ प्रार्थनाएँ ऐसी भी हैं (जैसे कि हिंदुओं के अनेक स्तोत्र आदि) जिनको बार बार कहने से फल की प्राप्ति होती है। कुछ इस प्रकार की भी प्रार्थनाएँ हैं जिनका कोई अर्थ ही नहीं होता, किंतु उनके बार बार दोहराने से सिद्धि की आशा की जाती है। ये सब बातें जादू टोना में ही विशेष रूप से पाई जाती हैं तथा इनसे यह भी प्रकट होता है कि कदाचित् प्रार्थनाओं की उत्पत्ति जादू टोना के ही आधार पर हुई होगी [1]।

अधिकतर किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए अथवा किसी कष्ट से छुटकारा पाने के लिए ही प्रार्थना की जाती है। कहीं कहीं ऐसे पर्व और समय बँध गये हैं जिनमें नियमित रूप से व्यक्तिगत अथवा सामूहिक प्रार्थनाएँ की जाती हैं।

---

* लेख में नाना प्रकार की बहुत सी बातें आई हैं, पर लेखक के सभी विचारों से संपादक सहमत नहीं; अतः पाठक भी धैर्य से पढ़ने की कृपा करें और संपादक को सभी बातों के लिए उत्तरदायी न समझें। —सं०

१—प्रार्थना के श्लोकों और पदों को हम मन्त्र कहते हैं। यह भी ध्यान देने योग्य है, क्योंकि मन्त्र में अदृष्ट शक्ति और सिद्धि रहती है।

कुछ उच्च और सभ्य समाजों में ऐसा भी चलन पाया जाता है कि अनेक अन्य दैनिक कार्यों के समान प्रार्थना भी नित्य की जाती है। कुछ लोग मनोवृत्तियों के सुधार तथा चित्त की शुद्धि के लिए भी प्रार्थना करते हैं। किंतु संसार में प्रायः लौकिक उन्नति के उद्देश्य से ही प्रार्थना करने का रिवाज पाया जाता है। प्रार्थनाशब्द के अर्थ में ही माँगने और इच्छा करने का भाव विद्यमान है, इसलिए प्रार्थना कभी निष्काम नहीं हो सकती। जब किसी प्रकार की कामना ही न होगी, तो प्रार्थना करने का कोई प्रयोजन ही नहीं है।

इस विषय पर भी कुछ विचार कर लेना आवश्यक जान पड़ता है कि संसार में कौन सी ऐसी शक्तियाँ हैं अथवा कौन से ऐसे देवसमुदाय हैं जिनके संमुख प्रार्थनाएँ की जाती हैं। प्रायः लोग ऐसी शक्तियों से प्रार्थना करते हैं जो उनकी वाञ्छित इच्छाओं को पूरी करने का सामर्थ्य रखती हैं। इस प्रकार की जितनी शक्तियाँ संसार में मानी गई हैं उनकी संख्या का पता लगाना तो असंभव ही सा है। किंतु इससे यह मतलब नहीं निकाला जा सकता है कि जितनी बड़ी बड़ी शक्तियाँ हैं अथवा जितने बड़े बड़े देवी देवता हैं, अथवा मानवहृदय में जितने भी भय उत्पन्न करनेवाले पदार्थ हैं, उन सभी से प्रार्थनाएँ की जाती हैं। प्राचीन काल में भूत प्रेतों में बहुत अधिक विश्वास किया जाता था और अब भी अशिक्षित समाजों में उनके प्रति कम विश्वास नहीं किया जाता है। ये भूत प्रेत बहुत समर्थ भी माने जाते हैं। किंतु इनके प्रति प्रार्थना बहुत ही कम की जाती है। कभी कभी बहुत बड़ी शक्तियों को छोड़कर छोटी छोटी शक्तियों से ही अधिक प्रार्थनाएँ की जाती हैं। इसका एक प्रधान कारण है। हमारे दैनिक जीवन में प्रायः छोटी छोटी शक्तियों और साधारण देवी देवताओं से ही संबन्ध रहता है। बड़े बड़े देवगण तो केवल छोटी शक्तियों का अनुशासनमात्र करते हैं। जब छोटे छोटे देवी देवताओं के द्वारा कार्य में सिद्धि नहीं प्राप्त होती तब बड़े देवताओं की शरण में जाना पड़ता है। उस समय उनसे प्रार्थना करने की आवश्यकता पड़ती है। संसार के अनेक धर्मों में प्राकृतिक पदार्थों से भी प्रार्थना करने का रिवाज है। हिंदूधर्म में भी वायु, जल, अग्नि, आकाश, पृथिवी, नदी, पर्वत, वृक्ष, ग्रह और नक्षत्र आदि से बहुत प्राचीन काल से प्रार्थनाएँ की जाती हैं। मृतात्माओं से भी प्रार्थना करने का रिवाज संसार की अनेक जातियों में पाया जाता है। कदाचित् मृतात्माओं से यह आशा की जाती है कि वे प्रार्थना को सुनकर हमें कुछ सहायता पहुँचावेंगी अथवा हमें कष्ट देने की यदि उनकी इच्छा रही होगी, तो प्रार्थना से प्रसन्न होकर अब भविष्य में कष्ट न देंगी।

प्रार्थनाओं का अधिक प्रचार पुरोहितों और पुजारियों का एक वर्ग बन जाने के कारण हुआ है। वैसे तो प्रार्थनाएँ व्यक्तिगत रूप में भी की जाती हैं, किंतु उनको बतानेवाले पुरोहित लोग ही हुआ करते हैं। यहाँ पर पुरोहित शब्द का संकुचित अर्थ न लेकर एक व्यापक भाव में अर्थ समझना चाहिए। धर्म के संबन्ध में जिन व्यक्तियों ने आदेश दिये हैं अथवा जो व्यक्ति धार्मिक कार्यों का संपादन करवाते हैं वे सभी पुरोहित शब्द की सीमा के अंदर मान लिये गये हैं।

दो बातें ऐसी हैं जिनके कारण पुरोहितवर्ग का प्रार्थनाओं से घनिष्ठ संबन्ध रहता है। प्रथम तो यह है कि पुरोहित लोग प्रार्थनाओं के संबन्ध में अधिक जानकारी रखते हैं। वे लोग ठीक ठीक प्रार्थना करने की विधि, उसका उपयुक्त समय तथा किस फल की प्राप्ति के लिए किस देवी या देवता से प्रार्थना करनी चाहिए, इस प्रकार की सभी बातों का पूरा पूरा ज्ञान रखते हैं। दूसरी बात यह है कि बहुधा सामूहिक रूप में भी प्रार्थनाएँ की जाती हैं। ऐसी प्रार्थनाएँ किसी वर्ग, जाति, ग्राम, समाज अथवा देश

आदि की शुभ कामना से की जाती हैं। इनमें किसी ऐसे व्यक्ति का होना आवश्यक रहता है जो प्रार्थना की विधि का नियमित रूप से संपादन करे। प्रायः सभी धर्मों और संप्रदायों में इस प्रकार के पुरोहित होते हैं जिनका मुख्य काम यही होता है कि वे प्रार्थनाओं का नियमित रूप से संचालन करें।

आध्यात्मिकता की उच्च श्रेणी पर पहुँचे हुए धर्मों और संप्रदायों में प्रार्थना का यह उद्देश्य माना गया है कि जिस देवी या देवता से प्रार्थना की जाय उसके साथ प्रार्थना करनेवाले का आध्यात्मिक संबन्ध स्थापित हो जाय। किंतु प्रार्थना के संबन्ध में ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे तो यही प्रकट होता है कि अधिकतर लौकिक अर्थों की प्राप्ति के ही लिए प्रार्थना की जाती है। प्रत्यक्ष रूप से देखने पर भी प्रायः सभी समाजों में यही बात पाई जाती है। साधारण समाजों में तो मानसिक सुधार, चरित्र की पवित्रता, पापों की क्षमा आदि के लिए भी प्रार्थनाएँ बहुत ही कम की जाती हैं।

भिन्न भिन्न देशों और भिन्न भिन्न धर्मों में प्रार्थना की व्यापकता और उसके उपयोग में बड़ा अन्तर पाया जाता है। प्रार्थना के संबन्ध में जानकारी प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले पाठकों को अनेक प्रकार की प्रार्थनाएँ पढ़कर उनके संबन्ध में विवेचन करना चाहिए। यह बहुत ज्ञानवर्द्धक तथा रोचक विषय है। प्रायः सभी प्रधान देशों और धर्मों की प्रार्थनाओं का संक्षिप्त परिचय कराने के लिए नीचे हम कुछ लिखेंगे। आशा है, इससे कुछ न कुछ प्रार्थना के संबन्ध में पाठकों का ज्ञान अवश्य बढ़ेगा।

अमेरिका में ईसाईधर्म का ही अधिक प्रचार है। किंतु वहाँ के मूलनिवासियों का धर्म दूसरे प्रकार का है और उनकी प्रार्थना भी दूसरे ढंग से की जाती है। वहाँ पर प्रार्थना के अंदर वे सभी धार्मिक कार्य आ जाते हैं जिनके द्वारा अदृष्ट प्राकृतिक शक्तियों के साथ मनुष्य घनिष्ठ संबन्ध स्थापित हो सके। इस दृष्टि से अमे[रिका] के इंडियनों के नृत्य भी प्रार्थना ही माने जाते हैं, क्यों[कि] वे लोग यह मानते हैं कि उनके नृत्य से देवता प्रसन्न [होते] हैं और उनके हृदय में अपनी शक्ति का संचार क[र] देते हैं[1]। इस प्रकार वे लोग देवताओं के अधिक [निकट] आ जाते हैं। वे लोग सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, पृ[थ्वी] आदि की भी प्रार्थना करते हैं तथा कभी कभी इन सबसे [ऊपर] जो परम परमात्मा है उसकी भी प्रार्थना करते हैं। [इस] प्रकार उनकी प्रार्थनाएँ दो भागों में विभाजित [की जा] सकती हैं:—

(१) ऐसी प्रार्थनाएँ जिनमें जादू टोना आदि [के] शब्द हों तथा जो प्रकृति अथवा छोटे छोटे देवताओं [के] प्रति की जायँ।

(२) ऐसी प्रार्थनाएँ जो परम पिता या सबसे [बड़े] ईश्वर के प्रति की जायँ।

अमेरिका के इंडियन लोगों की प्रार्थना का [नमूना] यह है कि—

'हे पिता! मुझपर दया करो। मैं भूख के मारे [मर] रहा हूँ। यहाँ पर कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो मुझे संतुष्ट कर सके।'

वैबिलोनिया देश में अनेकों प्रकार की प्रार्थनाएँ प्रचलित हैं। वहाँ पर व्यक्तिगत प्रार्थनाओं का महत्त्व अधिक है तथा उन्हीं का प्रचार भी अधिक है। वहाँ की प्रार्थनाओं को भी हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। एक प्रकार की प्रार्थनाएँ तो वे हैं जो व्यक्तिगत

१—भारतवर्ष के हिंदुओं में भी देवताओं के संमुख जो नृत्य गीत आदि करने का रिवाज है उससे भी यह समझा जाता है कि देवता प्रसन्न होते हैं। कभी कभी मनोवाञ्छाओं की पूर्ति के लिए भी देवी देवताओं के संमुख कीर्तन होते हैं। —सं०

अथवा सामूहिक रूप में देवताओं की प्रसन्नता के लिए तथा अनेक कार्यों को सिद्धि के लिए की जाती हैं। दूसरी प्रकार की प्रार्थनाएँ वे हैं जो पापों के लिए क्षमाप्राप्ति के उद्देश्य से की जाती हैं। पहले प्रकार की प्रार्थनाएँ पद्य में ही होती हैं तथा जादू टोना आदि से उनका किसी प्रकार से भी संबन्ध नहीं होता है। वहाँ एक प्रकार की विशेष प्रार्थनाएँ ऐसी पाई जाती हैं जिनका दूसरे देशों में बहुत कम प्रचार है। वे प्रार्थनाएँ प्राचीनकालीन राज्य संबन्धी कागजों तथा अनेक प्रकार की विज्ञप्तियों और आज्ञाओं के अन्त में जोड़ दी जाती थीं। प्राचीन शिलालेखों में भी ऐतिहासिक विवरणों के अन्त में इस प्रकार की बहुत सी प्रार्थनाएँ पाई गई हैं।

चीन देश में प्रार्थनाओं का प्रचार बहुत ही पुराने समय से चला आ रहा है। बात बात में वहाँ प्रार्थना करने का रिवाज है। अनेक प्रकार की प्रार्थनाओं के शब्द और वाक्य बँधे हुए हैं जिनके अनुसार ही प्रार्थनाएँ की जाती हैं। उन प्रार्थनाओं में कभी कभी प्रार्थना करने-वाले का नाम, देवता का नाम तथा स्थान और दिन, मास और संवत्सर आदि के नाम ऊपर से जोड़ दिये जाते हैं। किंतु कभी कभी अपने स्वतन्त्र शब्दों में भी लोग प्रार्थना करते हैं। वहाँ पर भी प्रार्थनाएँ प्रायः किसी न किसी लौकिक वस्तु की प्राप्ति के ही लिए की जाती हैं। चीन में भारतवर्ष के ही समान प्रार्थना करने के लिए तमाम देवताओं का प्रचार है। सबसे बड़े देवता का नाम 'शांगती' है। इनके लिए वहाँ के बादशाह के द्वारा प्रति वर्ष बड़ी धूम धाम और बड़े जलसे के साथ प्रार्थना की जाती है। इन परम देवता के बाद फिर और बहुत से देवताओं का स्थान है। अनेक प्राकृतिक वस्तुओं, जैसे—पहाड़, नदी, नाले आदि, से भी प्रार्थनाएँ की जाती हैं। ये सब बातें चीन में प्रचलित 'ताओ' धर्म की हैं जिसमें कि इस संसार से परे कोई और देवता नहीं माना जाता है। किंतु चीन के वे निवासी जो बौद्धधर्म के अनुयायी हैं, एक दूसरी ही तरह से प्रार्थना करते हैं। उनकी प्रार्थना का आधार कोई मूर्ति नहीं होती है और न किसी साकार वस्तु की कल्पना के द्वारा वे प्रार्थना करने की प्रेरणा ही प्राप्त करते हैं। अशिक्षित बौद्धों को छोड़कर चीन के बौद्ध प्रायः भावनाओं की ही उपासना करते हैं। उनकी यह उपासना मन को वशीभूत करने के लिए होती है, न कि किसी लौकिक पदार्थ की प्राप्ति के लिए। इसलिए इसको प्रार्थना कहना ठीक नहीं जान पड़ता है। बौद्धों के लिए प्रार्थना का कोई प्रयोजन ही नहीं है, किंतु फिर भी चीन देश में प्रत्येक व्यक्ति प्रार्थना करने की आवश्यकता समझता है तथा प्रार्थना करने के लिए इच्छुक भी रहता है। कदाचित् इसका कारण यही है कि आध्यात्मिकता की उच्च भूमिका पर पहुँचे हुए व्यक्तियों की संख्या अधिक नहीं है। चीन के कनफ्यूसियनधर्म के माननेवाले एक विद्वान् ने प्रार्थना की परिभाषा करते हुए कहा है कि—

'बुरे कर्मों के लिए पश्चात्ताप करने तथा भविष्य में अपना सुधार करने की प्रतिज्ञा करने के लिए विशेष आत्माओं से जो सहायता ली जाती है उसे प्रार्थना कहते हैं। यदि बुरे कर्म नहीं किये जाते, तो प्रार्थना की कोई आवश्यकता नहीं है।'

प्रार्थना के समय चीन में भय और आदर का भाव रखा जाता है। झुकने तथा जमीन पर माथा रखने की प्रथा भी चीन में है। इसी से वहाँ पर प्रार्थना करने के समय चटाइयाँ बिछाने का रिवाज है। जो लोग दुर्बल होने के कारण झुकने में असमर्थ हैं उनके लिए खड़े रहने का नियम है। प्रार्थना के समय हाथ जोड़ने का रिवाज भी चीन में है।

फारस में अब तो अधिकांश रूप में मुसलमानधर्म का ही प्रचार है, किंतु वहाँ का प्राचीन धर्म पारसीधर्म है। इस धर्म के माननेवाले भारतवर्ष में भी पाये जाते हैं। इसमें

पूजाओं की रीति को बड़ी प्रधानता दी गई है। प्रत्येक धार्मिक कार्य बड़ी विधि और बड़े विधान के साथ संपादित किया जाता है। यही कारण है कि जिससे पारसीधर्म की प्रार्थनाएँ भक्तिप्रधान धर्मों की प्रार्थनाओं के समान नम्रता और दीनता से भरी हुई नहीं होतीं। इस धर्म की प्रार्थनाओं में लौकिक पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा भी सर्वत्र नहीं पाई जाती है। इसका भी एक विशेष कारण है। वह कारण यह है कि पारसीधर्म में यह धारणा है कि धार्मिक नियमों के पालन करनेवाले व्यक्ति को लौकिक तथा पारलौकिक सुखों की प्राप्ति निश्चित रूप से होती है। इस धर्म की जो प्रार्थनाएँ प्राचीन काल से प्रचलित हैं उनमें देवी देवताओं के नामों का उल्लेख तथा थोड़ा बहुत उनका वर्णनमात्र होता है। पारसियों के सबसे बड़े देवता का नाम 'अहुरमज्द' है। कहीं कहीं इस प्रधान देवता से ज्ञानवृद्धि तथा संस्कारों और मनोवृत्तियों के सुधार के लिए भी प्रार्थनाएँ की जाती हैं। मृतात्माओं के लिए भी प्रार्थना करने का रिवाज पारसियों में है। उनकी एक प्रार्थना का भाव नीचे दिया जाता है:—

'हे अहुर! शुभ कर्मों', नम्र वचनों और बलिदानों के बदले में आपने जो अमरता, धार्मिकता और कुशलता प्रदान की है उसके बदले में आपको उपहार दिये जायँगे।'

जापान का राष्ट्रीय धर्म शिंटोधर्म है। इस धर्म की प्रार्थनाएँ प्रायः जादू टोना से ही अधिक मिलती जुलती हैं। प्राचीन काल में जापान में अधिकतर एकान्त में ही प्रार्थना करने का रिवाज था। ऐसी प्रार्थनाएँ प्रायः व्यक्तिगत स्वार्थों की ही पूर्ति के लिए की जाती थीं। चीन के कनफ्यूसियनधर्म के प्रभाव पड़ने से राजाओं के लिए भी प्रार्थनाएँ की जाने लगीं। मिकाडो के लिए प्रार्थना करने की प्रथा बाद में ही प्रचलित हुई है। जापान में मृत पुरुषों के लिए प्रार्थना करने का रिवाज कम है। इसका कारण यह है कि प्राचीन काल में तो वहाँ के लोगों को जीवात्मा के संबन्ध में कुछ ज्ञान ही न था और भी बौद्धधर्म के प्रभाव से व्यक्तिविशेष से प्रार्थना करने का भाव दबा ही रहा। जापान में घरों में, मन्दिरों में, एकान्त स्थानों में, सभी जगह प्रार्थनाएँ की जा सकती हैं। प्रार्थनाओं के लिए समय भी बहुत से हैं। आजकल में जो प्रार्थनाएँ प्रचलित हैं उनमें कनफ्यूसियन बौद्धधर्मों का प्रभाव पूरा पूरा पाया जाता है।

तिब्बत में प्रार्थना का प्रचार बहुत अधिक है। के बराबर कदाचित् किसी भी देश में प्रार्थनाओं का न होगा। इसका एक प्रधान कारण यह है कि तिब्बत वालों को अपनी जीवनयात्रा के लिए बहुत अधिक प्र के आश्रय में रहना पड़ता है। प्राकृतिक पदार्थों से लोग भय भी बहुत करते हैं, क्योंकि उन्हें प्रकृति अपना भयावना स्वरूप दिखलाती रहती है। पहाड़ी जीवन उनको प्रकृति की ओर अधिक खींचता है, किंतु वे लोग प्रकृति से प्रेम की अपेक्षा भय अधिक हैं। संसार से बहुत अधिक पृथक् होने के कारण तिब्बत वालों में एक प्रकार की विचित्र पवित्रता की भावना जाती है। वे लोग दूसरे देशवालों से अपने को अधिक पवित्र मानते हैं तथा उनके व्यावहारिक जीवन भी बात बात में पवित्रता का विचार रखा जाता है। पवित्रता के साथ साथ प्रार्थना का भी संबन्ध बना है। मन्दिरों आदि में जो पूजा और प्रार्थना होती है तो बहुत अधिक है ही; लेकिन उससे भी कहीं अधिक प्रार्थना 'लामा' लोग अपने अवकाश के समय में नि किया करते हैं। तिब्बत में बौद्धधर्म का ही प्रचार और वहाँ की प्रार्थनाएँ प्रायः बौद्धधर्म की ही प्रार्थनाएँ हैं। कुछ लोग तो उन प्रार्थनाओं को पाली भाषा में ही हैं, किंतु कुछ लोगों ने उन्हीं प्रार्थनाओं का अनुवाद अप देशभाषा में कर लिया है। जिन देवताओं से प्रार्थना जाती है वे प्रायः बौद्धधर्म के ही देवता हैं। उनमें

प्रधान स्वयं बुद्ध भगवान् हैं। भूत प्रेतों की पूजा का प्रचार तिब्बत में कम है। किंतु बीमारी के समय तथा मृत्यु के उपरान्त किसी न किसी रूप में थोड़ी बहुत प्रेतपूजा देखने में आती है। भारतवर्ष के ही समान तिब्बत में जप करने के लिए मालाओं का बहुत प्रयोग किया जाता है। वहाँ भी मालाओं में १०८ दाने रखे जाते हैं। भोजन और जलपान आदि के समय भी तिब्बत में प्रार्थना करने का चलन है। जलपान के समय की एक प्रार्थना निम्नलिखित है:—

'हम नम्रतापूर्वक आपसे विनती करते हैं कि हम और हमारे संबन्धी जन्मजन्मान्तर में कभी भी तीन पवित्र बातों से विचलित न हों। तीनों पवित्र वस्तुओं (बुद्ध, धर्म और संघ) का शुभाशीर्वाद हमारे इस पेय पदार्थ में प्रवेश करे।'

तिब्बत में प्रार्थना करने का एक और भी तरीका है। वह यह है कि कागज की लंबी लंबी पट्टियों में "ओ३म् मणिपद्मे हुम्" हजारों बार लिखा रहता है। ये पट्टियाँ धातु के बने हुए एक छोटे पहिये में लिपटी रहती हैं। लोग इन्हें अपने साथ लिये रहते हैं तथा बार बार इन्हें एक तरफ से पढ़ते जाते हैं और दूसरी तरफ से लपेटते जाते हैं। प्रार्थना के मन्त्रों से अङ्कित झंडों और झंडियों का भी प्रचार तिब्बत में है। इन दोनों प्रकार की प्रार्थनाओं का बड़ा माहात्म्य समझा जाता है।

मिश्रदेश में प्रार्थनाओं का प्रचार अधिक नहीं है। जो मुसलमानधर्म को माननेवाले हैं वे उसी धर्म के अनुसार प्रार्थना करते हैं। किंतु मिश्र में पहले जिस धर्म का प्रचार था उसके इतिहास में प्रार्थनाओं का कोई स्पष्ट स्थान दिखाई नहीं देता है। जो कुछ थोड़ी बहुत प्रार्थनाए पाई जाती हैं वे मृतात्माओं के ही संबन्ध की हैं। कहीं कहीं प्राकृतिक शक्तियों से भी सहायता माँगी गई है, किंतु अन्य देशों के समान वह किसी नियमित प्रार्थना के रूप में नहीं है।

ग्रीस (यूनान) देश में प्रार्थनाओं का बड़ा महत्त्व है। वहाँ पर प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्य के प्रारम्भ में प्रार्थना करने का चलन है। वहाँ की प्रार्थनाओं में देवता के प्रति बड़ी घनिष्ठता का भाव देखा जाता है तथा उसका संबोधन भी किया जाता है। जो देवता जिस ढंग का होता है उसके लिए वैसा ही भाव प्रकट किया जाता है तथा उसकी पूजा और वन्दना भी उसी ढंग से की जाती है। अधिकतर प्रार्थना का उच्चारण जोर से किया जाता है। किंतु जब प्रार्थना का कोई उद्देश्य ऐसा होता है कि जिसको दूसरों से छिपाना अभीष्ट रहता है, तो वह प्रार्थना गुप्त स्थान में धीरे धीरे की जाती है। नम्रता, लज्जा और परिस्थिति आदि कुछ और बातें भी ऐसी हैं जिनके कारण प्रार्थना कभी कभी मौन होकर की जाती है। यूनान में प्रार्थना प्रायः विधिपूर्वक ही की जाती है। प्रार्थना करने के पहले हाथ धो लेने का भी रिवाज वहाँ है। फिर प्रार्थना की जाती है; और उसके बाद बलिप्रदान आदि किये जा सकते हैं। प्रार्थना के समय देवता का संबोधन उसके पूरे नाम और उपाधि के साथ होना चाहिए। यूनान में भी प्रार्थना प्रायः लौकिक वस्तुओं की प्राप्ति के ही उद्देश्य से की जाती है।

प्राचीनकालीन रोमनधर्म में प्रार्थनाओं का अच्छा प्रचार था। जैसे वहाँ की सभ्यता एक ऊँचे दर्जे पर पहुँची हुई थी, वैसे ही वहाँ की प्रार्थनाओं में भी दिखाव का भाव विद्यमान था। वहाँ पर प्रार्थनाओं का संबन्ध जादू टोना से था। पहले तो बहुत समय तक इस बात में भी संदेह रहा है कि प्रार्थना पूजा या उपासना है, अथवा यह भी जादू टोना के अन्तर्गत है। रोम में भी प्रार्थना एक विशेष विधि के साथ की जाती थी। देवता की मूर्ति के संमुख खड़े होकर प्रार्थना की जाती थी। मूर्ति की प्रदक्षिणा करने का भी रिवाज रोम में था। कभी कभी एक विशेष नियम के अनुसार हाथ भी उठाये जाते थे। प्रार्थना का उद्देश्य

रोम में भी लौकिक वस्तुओं को प्राप्त करना ही होता था। किंतु अब तो रोम में ईसाईधर्म का प्रचार है और वहाँ ईसाईधर्म के अनुसार प्रार्थनाएँ की जाती हैं।

फिनलैंड और लैपलैंड में प्रत्येक प्राकृतिक वस्तु एक जीवित आत्मा समझी जाती है तथा उसके प्रति वैसी ही धारणा रखी जाती है जैसी कि एक जीवित मनुष्य के प्रति। वहाँ स्पष्ट रूप से प्रार्थनाओं का प्रचार अब भी नहीं है। प्राकृतिक पदार्थों के प्रति जो भाव प्रदर्शित किये जाते हैं तथा जिस प्रकार के शब्दों में उनका संबोधन किया जाता है उनसे यही प्रकट होता है कि लोग उनसे सदैव डरते रहते हैं। उनकी जो विनती की जाती है वह जादू टोना से ही मिलती जुलती है।

मेक्सिको देश में प्राचीनकालीन प्रार्थनाओं का प्रचार चला आ रहा है। 'सहागुन' नाम के एक महापुरुष ने अपने जीवनकाल में जो महान् कार्य किये थे उन्हींका गुण-गान मेक्सिको में किया जाता है। वहाँ पर व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों प्रकार की प्रार्थनाएँ प्रचलित हैं। लौकिक सुख के साधनों की प्राप्ति ही वहाँ भी प्रार्थना का उद्देश्य होता है।

ट्यूटन लोगों की प्रार्थना में हम प्राचीनकालीन देवताओं के उपासकों का ढंग देखते हैं। किंतु उनकी बातों का ठीक ठीक ज्ञान हमको नहीं है। जो कुछ जाना जा सकता है उसके आधार पर हम केवल यही कह सकते हैं कि पहले उनके यहाँ संकट के अवसरों पर ही प्रार्थना की जाती थी। बाद में मूर्तियों की स्थापना होने लगी थी तथा मन्दिर भी बन गये थे। मूर्तियों के सामने बलि करने का भी रिवाज उनके यहाँ चल पड़ा था। प्रार्थना करानेवाले एक विशेष पुरोहितवर्ग की भी वहाँ स्थापना हो गई थी।

संसार के प्रधान धर्मों की प्रार्थनाओं के संबन्ध में भी कुछ जान लेना आवश्यक है। बौद्धधर्म में यह नहीं माना जाता है कि व्यक्तिगत रूप में इस संसार से परे कोई और ईश्वर है। इस धर्म में यह माना जाता है कि मनुष्य अपने मन को वश में कर लेने से तथा सत्य और अहिंसा आदि के पालन से पूर्णता को प्राप्त कर सकता है। उपर्युक्त इन दो धारणाओं के कारण बौद्धधर्म में प्रार्थना को कोई स्थान ही नहीं मिल सकता है। किंतु फिर भी इसमें प्रार्थना की जाती है। इसकी प्रार्थनाएँ लौकिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए विनती के रूप में नहीं हैं, प्रत्युत् उनमें यह चाहा जाता है कि बुद्ध भगवान् के प्रति तथा उनके उपदेशों के प्रति हमारे मन में श्रद्धा हो। बौद्धधर्म की महायान शाखा में प्रार्थना को 'प्रणिधान' (संस्कृत) या 'पणिधान' (पाली) कहते हैं। 'पणिधान' का अर्थ है मन और इन्द्रियों को वश में करना। इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि बौद्धधर्म की प्रार्थना में किसी देवता से कोई याचना नहीं की जाती है, वरन् प्रार्थना करने वाला भगवान् बुद्ध का स्मरण करके उनके सिखाये हुए धर्म और उपदेशों के प्रति अपने मन में सद्भाव और सत्प्रवृत्ति की प्रेरणा ग्रहण करता है। प्रार्थना के रूप में वह अपने चित्त को शुद्ध करने का प्रयत्न करता है। महायान शाखावाले प्रार्थना में व्याकरण की ओर भी बहुत ध्यान देते हैं।

बौद्धधर्म के समान ही जैनधर्म में भी ईश्वर की सत्ता नहीं मानी जाती है तथा उसमें भी अपने ही कर्मों का फल मुख्य माना जाता है। जैनधर्मवाले यह मानते हैं कि कर्म ही सब कुछ है। इस जन्म में हम सुख या दुःख जो कुछ भी भोग रहे हैं वह हमारे पूर्व जन्मों के कर्म का फल है। उसे हमें अवश्य भोगना पड़ेगा, कोई हमारा सुख या दुःख कम नहीं कर सकता। और इस जन्म में हम जो अच्छे या बुरे काम करेंगे उनका फल हमें आगे चलकर अवश्य भोगना पड़ेगा। उस समय भी हमारे सुख या दुःख को कोई कम न कर सकेगा, और न बढ़ा ही सकेगा। जब किसी में यह शक्ति ही नहीं मानी जाती

कि वह हमारे दुःख को दूर कर सकता है अथवा हमारे सुख को बढ़ा सकता है, तो फिर हम किससे याचना करें और क्यों करें ? ऐसी दशा में जैनधर्म में प्रार्थना का होना संभव नहीं है। कुछ धर्मों में मृतपुरुषों से प्रार्थनाएँ की जाती हैं, किंतु इस धर्म में वह बात भी नहीं है। जैनी कहते हैं कि मरे हुए व्यक्तियों से अब हमारा कोई संबन्ध नहीं है, तो फिर उनसे प्रार्थना क्या की जाय ! जिस देवी या देवता की कृपा से हम कुछ लाभ उठाते हैं उसको धन्यवाद देने के लिए भी कभी कभी प्रार्थनाएँ की जाती हैं। किंतु जैनधर्म में तो यह माना जाता है कि हम जो कुछ भी पाते हैं वह सब हमारे पूर्व जन्मों के शुभ कर्मों का ही फल है। तो फिर धन्यवाद किसको दिया जाय ! जैनधर्म में तीर्थंकर की पूजा की जाती है तथा उनकी मूर्ति और उनके लिए मन्दिर भी बनवाये जाते हैं। किंतु उनकी मूर्ति की पूजा के समय जैनी लोग उनकी मूर्ति से कोई याचना नहीं करते। वे केवल उनके गुणों की सराहना करते हैं। रात में स्वाध्याय कर चुकने के पश्चात् जैनी लोग एक श्लोक पढ़ते हैं जिससे उनकी भावनाओं का पता लगता है। उसका अर्थ नीचे दिया जाता है।

'आत्मा ही उत्पत्ति तथा प्रलय का कारण है। स्वयं यही सुख और दुःख की देनेवाली है। यही मित्र है और यही शत्रु भी है। यही अपनी अच्छी और बुरी दशा का निर्णय करती है। आत्मा कामधेनु के समान है जिससे हम सब इच्छाओं की पूर्ति कर सकते हैं। यही नन्दन वन है।'

यहूदीधर्म में अनेक प्रकार की प्रार्थनाएँ पाई जाती हैं। यह धर्म बहुत पुराना है और समय समय पर इसमें प्रार्थनाओं के संबन्ध में बराबर परिवर्तन होते रहे हैं। इस धर्म में व्यक्तिगत प्रार्थनाओं का प्रचार पहले बहुत कम था, अधिकतर सामूहिक रूप में ही प्रार्थनाएँ होती थीं। कभी कभी परिवार के सब व्यक्ति मिलकर भी प्रार्थना करते थे। इस धर्म के माननेवालों में नित्य प्रति तीन बार प्रार्थना करने का नियम था। विशेष पर्वों और उत्सवों के दिन एक बार और अधिक प्रार्थना की जाती थी। प्रार्थना करने के समय कुछ ऊपरी आडम्बर का भी विधान यहूदीधर्म में पाया जाता था। प्रार्थनाओं में संकुचित दृष्टि नहीं रहती थी, प्रत्युत समस्त देश, जाति और मानव-वर्ग के कल्याण की ओर ध्यान रखा जाता था। प्रार्थनाओं में अच्छे अच्छे भाव और विचार स्थान स्थान पर पाये जाते थे। यहूदीधर्म की प्रार्थना का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है। यह प्रार्थना अब भी प्रातःकालीन प्रार्थना में संमिलित है।

'हे अविनाशी ईश्वर ! हमारे ईश्वर, हमारे पुरखों के ईश्वर, आप ऐसी इच्छा करें कि जिससे हम उद्दण्डता से बचे रहें। वह अभी तक हममें नहीं आई है। हम अपने क्रोध से बचे रहें। हम बुरे आदमियों से, बुरे भाग्य से, बुरे विचार से, बुरे साथी से और बुरे पड़ोसी से बचे रहें। हम उस स्वभाव से बचे रहें जो हमारा नाश करनेवाला है। हम निर्दयी न्याय के स्थान से बचे रहें तथा निर्दयी शत्रु से भी बचे रहें, चाहे वह (धार्मिक) यहूदी का ही पुत्र क्यों न हो, अथवा वह अपरिचित ही क्यों न हो।'

किंतु अब यहूदीधर्म की प्रार्थनाओं में नवीन सभ्यता के प्रभाव के कारण बहुत परिवर्तन हो गया है। योरोप और अमेरिका के यहूदियों ने प्राचीन प्रार्थनाओं को बिगाड़कर उन्हें नये नये साँचों में ढाल दिया है। इन प्रार्थनाओं में रहस्यवाद तथा आधुनिक दर्शनशास्त्र का बड़ा प्रभाव देखने में आता है। अमेरिका के यहूदियों ने प्रार्थनाओं की हिब्रू भाषा को बदलकर उन्हें अंग्रेजी भाषा का रूप दे दिया है। प्रार्थनाओं में अनेकरूपता के आ जाने से यहूदीधर्म की एकरूपता भी नष्टप्राय हो रही है।

ईसाईधर्म में प्रार्थना का बड़ा भारी स्थान है। इस धर्म में प्रार्थना का महत्त्व इतना अधिक है कि यह कहा जा सकता है कि 'यदि प्रार्थना एक भ्रमात्मक वस्तु समझ ली जाय, तो ईसाईधर्म का अस्तित्व ही संदेह में पड़ जायगा।' इस धर्म का प्रधान ग्रन्थ बाइबिल है। वाइबिल के ओल्ड टेस्टामेंट तथा न्यू टेस्टामेंट दो विभाग हैं। इन दोनों विभागों की प्रार्थनाओं में कुछ भेद दिखाई पड़ता है। ओल्ड टेस्टामेंट (Old Testament) में ईश्वर को एक जीती जागती तथा सब व्यक्तियों से प्रत्यक्ष रूप में संबन्ध रखती हुई शक्ति के रूप में माना है। इसलिए उसमें मनुष्य का ईश्वर के साथ सीधा संबन्ध स्थापित किया गया है। किंतु न्यू टेस्टामेंट (New Testament) में धर्म संबन्धी प्रोत्साहन देने की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। आचरण तथा मनोभावों के सुधार का महत्त्व दोनों में समानरूप से पाया जाता है। दोनों ही यह कहते हैं कि मनुष्य अपनी पवित्रता के द्वारा ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। ईसाईधर्म में एक ही ईश्वर माना जाता है, बहुत से देवी देवताओं की कल्पना उसमें नहीं की गई है।। ईश्वर ने ईसा मसीह के रूप में अवतार लिया था और इस प्रकार ईसा मसीह मनुष्य और ईश्वर के बीच में बिचवानी बन गये हैं। ईसा मसीह के रूप में ईश्वर मनुष्यजाति के बहुत निकट आ गया है। इस प्रकार ईसा मसीह भी प्रार्थनाओं के पात्र बन गये हैं। ईसाईधर्म में व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों प्रकार की प्रार्थनाएँ पाई जाती हैं। सामूहिक प्रार्थनाओं की शिक्षा ईसाईधर्म ने यहूदीधर्म से ही ली है। इस धर्म में व्यक्तिगत प्रार्थनाओं को अपने घर में नित्य प्रति करने का विधान है। सामूहिक प्रार्थनाएँ गिर्जाघरों में प्रति रविवार के दिन होती हैं। ईसाईधर्म की प्रार्थनाओं के शब्द ईश्वर के प्रति भक्ति-भाव से भरे होते हैं तथा उनमें विनम्रता भी खूब रहती है। अधिकतर लौकिक वस्तुओं की ही प्राप्ति के लिए प्रार्थनाएँ की जाती हैं। ईसाईधर्म के माननेवाले भिन्न भिन्न देशों ने अपनी अपनी भाषाओं में बाइबिल का अनुवाद कर लि है तथा उनमें ईसाईधर्म की प्रार्थनाएँ भी अपनी अप भाषाओं में की जाती हैं।

इस्लामधर्म में भी प्रार्थना का बड़ा महत्त्व है। यह और ईसाईधर्मों के ही समान मुसलमानधर्म में भी नि प्रति प्रार्थना करने का नियम बना दिया गया है। इ धर्म में नित्य की प्रार्थना को 'सलात' कहते हैं। नि प्रति पाँच बार 'सलात' करने का विधान है—(१) सवेरे, (२) दोपहर में, (३) तीसरे पहर में, (४) सूर्यास्त के समय तथा (५) रात हो जाने पर। सलात चाहे तो मसजिद में करे चाहे अन्य किसी स्थान में सलात से पहले हाथ पैर धोना जरूरी है। सलात नमाज भी कहते हैं। नमाज पढ़ते वक्त एक नियम अनुसार कई बार हाथों को उठाना और फैलाना पड़ता तथा जमीन पर भी झुकना पड़ता है। ये सलात अकेले किये जाते हैं तथा सामूहिक रूप में भी। पर वास्त में ये व्यक्तिगत प्रार्थना के ही रूप में होते हैं। मुस मानधर्म की सामुहिक प्रार्थना शुक्रवार के दिन होती है यह प्रार्थना नगर या गाँव की सबसे बड़ी मसजिद में हो है जहाँ पर कि सब प्रार्थना करनेवाले मुसलमान इकट्ठा हो हैं। यदि नगर बहुत बड़ा है, जिससे सब लोग मसजि में नहीं इकट्ठा हो सकते, तो यह प्रार्थना अनेक प्रधान मस-जिदों में की जाती है। किंतु सब मसजिदों में यह प्रार्थ नहीं की जाती है। इस प्रार्थना को 'सलात अलजुमा' अर्थात् शुक्रवार की सलात कहते हैं। यह ठीक दोपहर समय की जाती है और इसके बाद फिर नित्य की दोपहर वाली नमाज पढ़ी जाती है। यह समझ लेना चाहिए नित्य की सलातों से यह सलात पृथक् होती है तथा इस विधान भी दूसरे ढंग का होता है। ऐसी सामूहिक प्रार्थ नाओं में एक अग्रकर्ता होता है जिसका सब लोग अनुकर करते हैं। उसे इमाम कहते हैं। इन प्रार्थनाओं

अतिरिक्त पर्वों और उत्सवों के अवसर पर भी विशेष प्रार्थनाएँ की जाती हैं जो प्रायः शुक्रवार के दिन की प्रार्थना से मिलती जुलती हैं। सभी प्रार्थनाएँ मक्का की ओर मुँह करके की जाती हैं। मुसलमानधर्म में एक ही ईश्वर माना जाता है और वह भी निराकार माना जाता है। अतः इस धर्म की प्रार्थनाओं में उसी एक ईश्वर की बड़ाई की जाती है। प्रार्थनाओं में सकाम भाव बहुत कम रहता है, किंतु प्रार्थना करनेवालों के मन में किसी वस्तु की कामना का रहना असंगत नहीं माना जाता है।

हिंदूधर्म की प्रार्थनाओं के संबन्ध में कुछ भी लिखना बहुत कठिन है। इस धर्म के अन्तर्गत इतने अधिक मत और संप्रदाय प्रचलित हैं और उन सबकी प्रार्थनाएँ इतने भिन्न रूपों में होती हैं कि बिना उनका अलग अलग वर्णन किये काम नहीं चल सकता। किंतु इस लेख के भीतर ऐसा कर सकना असंभव है। साधारणतः हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि हिंदूधर्म के अधिकांश संप्रदायों में बहुदेव उपासना[1] प्रचलित है तथा मूर्तिपूजा का भी प्रचार है। जप के रूप में भी हिंदूधर्म में बहुत अधिक प्रार्थना की जाती है। सकाम भाव तथा निष्काम भाव दोनों रूपों में प्रार्थना करने का चलन है। किंतु साधारण लोग लौकिक वस्तुओं की प्राप्ति तथा मरने के पश्चात् अच्छे अच्छे सुखों की प्राप्ति के उद्देश्य से ही प्रार्थना करते हैं। आत्म-शुद्धि के लिए भी प्रार्थना करने का रिवाज हिंदूधर्म में कम नहीं है। ईसाई और मुसलमानधर्मों के समान सामूहिक रूप से प्रार्थना करने का रिवाज हिंदूधर्म में नहीं है। हाँ, मन्दिरों में दर्शन और पूजन के लिए बहुत से लोगों का इकट्ठा होना सामूहिक रूप से पूजा कही जा सकती है। बहुत से लोगों का इकट्ठा होकर भगवान् के गुणों का गान करना भी सामूहिक प्रार्थना ही है। हिंदूधर्म में भूत प्रेतों तथा मृत पुरुषों के लिए भी प्रार्थनाएँ की जाती हैं। किंतु हिंदूधर्म की वास्तविक प्रार्थना की भावना हमें इसी रूप में दिखाई पड़ती है, जब हम एक सच्चे और निष्काम भक्त को संसार की प्रत्येक वस्तु में परमात्मा का दर्शन करके मग्न होते हुए पाते हैं। परमात्मा के शुद्ध स्वरूप में सच्ची भक्ति करना ही हिंदूधर्म के अनुसार उत्तम प्रार्थना है।

१. हिंदुओं के बड़े बड़े संप्रदायों में तो बड़ा उग्र एकेश्वरवाद है, पर पश्चिमवाले उन्हें देववादी समझते हैं। —सं०

कर्मकाण्ड और भजन

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

पति का भजन

(ले०—श्रीमती भगवती बाई)

पतीव्रता के धर्म को, सखि निज उर में धार।
भवसागर से शीघ्र ही, हो जावेगी पार॥
भय मत कर री 'भगवती', त्याग अन्य सब अर्थ।
तू निज उर में भजन कर, वह 'पति' सर्व समर्थ॥

ईश्वर का भजन करना ही मनुष्यजीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य है, पर हमें इस लक्ष्य को पाने के लिए कई उपायों का सहारा लेना पड़ता है, मूर्तिपूजा, नामजप, पाठ, यज्ञ, तप आदि ये सभी साधन बड़े कठिन हैं, अतः सभी मनुष्य एक न एक सहज उपाय की खोज में रहते हैं। स्त्रियाँ बेचारी तो अपनी गृहस्थी में इतनी व्याकुल रहती हैं कि वे चाहती हैं कि सीधे और सहज उपाय से ही भगवान् का भजन हो जाय। उसके लिए ऋषियों मुनियों ने एक उपाय बता दिया है—वह है ईश्वरभावना से पति को मानना। सहज में ही संसारी काम ईश्वरीय काम बन जाते हैं। यही पति का भजन है।

बड़ी सुन्दर सलाह है, बहिनो! खाओ पीओ, खिलाओ पिलाओ, केवल ईश्वर का भाव मत भूलो। अपनी सारी गृहस्थी में भगवान् की गृहस्थी देखो और घर के पति को पति परमेश्वर समझो।

गृहस्थी सँभालने के बारे में मैं कविवर कालिदास की कुछ पङ्क्तियाँ नीचे लिख देती हूँ—

वधू को धर्मोपदेश

शुश्रूषस्व गुरून्, कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने,
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मास्मप्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी,
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामा कुलस्याधयः॥

—कालिदास
शा० चतुर्थ अं० २० श्लो०

१. बड़ों की शुश्रूषा करना—वे जो कुछ कहें सुनना और उसका पालन करना।

२. अपनी सपत्नियों तथा बराबरी की ननद, दे देवरान, जेठान आदि से सखी जैसा मीठा और स्ने भरा व्यवहार करना।

३. पति से प्यार तो सदा मिलता है, पर झ झगड़ा भी हो जाता है। ऐसे झगड़े के अवसर क्रोध आता है। उस क्रोध को जीतने और दबाने ही जीवन में संयम आता है। कभी भी भूलकर क्रोध के समय में पति के विरुद्ध कोई काम नहीं कर चाहिए। पति गलती भी करे, तो हम क्यों गलती करें यही भाव सदा मन में रखना चाहिए।

४. अपने नौकर चाकरों और चारों ओर के लो से सदा ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे वे तुम् उपकार और आभार माना करें। अपने कार्यों सदा उन्हें प्रसन्न रखना चाहिए।

५. जब भाग्य बढ़ता रहे, सुहाग का सुख मिले घर और परिवार धन धान्य से भर उठे उस सम एक बात का ध्यान रखे कि 'कभी फूल नहीं उठना भोग विलास में भी सदा दूसरों का ध्यान रखना चाहिए और 'सबै दिन जात न एक समान' वाली कहावत मनन करना चाहिए।

इस प्रकार जो बहुएँ अपने व्यवहार से गुरुजन, पति सखी सहेली, परिजन आदि सबको प्रसन्न रखती हैं गृहिणीपद प्राप्त करती हैं—उनका घर बस जाता है वे घर की लक्ष्मी बन जाती हैं, वे घर की मालकि (गृहिणी) हो जाती हैं। पर जो इसके उलटे चलती हैं वे घर का रोग बन बैठती है, वे स्वयं दुखी रहती और दूसरों को भी दुःख देती हैं।

भजन

पर

प्रश्नोत्तर

(ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी से)

प्रश्न—गीता के अनुसार भगवद्भजन कैसे किया जाय ?

उत्तर—भजन करनेवाले को भक्त कहते हैं। इसलिए प्रश्न का अर्थ हुआ—भक्ति कैसे करनी चाहिए। भगवान् की भक्ति चार प्रकार से की जा सकती है। गोकि गीता में यह नहीं कहा है कि भक्ति के चार भेद हैं, लेकिन यह जरूर कहा है कि—

चतुर्विधाः भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।

—गी० ७।१६

(हे अर्जुन ! सुकृतीजन मुझे चार प्रकार से भजते हैं।)

उपर्युक्त चार प्रकार यों हैं—(१) आर्ति, (२) जिज्ञासा, (३) अर्थार्थित्व और (४) ज्ञान। यथा—

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

—गी० ७।१६

प्रश्न—कृपया प्रत्येक के लक्षण समझाइए।

उत्तर—दूसरे अध्याय के सातवें श्लोक में चारों के लक्षण दिये हैं। यथा—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥

(कार्पण्यदोष से दबे हुए (नष्ट हुए) स्वभाववाला और धर्म का निर्णय करने में मोहित चित्त हुआ, मैं आपसे निश्चित की हुई श्रेय की बात पूछता हूँ, वह मुझे बतलाइए। मैं आपका शिष्य हूँ। अपने शरण में आये हुए मुझ दास को शिक्षा—शास्त्रोपदेश—दीजिए।)

इसी में क्रम से चारों के लक्षण कहे गये हैं। चारों का सामान्य लक्षण भी पहले कहा गया है कि—जनों (भक्तों) को 'सुकृती' होना पहले आवश्यक है, तदनन्तर वे चार प्रकार से भगवद्भजन कर सकते हैं। विशेष लक्षण यों है—आर्त भक्त 'कार्पण्यदोषोपहतस्वभाव' होता है अर्थात् जब भक्त का स्वभाव कार्पण्यदोष से उपहत (दबा) रहता है। इस कार्पण्यदोष को भगवान् ने यों बतलाया है कि—

कृपणाः फलहेतवः ।

—गी० २।४६

(अर्थात् जो फल के निमित्त कार्य करता है वही कृपण है।) इसी दोष को कार्पण्य कहते हैं। अर्जुन में भी यही दोष था, लेकिन जब उसने अपना दोष मंजूर कर लिया, तो तात्पर्य यह है कि वह इससे छूटकर भगवान् की शरण में जाना चाहता है अपने कार्पण्यदोष से वह ऊब उठा है। प्रत्येक आर्त भक्त के अंदर ऐसे ही भाव होने चाहिएँ। इसी भक्ति को गीता के अनुसार आर्ति कहा गया है।

आर्ति अवस्था के बाद ही जिज्ञासा का पर्याय आता है। इस अवस्था में भक्त उसी विपत्ति से छूटने का मार्ग पूछता है, क्योंकि उसका चित्त धर्म में मूढ हुआ रहता है। अतः धर्मजिज्ञासा की इसी अवस्था को 'जिज्ञासा' के नाम से कहा गया है। ऊपर के श्लोक में भी अर्जुन ने यही किया है। वह कहता है—

'पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः'

—गी० २।७

यहाँ पता चलता है कि अर्जुन दूसरी सीढ़ी पर आ गया। यही दशा प्रत्येक भक्त की होती है।

इसके बाद अर्थार्थी भक्त का दर्जा है। अभी तक तो पता चलता है कि भक्त के अंदर से फल की इच्छा चली गई। वह कार्पण्यदोष से छूटना चाहता है। लेकिन फिर भी वह क्या चाहता है, यही ऊपर के श्लोक की तीसरी पङ्क्ति—

'यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे'

गी० २।७

से मालूम पड़ता है।

अर्थात् वह प्रेय को छोड़कर श्रेय चाहता है। यही अर्थार्थी भक्त की अवस्था है। (अर्थ=पुरुषार्थ।)

ये तीनों अवस्थाएँ अर्जुन में आ चुकी थीं। वह भक्ति की तीन सीढ़ियाँ पार कर चुका था, लेकिन अभी चौथी ज्ञान की सीढ़ी तक नहीं पहुँचा था। इससे स्पष्ट है कि श्रेय की अवस्था भी सर्वोच्च नहीं है। अभी लक्ष्य से उस अवस्थावाला भक्त नीचे ही है। हाँ, गीता सुनने के लिए इन तीन अवस्थाओं को पहले पार कर लेना पड़ता है। अस्तु;

'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्'

—गी० २।७

इसमें ज्ञानी भक्त का अधिकार कहा गया है, क्योंकि उसमें इन बातों का होना जरूरी है। नीचे के श्लोक में भी कहा है—

'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया'

—गी० ४।

(उस ज्ञान को प्रणिपात (प्रणाम) करके, प्र करके और सेवा करके जानना चाहिए।)

अर्जुन ने जो 'शिष्यस्तेऽहं' कहा वही प्रणि है। 'शाधि मां' कहकर अर्जुन ने प्रश्न किया अ उसने शास्त्र क्या कहता है, यही पूछा; (शाधि अर्थ 'शास्त्र सिखाइए' होता है) यही परिप्रश्न हु और 'त्वां प्रपन्नम्' द्वारा यही बतलाया गया है भक्त सेवा में आ गया। आत्मसमर्पण से बढ़ दूसरी सेवा क्या हो सकती है?

इस प्रकार ऐसी अवस्था में पहुँच जाने पर कोई भक्त 'ज्ञान' का अधिकारी हो सकता है।

प्रश्न—महाराज यह नहीं स्पष्ट हुआ कि 'ज्ञा क्या है?

उत्तर—ज्ञानी का लक्षण है कि वह नित्ययु हो, उसमें एक भक्ति और भगवान् का अत्यर्थ (अत्य एकान्त) प्रेम हो। कहा है—

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः

—गी० ७।

(उन चार प्रकार के भक्तों में ज्ञानी सदा मु स्थित होने के कारण और केवल मुझमें ही भ रखने के कारण सर्वश्रेष्ठ है और मुझे प्रिय है।)

'नित्ययुक्त' का तात्पर्य है कि वह हमेशा युक्त काम करता है अर्थात् कर्मयोगी है। एक भक्ति भाव है कि वह तपोयोगी है। इसी प्र

अत्यर्थ प्रेम का अर्थ है कि वह ज्ञानयोगी है। इस प्रकार यहाँ कर्म, भक्ति, और ज्ञान तीनों का समन्वय है। अर्थात् ज्ञानी में ये तीनों ही बातें होनी चाहिएँ।

भगवान् ने इस अवस्था को बड़ा महत्त्व दिया है। यों तो वह कहते ही हैं कि 'उदाराः सर्व एवैते' अर्थात् ये चारों ही भक्त उदार हैं—कार्पण्यदोष से रहित हैं, लेकिन—

'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्'

—गी० ७।१८

ज्ञानी तो मेरी आत्मा ही है।

तात्पर्य यह कि और तीनों वस्तुतः अज्ञानी ही हैं। ज्ञानी ही भगवान् को ठीक समझ सका है। उनका ही रूप हो गया है। दूसरे द्वैतभावापन्न हैं और यही अद्वैतावस्था को पहुँच गया है। ज्ञानी भगवान् को ही परम गति समझता है, इसी लिए वह आत्मा है—

आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्।

—गी० ७।१८

भक्त इस अवस्था को अनेक जन्मों के बाद पहुँचता है और वह बहुत दुर्लभ भी है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

—गी० ७।१९

प्रश्न—आपने भक्त के लिए जो 'सुकृती' होना आवश्यक बतलाया है, इससे कृपया इस शङ्का का भी निवारण कर दें कि 'सुकृती' किसे कहते हैं?

उत्तर—गीता में सुकृती का भी लक्षण कहा है—

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥

—गी० ७।१५

(जो पाप करनेवाले, मूढ और नराधम हैं, जिनका ज्ञान माया द्वारा छीन लिया गया है, इस प्रकार के आसुरी भावापन्न मनुष्य मुझ परमेश्वर की शरण में नहीं आते।)

तात्पर्य यह कि सुकृती में ऊपर के दोष नहीं होने चाहिएँ। उसके अंदर आसुरभाव नहीं होने चाहिएँ। उसे 'दुष्कृती' न होना चाहिए। लेकिन यह उत्तर तो निषेध द्वारा हुआ। सुकृती का सीधा लक्षण यह है-(सु = सद्, कृती = कर्म करनेवाला)। सत्कर्म क्या है, इसे भी समझ लेना चाहिए। सद् का अर्थ है—

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते॥
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते॥

—गी० १७।२६-२७

(हे अर्जुन, सत्यभाव और श्रेष्ठभाव में 'सत्' का प्रयोग किया जाता है। उत्तम कर्म में भी 'सत्' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यज्ञ, तप और दान में स्थिति 'सत्' कही जाती है और उस (यज्ञादि) के अर्थ किया हुआ कर्म भी 'सत्' ही कहा जाता है।)

अर्थात् सुकृती में सद्भाव साधुभाव आदि गुण होने चाहिएँ। यह अवस्था बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती है। इसे प्राप्त करने के उपरान्त ही कोई भक्त हो सकता है।

गीता में सत्कर्म के इन पाँचों भावों की भी चतुर्थ अध्याय में व्याख्या मिलती है। प्रत्येक भाव के लिए मनुष्य में कौन कौन से लक्षण होने चाहिएँ, यही नीचे बतलाया जाता है—

सद्भाव—

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥

—गी० १४।१६

(हे अर्जुन, जो संपूर्ण कर्मों को बिना कामना के करते हैं और जिनके संपूर्ण कर्म ज्ञानरूपी अग्नि से जल गये हैं, उन्हीं को ज्ञानी पुरुष पण्डित कहते हैं ।)

साधुभाव—

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः ॥

—गी० ४।२०

(जो कर्मफल की इच्छा नहीं करता और न उनमें आसक्ति रखता है, तथा किसी का आश्रय न कर सदा संतुष्ट रहता है, वह सब कर्म में प्रवृत्त रहकर भी कुछ नहीं करता ।)

प्रशस्त कर्म—

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम् ॥

—गी० ४।२१

(जो संपूर्ण आशाओं को छोड़कर आत्मा को वशीभूत किये हुए सब संसारी झगड़ों से अलग रहता है और केवल शरीर से कर्म करता है, वह पाप का भागी नहीं होता ।)

स्थिति—

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वाऽपि न निबद्ध्यते ॥

गी० ४।२२

(हे अर्जुन, जो अपने आप मिली हुई वस्तु पर संतोष करता है, दुःख, सुख, हानि और लाभादि द्वन्द्वों से जिसके मन में वेदना या प्रसन्नता नहीं होती, जो किसी से वैर नहीं करता है, जिसकी सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि है, वह कर्म करके भी कर्म-बन्धन में नहीं बँधता है ।)

तदर्थीय—

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥

—गी० ४।२३

(जो स्त्री पुत्रादि की ममता से छूट गया है, सांसारिक विषयवासना से दूर हो गया है और ज्ञान में जिसका चित्त स्थित है, वह यज्ञ के लिए जो कर्म करता है, वे सब कर्म वासना सहित विलीन हो जाते हैं ।)* सद्भाव आदि की निषेध मुखेन व्याख्या गी० २।४२, ४३, ४४ में की गई है । विस्तारभय से यहाँ नहीं दी गई है ।

प्रश्न—यह तो आपने परम उत्कृष्ट (अर्थात् देवदेव) के भजन का उपदेश किया है । दूसरे शब्दों में कहना चाहिए—'यह निष्काम भक्तों का भजन है ।' किंतु सांसारिक जन इतने निष्काम नहीं हैं। वे तो किसी देवविशेष का सकाम भजन करते हैं अतः यह भी बतलाइए कि क्या गीता में कहीं उस प्रकार की अपर कोटि (साधारण) के भजन का

*यहाँ हमारे पाठकों के मन में संदेह हो सकता है कि उपर्युक्त लक्षणों को ही क्यों अमुक अमुक भाव माना जाय। इसका समाधान करने में एक तो विषयान्तर हो जायगा, दूसरे लेख भी बहुत लंबा हो जायगा, अतः किसी आगामी संख्या में इसका उत्तर संभव हुआ तो दिया जायगा ।

—सं०

उल्लेख है ? यदि है, तो उसकी विधि और फल भी बतलाने की कृपा करें।

उत्तर—हाँ, इसका भी उल्लेख है; और वह गीता के चौथे अध्याय के बारहवें श्लोक में है। भगवान् कहते हैं—

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥

(मनुष्यलोक में कर्म की सिद्धि शीघ्र ही होती है और मुक्ति कठिनता से मिलती है। इससे संसार में जो लोग कर्म की सिद्धि चाहते हैं वे (इन्द्रादि) देवताओं की उपासना करते हैं।)

अध्याय सात के वीसवें श्लोक में भी इसी वात का उल्लेख है। यथा—

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥

(अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार मनुष्य धन, स्त्री, पुत्रादि लौकिक कामनाओं से अज्ञान में पड़कर उन फलों की चाहना से अन्य देवताओं की उपासना करते हैं।)

इस प्रकार के भजन को गीता में श्रेष्ठ नहीं माना गया है। अतः इसका कोई विधान भी नहीं दिया गया है। उसकी तो नाना देव होने से नाना विधियाँ हैं, जो अन्यत्र मिलेंगी। गीता में उनका वर्णन कहाँ तक किया जा सकता है ? उसमें तो थोड़ा सा विधान और फल का निर्देशमात्र कर दिया गया है। यथा—

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥
यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हि तान् ॥
अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥
—गी० ७।२०-२३

(हे अर्जुन ! अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार मनुष्य, धन, स्त्री, पुत्रादि लौकिक कामनाओं से अज्ञान में पड़कर उन उन फलों की चाहना से अन्य देवताओं की उपासना करते हैं। हे अर्जुन ! जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक जिस जिस देवता के पूजन की इच्छा करता है, उन पुरुषों की उस श्रद्धा को मैं ही देवताओं में दृढ कर देता हूँ। मुझसे दृढ की गई उस श्रद्धा के अनुसार वह पुरुष उस देवता की आराधना करता है और उसकी कृपा से अपने मनोरथ को प्राप्त होता है। उन मनोरथों को पूर्ण करनेवाला यद्यपि मैं ही हूँ, परंतु उन अल्प बुद्धिवालों की कामना से प्राप्त होने के कारण वह फल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जो और देवताओं का पूजन करते हैं वे और देवताओं को प्राप्त होते हैं, और जो मेरा पूजन करते हैं, वे स्वयं मुझसे मिलते हैं।)

प्रश्न—क्या इस प्रकार के भक्तों के भजन का भी परमात्मा से कोई संबन्ध है ? क्योंकि इनके भजनीय देवताओं के तो भगवान् देव हैं।

उत्तर—गीता कहती है कि अन्य देवों का भजन भी मेरा ही भजन है, लेकिन वह अविधिपूर्वक भजन है (विधियुक्त तो वही आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानियों का भजन होता है)। नीचे के श्लोक से यह बात प्रमाणित होती है—

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥
—गी० ९।२३

(हे कौन्तेय ! जो अन्य देवताओं की भक्ति श्रद्धा करके अपने अपने उन उन इष्टदेवों की उपासना करते हैं, वे अविधिपूर्वक मेरी ही पूजा करते हैं।)

प्रश्न—अच्छा, तो विधिपूर्वक यजन कैसे होता है ?

उत्तर—गी० १७। २३, द्रष्टव्य।

भजन

(ले०—श्री भगवानदास गुप्त, बी० ए०, स्वदेशीभंडार, चौक, काशी)

संस्कृत का "भाग" शब्द कौन नहीं जानता ? इसके अर्थ "हिस्से" के हैं। इसी से "भजन" शब्द बना है। भगवान्, भगवती, भक्त, भक्ति, भागवत आदि शब्द भी यों ही बने हैं। इसका भाव है—जो हमारे हिस्से में पड़ा है या जिसके हिस्से में हम पड़े हैं उसी का हम भजन करते हैं।

भक्तों की बानी में बराबर यह प्रभाव पाया जाता है।

"हम तो मोल लिये या घर के।"

—तुलसी

"बुरा है या भला है अब तो यह प्यारा तुम्हारा है।"

—भारतेन्दु

उपासना का सबसे सरल और सिद्ध मार्ग भजन है। भजन ही में उपासक और उपास्य का साक्षात्कार होता है।

When Man-in-God is one
with God-in-man.

—Teunyson

मेरा मतलब यह नहीं है कि ईश्वर प्रत्येक भजन करनेवाले को दिखलाई देते हैं। 'ईश अंश' तो एक आदर्श है। जिसे वह दिखलाई दे "वह" तो "वही" हो जाय।

यदि

"जानत तुमहि तुमहि होइ जाई"

सत्य है, तो

"देखत तुमहि तुमहि होइ जाई"

और भी अधिक सत्य है।

पर भजने के समय अन्तःकरण शुद्ध होकर, और दूसरी ओर से निवृत्त होकर परमात्मा का ध्यान करता है।

स्त्रियों की एक कहावत है कि "घी का लड्डू टेढ़ा भी भला।" वही बात भजन में भी है। ईश्वर इस बात को नहीं देखता कि भजन शुद्ध है या अशुद्ध, सीधा है, उलटा, संस्कृत है या अरबी।

"उलटा नाम जपत जग जाना।
बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना॥"

यदि शुद्ध हो, विधिवत् हो, ठीक हो, तो क्या कहना है सोना और सुगन्ध ! पर संसार के अधिक लोग सीधे हैं; न पढ़े, न लिखे। उनकी यह दशा किसी प्रकार भजन में बाधा देनेवाली नहीं है।

मनुष्य को चाहिए कि संसार के सब कामों को सहज बनावे, कठिन न करे।

"जो बनि आवे सहज में ताही में चित देय।"

—गिरधर

उपासना और भजन में यह बात बहुत जरूरी है मैं इस विषय में "कृष्णाङ्क" में लिख चुका हूँ; मेरा वह विश्वास अब भी है। सबसे. सहज जप "राम नाम" है। इसको साँस से मिला लेना चाहिए। साँस भीतर जावे तब "राम", बाहर आवे तब "राम"। यह जप बिना प्रयास होता रहेगा। संसार का सब काम होता रहेगा और ध्यान "राम" में; केवल ध्यान ही का प्रश्न है। अकबर ने भी ध्यान पर बहुत जोर दिया है और एक उदाहरण भी लिखा है। आईने अकबरी में लिखते हैं कि हिंदुस्तान की स्त्रियाँ कुएँ से पानी भरती हैं, दो घड़े दोनों बगल में, एक सिर पर, उसपर कलसी लिये, ऊँचे नीचे रास्ते से चली जाती हैं। रास्ते में हमजोलियों से बात करती जाती हैं, पर ध्यान उनका घड़ों पर रहता है। इससे गिरते नहीं। इसी तरह हमको संसार के सारे काम करने चाहिएँ, पर ध्यान ईश्वर में लगाये रहना चाहिए और यह

आत्मकल्याण है। विचार करने से जान पड़ता है कि भजन उपासना भी त्रिगुणात्मक है—

तमोगुणी भजन

संसार में बहुत से लोग ऐसे हैं जिन्हें अपने कामों की सफलता के लिए काफी पुरुषार्थ और उत्साह नहीं है, पर आशा, तृष्णा, इच्छा बनी है। ऐसे लोग दूसरों पर मारण, उच्चाटन, वशीकरण, मन्त्रजप, अनुष्ठान इत्यादि क्रिया और कराया करते हैं। यह हुआ तामसिक अर्थात् सबसे हीन भजन।

राजसिक भजन

जो दूसरों के दिखलाने के लिए या धन उपार्जन के लिए किया जाय वह इस श्रेणी का भजन है। दुनिया में अनगिनत गायक, व्यास, भिक्षुक सब भजन कर करके ही तो जीविका कमाते हैं, बल्कि बहुतेरे तो ढोंग भी करते हैं, धोखा देते हैं और बनते हैं। कुछ लोगों का तो यह कहना है कि ऐसी बनावट लाभकारी है। दूसरे लोग अच्छा काम होते देखकर खुद भी करने लगते हैं। मुसलमान-धर्म में इसपर विशेष ध्यान दिया गया है। नमाज पढ़ना भीड़ भाड़ से होना चाहिए जिसमें लोगों को प्रोत्साहन हो। अगर रोजा न रखो (व्रत न करो) तो भी व्रतवालों की सूरत बनाये रहो जिसमें दूसरे तुम्हें देखकर बिगड़ न जायँ।

सात्त्विक भजन

यह सबसे ऊँची श्रेणी का भजन है—इसमें आत्मा और परमात्मा का साक्षात्कार होता है। इसे कोई देखता नहीं, जानता नहीं। यह ध्यान है—समाधि है। भक्त लोग इसी को चाहते हैं। वे और कुछ नहीं चाहते।

"अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहौं निर्वान।
जन्म जन्म रुचि रामपद, यह वरदान न आन॥"

—तुलसी

आजकल इन सब विषयों पर लोग बहुत कम विचार करते हैं, पर यह "ध्यान" का विषय बड़े महत्त्व का है। नवीन और प्राचीन दोनों सिद्धान्तवाले इसको मानते हैं। बगैर इसके कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता—ध्यान की क्रिया के माने हैं—मनुष्य की सारी शक्तियों को—आत्मा, बुद्धि, अहंकार, मन, इन्द्रियाँ, शरीर सबको एक काम पर जमाना। यह अभ्यास से ही हो सकता है—जो मनुष्य अँगुली से माला जप रहा है, पर आँख से सुन्दरी को देख रहा है और चित्त से धन की सोच रहा है, वह सूखे पत्ते के ऐसा है जो हवा के झोंको से उड़ा करता है।

जब द्रोणाचार्य अपने शिष्यों को तीर चलाना सिखाने लगे, तो पेड़ पर बैठे पक्षी को निशाना बनाकर सबको दिखाया। किसी ने पेड़ देखा, किसी ने पत्ते देखे, किसी ने पक्षी देखा, पर अर्जुन ने कहा कि मुझे तो सिवा पक्षी की आँख के और कुछ दिखाई नहीं देता। पाठक समझ लें कि अर्जुन और साधारण मनुष्यों में यही ध्यान का अन्तर है।

"व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥"

—गीता २।४१

हरिभजन

हरि बोल, हरि बोल, बोल हरि बोल।
मुकुन्द माधव गोविन्द बोल।

भजन का प्रभाव

(ले०—श्री सत्यस्वरूप शास्त्री)

भक्ति भगवत्प्राप्ति का एकमात्र साधन है। भगवान् स्वयं कहते हैं "भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया"—अनन्य भक्ति से मिलता हूँ। भक्ति और भजन दोनों शब्दों में एक ही धातु (भज सेवायाम्) और एकार्थक (भावार्थक) प्रत्यय हैं। परंतु शब्दप्रयोग में कुछ भेद हो गया है।

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥"

इन आठों क्रियाओं की भक्ति कीर्तन और स्मरण की भजन नाम से अधिक प्रसिद्धि है। इस भजन-रूप भक्ति का मन और बुद्धि, शरीर और समाज पर बड़ा कल्याणकारी प्रभाव पड़ता है। शास्त्रों, पुराणों और भक्तजनों की वाणी में सब साधनों से भजन की ही उत्कृष्टता बताई गई है।

भगवत्प्राप्ति के लिए भजन अत्यन्त उत्कृष्ट, सरलतम और सुनिश्चित साधन है। जिन अधम जीवों के उद्धार की कोई आशा न रही हो, जिनका मन दुर्वासनाओं और शरीर दुराचारों का अड्डा बन गया हो, जो आत्मोन्नति के एकमात्र आधार आचार को खो चुके हों, उनके लिए क्या उपाय है? शास्त्र उत्तर देते हैं 'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः' आचारहीन को वैदिक कृत्य पवित्र नहीं करते। ठीक है, कानून खूनी को प्राणदण्ड देगा। परंतु यदि सम्राट् प्रसन्न हो जाय, तो क्या माफी नहीं मिलती? भगवान् सम्राटों के सम्राट् हैं, दयालु हैं; आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी कोई भी पुकार करे वे उसे अपनाते हैं। वे पतितों का भी उद्धार करते हैं, इसलिए उनका नाम पतितपावन है। वे स्वयं घोषणा करते हैं:—

"अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यक् व्यवसितो हि सः
—गी० ९

जैसे अग्नि का जलाना धर्म है, वैसे हरिभजन पापों का नाश करना स्वाभाविक धर्म है—

"हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपिस्मृतः।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥"

हरि दुष्टों को भी अपनाते हैं, भजन ही केवल साधन है जिससे पतित भी पवित्रता और दुराचारी साधुता प्राप्त कर सकता है।

भजन केवल गये गुजरों का ही मार्ग न 'ईश्वरप्रणिधानाद्वा' इस योगसूत्र में भगवान् पतञ्जलि ने ईश्वरप्रणिधान को योगसाधनासंलग्न साधकों के लिए समाधिप्राप्ति का प्रधान साधन कहा है। ईश्वर के नामप्रणव का उच्चारण और उसका स्मरण प्रणिधान है। इस सूत्र के भाष्य में व्यास लिखते हैं:—'भक्तिविशेषादावर्जित ईश्वरस्तमनुगृह्णाति' अर्थात् वाचिक (जप) और मानसिक (स्मरण) भजन से आकृष्ट भगवान् साधक पर अनुग्रह करते हैं। के सूत्र में इसका फल बताया है:—"ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽपि अन्तरायाभावश्च" इस (ईश्वरभजन) से पुरुषख्यातिरूप समाधिप्रज्ञा होती है और व्याधि, स्त्यान (अकर्मण्यता), संशय, प्रमाद और आलस्य आदि अन्तरायों (विघ्नों) का अभाव होता है। इससे स्पष्ट है कि भजन का साधक के मन और बुद्धि के अतिरिक्त शरीर पर भी कैसा कल्याणकारी प्रभाव पड़ता है।

भगवान् भजन करनेवाले के साथ रहते हैं। गीतगोविन्द का जंगलों में गाना राजाज्ञा से बंद कर दिया गया था, क्योंकि जगन्नाथ की मूर्ति के वस्त्र झाड़ियों में फँसकर फट गये थे। जहाँ भगवान् का कीर्तन होता है, वे वहीं उपस्थित होते हैं। उन्होंने स्वयं आदि भक्त नारदजी को कहा है—

"नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद!"

इसी कारण से भक्तशिरोमणि नारदजी ने अपने प्रसिद्ध भक्तिसूत्रों में लिखा है—"स कीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवति अनुभावयति भक्तान्" ईश्वर कीर्तन करने से शीघ्र ही आविर्भूत होकर अनुग्रह करते हैं। भजन का प्रभाव मनुष्य पर एक ही काल में कई रूपों में पड़ता है। भगवद्धर्म के प्रधान ग्रन्थ श्रीमद्भागवत में कहा है:—"जैसे भोजन करने से पुरुष को हर एक कौर खाने पर एक साथ ही सुख मिलता है, पेट भरता है, और भूख मिटती है; वैसे ही प्रत्येक पल में हरिकीर्तन से भक्त की भक्ति बढ़ती है, हृदय में प्रेम के लक्ष्य भगवान् का उदय होता है और अन्य वस्तुओं से विरक्ति होती है। (श्री म० भा० ११-२-४२) इत्यादि पौराणिक प्रमाणों से हरिकीर्तन की सर्वसाधनों से उत्कृष्टता प्रमाणित होती है।

यद्यपि शास्त्रों में आत्मोन्नति के अनेक साधन बताये हैं, परंतु कलियुग में और साधनों का अनुष्ठान अशक्य है, अतः भजन ही एकमात्र उपाय है। औषधियों में रस, राजाओं में वीरता, ब्राह्मणों में विद्या का ह्रास हो गया। जनता में श्रद्धा नहीं रही। भारत पर सदियों से शत्रुओं के आक्रमण हुए। पराधीनता आई। साथ ही उसके फल कायरता, अविद्या और अकर्मण्यता भी पधारे। अलौकिक विद्याएँ और सद्ग्रन्थ लुप्त हो गये। अत्याचारों की मात्रा बढ़ती गई। लोग सहते गये। आखिर अत्याचारों से पीड़ित बूढ़ा भारत भक्तों के आर्तनाद में भगवान् से सहायता के लिए पुकार उठा। भक्तों ने अपनी वाणी में ईश्वर को धर्मरक्षक, भक्तवत्सल आदि संबोधनों से जनता को उत्साह दिया कि गज, सुग्रीव और द्रौपदी की तरह भगवान् हमारी सहायता करेंगे। ईश्वर का नाम ही हमारा उद्धार करेगा। इससे हिंदूजाति की धार्मिक भावना व्यवस्थित हो गई। भक्तों ने अपनी वाणी में नाम की महिमा गाई। कबीर ने कहा—जब तक हमे राम याद रहेगा, हमें कोई अपवित्र नहीं कर सकता। एक बार नामोच्चारण से "देही कितकी वापरी पवितर होइगो ग्राम" देह विचारी क्या, राम का नाम लेते ही ग्राम पवित्र हो जायगा। महात्मा तुलसीदासजी ने कहा—"कलियुग योग न यज्ञ न ज्ञाना। एक आधार रामगुनगाना।" तर्कशास्त्र के अध्ययन के बाद महाप्रभु चैतन्य ने फैसला दिया।

"हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।"

कलियुग में हरिनाम के सिवा और कोई मार्ग नहीं। गुरु नानक आदि दस गुरुओं के सिद्धान्त का निचोड़ एक ही पङ्क्ति में है "सर्वरोग को औषध नाम।" यह थी सब भक्तों की धारणा। समय के फेर से दुनिया के सब व्यवहार में परिवर्तन होता रहता है, परंतु आध्यात्मिक भावनाओं में परिवर्तन का प्रभाव कम पड़ता है। वही सत्य, धर्म, प्रार्थना, सहानुभूति और दया आदि के भाव सब समाजों में बहुत काल से एक जैसे ही चले आये हैं, और चलते रहेंगे। प्रायः सब धर्मों में ईश्वरप्रार्थना का महत्त्व माना जाता है। जब किसी समाज या व्यक्ति पर विपत्ति आ पड़े, तो भजन का पूर्ण महत्त्व उसे ज्ञात होता है। किसी शायर ने कहा है—

"जब मायूसी दिलों पै छा जाती है।
दुश्मन से भी नाम तेरा जपवाती है॥"

हजरत मोहम्मद साहब
और
उनका सर्वश्रेष्ठ भजन 'कलमा'

(ले० — शाह श्री अब्दुल अलीम सिद्दीकी)

इतिहास पढ़ने से हमें यह बात स्पष्ट विदित हो सकती है कि प्रत्येक देश में ईश्वर की प्रेरणा से शुद्ध तथा पवित्र आत्मा उत्पन्न होती हैं। वे लगन के साथ ईश्वरभजन में मग्न होकर जहाँ अपने जीवन को सफल बनाती हुई मोक्षाधिकारिणी बनती हैं, वहीं वे अन्य लोगों को भी अपने सदुपदेशों से ईश्वरभक्ति का प्याला पिलाने की चेष्टा करती हैं। महात्मा बुद्ध, ईसा, मूसा, दाऊद, सुकरात, पाइथागोरस आदि इस बात के ज्वलन्त प्रमाण हैं। इसी प्रकार हमारे धर्म के पूज्य प्रवर्तक दीन इस्लाम के सूर्य हजरत श्री मोहम्मद साहब अति ईश्वरभक्त और प्रभु अनुरागी थे। आपका कलमा ही इस बात की गवाही देता है कि आप ईश्वरपूजा के अतिरिक्त और किसी की पूजा व्यर्थ बतलाते हैं। देखिए—

'लाइलाहाइलल्लाह।'

(अल्लाह के सिवा कोई पूजने योग्य नहीं है।) कलमा हर समय आपकी जिह्वा पर मौजूद रहता

आपके विषय में रवायत है कि आप कोहे हि[illegible] जाकर हर समय खड़े होकर इतनी उपासना तथा भक्ति करते थे कि आपके पैरों पर वरम (सूजन) जाता था। आपको उठते बैठते, चलते फिरते ईश्वर का ध्यान रहता था। आपकी यही शिक्षा सबके थी कि ईश्वरभजन किया करो, नमाज पढ़ो, जि[illegible] परलोक में पहुँचकर मुक्ति के अधिकारी बन स[illegible]

नर्क और स्वर्ग

(ले० — श्री मोहनलाल गुप्त)

दूसरे का दोष सुन, मुदित मन होते जो,
अपनी बुराई सुन, रोष जो जनाते हैं।
दूसरों को सुखी देख जलते जो रात दिन,
आड़ में बुराई, प्रकट बातें बनाते हैं॥
चुगली, चपाटी, अपवाद औ' विवाद में जो,
मांस औ' मदिरा में मौज नित उड़ाते हैं।
'मोहन' वे झूठे, हत्यार, दुराचारी, नीच,
पापी औ' पखंडी नर घोर नर्क पाते हैं॥
देश हित, लोक हित, धर्म हित मरते जो,
सत्य, धर्म, नेम, कर्तव्य निज पालते हैं।
सबके सहायक जो, सहते हैं सबही की,
सबमें सर्वत्र जो ईश को ही मानते हैं॥
हित अनहित में जो रहते हैं सदा सम,
सात्विक जो कर्म सद्भाव निज रखते हैं।
हिंसा मद क्रोध रहित होते हैं पंडित[1] जो,
हरिपद कमलों के, भृङ्ग स्वर्ग वे जाते हैं॥

१—पण्डित शब्द का भाव पण्डित (ब्राह्मण) नहीं है, कि[illegible]

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥

जो पराई स्त्री में माता की, पराये धन में मिट्टी के ढेले की संसार भर के प्राणियों में अपने पन की दृष्टि रखता है वह पण्डि[illegible]

जैनधर्म और भजन

(ले० —श्री ऋषभकुमार)

भजन और प्रार्थनाओं का ऐसा व्यापक प्रचार है कि संसार के सभी धर्मों और संप्रदायों के कुछ न कुछ अपने भजन हैं ही। किसी धर्म में ईश्वर के भजन हैं, तो किसी में महापुरुषों तथा आदि प्रवर्तकों के गुणानुवाद के ही भजन हैं। सारांश, किसी न किसी रूप में सभी स्तुति, प्रार्थना और भजन करते हैं।

जैनमतावलम्बियों के यहाँ भी अनेक भजनादि प्रचलित हैं। कितने ही पाली में हैं तथा कितने ही संस्कृत में हैं। आज दिन बहुत से हिंदीभाषा में भी बन चुके हैं। भक्तामरस्तोत्र, जिनसहस्रनाम, सुप्रभातस्तोत्र, अद्याष्टक, महावीराष्टक आदि कितने ही बहुत प्रचलित हैं। हिंदी में भी अनेक स्तुतियाँ आदि प्रचलित हैं। समय के परिवर्तन के अनुसार, अब हिंदी के ही भजन अधिकांश जैनमतावलम्बियों में प्रचलित हैं। अतः यहाँ हम संस्कृत का 'महावीराष्टक स्तोत्र' और हिंदी की प्रातः तथा सायं स्तुति देते हैं।

महावीराष्टक स्तोत्र

(यह स्तोत्र प्राचीन कविवर श्री भागचन्द्र का वनाया हुआ है। भगवान् महावीर की वन्दना इसमें प्रधान है। इसके पद्यानुवाद करनेवाले श्री पं० बुद्धूलालजी हैं।)

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः
समं भान्ति ध्रौव्यव्ययजनिलसंतोऽन्तरहिताः ॥
जगत्साक्षी मार्गप्रकटनपरो भानुरिव यो
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥ १ ॥

(चेतन अचेतन तत्त्व जेते, हैं अनंत जहान में
उत्पाद व्यय ध्रुवमय मुकुरवत्, लसत जाके ज्ञान में।
जो जगतदरशी जगत में सन्मार्गदर्शक रवि मनो
ते वीर स्वामीजी हमारे नयनपथगामी बनो ॥)

अताम्रं यच्चक्षुः कमलयुगलं स्पन्दरहितं
जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि ॥
स्फुटं मूर्त्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥ २ ॥

(टिमिकार विन जुग कमललोचन, लालिमा तें रहित हैं
बाह्य अंतर की क्षमा को, भविजनों से कहत हैं।
अति परम पावन शांति मुद्रा, जासु तन उज्वल घनो
ते वीर स्वामीजी हमारे नयनपथगामी बनो ॥)
नमन्नाकेन्द्रालीमुकुटमणिभाजालजटिलं
लसत्पादाम्भोजद्वयमिह यदीयं तनुभृतां ॥
भवज्वालाशान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमयी
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ३ ॥
(जिहि स्वर्गवासी विपुल सुरपति, नम्रतन ह्वै नमत हैं
तिन मुकुटमणि के प्रभामंडल, पद्मपद[1] में लसत हैं।
जिन मात्र सुमरनरूप जलसे, हनै भव आतप घनो
ते वीर स्वामीजी हमारे नयनपथगामो बनो ॥)
यदर्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह
क्षणादासीत्स्वर्गी गुणगणसमृद्धः सुखनिधिः ॥
लभन्ते सद्भक्ताः शिवसुखसमाजं किमु तदा ?
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥ ४ ॥
(मन मुदित ह्वै मंडूक ने, प्रभुपूजवे मनशा करी
तत् छन लही सुख सपदा, बहु रिद्धि गुण निधि सों भरी।
जिहि भक्ति सों सद्भक्त जन लहैं, मुक्ति पुर कौ सुख घनो
ते वीर स्वामीजी हमारे नयनपथगामी बनो ॥)
तपस्स्वर्णाभासोऽप्यपगततनुर्ज्ञाननिवहो
विचित्रात्माप्येको नृपतिवरसिद्धार्थतनयः ॥
अजन्मापि श्रीमान् विगतभवरागोद्भुतगति-
र्महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥ ५ ॥

१ कमलरूपी चरणों में

(कंचन तपतवत् ज्ञाननिधि हैं, तदपि तनवर्जित रहैं
जो हैं अनेक तथापि इक, सिद्धार्थसुत भवरहित हैं।
जो वीतरागी गतिरहित हैं, तदपि अद्भुत गतिपनो
ते वीर स्वामीजी हमारे नयनपथगामी बनो ॥)
यदीया वाग्गङ्गा विविधनयकल्लोलविमला
बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति ॥
इदानीमप्येषा बुधजनमरालैः परिचिता
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥ ६ ॥
(जिनको वचन मय अमल सुरसरि, विविधनय लहरैं धरैं
जो पूर्णज्ञान स्वरूप जल से, नहन भविजन को करैं।
तामें अजौं लगि घने पंडित, हंस ही सोहत मनो
ते वीर स्वामीजी हमारे नयनपथगामी बनो ॥)
अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवनजयी कामसुभटः
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः ॥
स्फुरन्नित्यानन्दप्रशमपदराज्याय स जिनः
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥ ७ ॥
(जाने जगत् की जंतु जनिता, करी स्ववश तमाम है
है वेग जाको अमिट ऐसो, विकट अतिभट काम है।
ता को स्वबल से प्रौढ वय में, शांति शासन हित हनो
ते वीर स्वामीजी हमारे नयनपथगामी बनो ॥)
महामोहातङ्कप्रशमनपराकस्मिकभिषग्
निरापेक्षो बन्धुर्विदितमहिमामङ्गलकरः ॥
शरण्यः साधूनाम् भवभयभृतामुत्तमगुणो
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥ ८ ॥
(भयभीत भव हैं साधुजन को, शरण उत्तम गुण भरे
निःस्वार्थ के ही जगत बांधव, विदितयश मंगल करे।

जो मोहरूपी रोग हनिवे, वैद्यवर अद्भुत मनो
ते वीर स्वामीजी हमारे नयनपथगामी बनो ॥)
महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या भागेन्दुना कृतम् ।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमां गतिम् ॥
दोहा—महावीर अष्टक रच्यो, भागचंद रुचि ठान ।
पढ़ैं सुनैं जे भावसों, ते पावें निरवान ॥
प्रार्थना—भागचंद पंडित महा, कियो ग्रन्थ गंभीर ।
मैं मतिमित[1] भाषा करी, शोधो सुधी सुधीर ॥

प्रातःकाल की स्तुति

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर भविजन की अब पूरो आस ।
ज्ञानभानु का उदय करो मम मिथ्या तम का होय विनाश ॥ १ ॥
जीवों की हम करुणा पालें झूठ वचन नहिं कहैं कदा ।
परधन कबहूँ न हरहुँ स्वामी ब्रह्मचर्यव्रत रहें सदा ॥ २ ॥
तृष्णा लोभ बढ़ै न हमारा तोष सुधा नित पिया करें ।
श्री जिनधर्म हमारा प्यारा तिसकी सेवा किया करें ॥ ३ ॥
दूर भगावें बुरी रीतियाँ सुखद रीति का करें प्रचार ।
मेल मिलाप बढ़ावैं हम सब धर्मोन्नति का करें प्रचार ॥ ४ ॥
सुख दुख में हम समता धारैं रहें अचल जिमि सदा अटल ।
न्यायमार्ग को लेश न त्यागें वृद्धि करें निज आतमबल ॥ ५ ॥
अष्टकर्म जो दुख देते हैं तिनके क्षय का करें उपाय ।
नाम आपका जपैं निरन्तर विघ्नरोग सब ही टर जाय ॥ ६ ॥
आतम शुद्ध हमारा होवे पाप मैल नहिं चढ़े सदा ।
विद्या की हो उन्नति हममें धर्मज्ञान हूँ बढ़े सदा ॥ ७ ॥
हाथ जोड़कर शीस नवावें तुमको भविजन खड़े खड़े ।
यह सब पूरो आस हमारी चरण शरण में आन पड़े ॥ ८[2] ॥

१ मति माफिक   २ । प्रारम्भ में भी जैनप्रार्थनाएँ दी हुई हैं । उन्हें भी देखिए. —सं०

न व नी त

जिस प्रकार भारतवर्ष को संसार में सबसे अधिक भक्तों और भजनीकों के पैदा करने का श्रेय प्राप्त है उसी प्रकार भारतीय साहित्य भी भगवद्भजन से रँगा हुआ है। भारत की एक एक प्रान्तीय भाषाओं में जितने भजन मिलेंगे, उतने शायद किसी भी एक विशाल अभारतीय भाषा में नहीं मिल सकते। यों तो मुसलमान और ईसाइयों के यहाँ कुरान और बाइबिल जैसे धर्मग्रन्थ मौजूद हैं, जिनका बहुत अधिक महत्त्व है, पर हमारे यहाँ जिस प्रकार सामाजिक जीवन में भक्तों की बहुत संख्या रही है उसी प्रकार बहुसंख्यक साहित्यकार भक्त ही हुए हैं। इन भक्त कवियों और साहित्यकारों का स्थान भी कवि और कलाकार के रूप में सर्वोच्च रहा है। बाल्मीकि, व्यास, तुलसी, सूर, मीरा, कबीर, प्रेमानन्द आदि का उदाहरण प्रत्यक्ष ही है। इन लोगों के काव्य में कोरा ज्ञानोपदेश या चेतावनीमात्र नहीं है, बल्कि उनमें भावुक भक्तों का हृदय ही वर्ण वर्ण में अङ्कित है। वस्तुतः पूछा जाय, तो कवित्त्व की यही पराकाष्ठा है। यों तो कविता की परिभाषा की ही नहीं जा सकती; फिर भी इसका कुछ आभास पाने के लिए हम कविता को 'दो हृदयों की भाषा' मान सकते हैं। तात्पर्य यह कि कविता का जन्म भी हृदय के भावों से ही हुआ हो, वह केवल शब्दाडम्बरमात्र या मस्तिष्क की कसरत न हो; दूसरे वह पढ़ने या सुनने-वाले के भी हृदय को स्पर्श करे। इस कसौटी पर तो हमारे यहाँ के अधिकांश भजन ही कसे जा सकते हैं। अन्य कविताओं में तो प्रायः अलंकार और पिङ्गल का वह चक्कर रहता है कि जन्मदाता और उपभोक्ता दोनों को ही हृदय की ओर देखने का अवकाश नहीं मिल सकता, फिर काव्य में उसी हृदय को प्रतिबिम्बित करने और ढूँढ़ने की तो बात ही क्या है ?

अब हम क्रम से एक एक काल के थोड़े बहुत भजन और स्तुतियाँ आप लोगों के समक्ष रखेंगे। आप स्वयं रसास्वादन करिए और देखिए की उनमें भक्ति, कवित्व और निश्छलता का कितना अनोखा संमिश्रण है।

वेद—

वैदिक काल सबसे पुराना माना जाता है। इसलिए हम पहले वेदों से ही प्रारम्भ करते हुए देखते हैं कि वेदों में तो उपासना और यजन आदि के ही मन्त्र भरे पड़े हैं। कहीं अग्नि और सूर्य की तथा कहीं इन्द्र, वरुण आदि अनेक देवताओं की वन्दनाएँ, प्रार्थनाएँ और स्तुतियाँ भरी पड़ी हैं। ऐसी दशा में कोई भी पाठक वेदों को उठाकर भजनों का एक विशाल ढेर देख सकता है और उनका स्वाध्याय करके सच्चा आनन्द प्राप्त कर सकता है। यहाँ उदाहरण देना कठिन है, अतः इस विषय पर एक छोटा सा स्वतन्त्र लेख किसी अङ्क में प्रकाशित किया जायगा। पाठक उसे आगे पढ़ेंगे।

उपनिषद् और श्रुति—

उपनिषद् वस्तुतः वेद का ही एक अङ्ग हैं। इन्हें वेदान्त कहते भी हैं। इनमें आत्म संबन्धी बातें भरी पड़ी हैं। ज्ञान विज्ञान के रहस्यों का जितना अधिक उद्घाटन इनमें हुआ है और कहीं नहीं मिलता। आज भी यदि वेदान्तदर्शन का कोई अच्छा ज्ञाता बनना चाहता है, तो उपनिषद् पढ़ना ही पड़ेगा। वस्तुतः भारत के बौद्धिक विकास के ये एक जीवित उदाहरण हैं। पढ़कर हमें आश्चर्य ही होता है कि क्या मनुष्य का मस्तिष्क इतना अधिक भी विचार सकता है!

इस आत्मविद्या के साथ ही अनेक उपनिषदों में देवताओं की वन्दनाएँ और प्रार्थनाएँ भी हैं। इन्हें हम समय समय पर निकले हुए हृदय के उद्गार कह सकते हैं। यहाँ उन्हीं में से कुछ देवताओं की एक आध वन्दनाएँ उद्धृत की जाती हैं। ये प्रार्थनाएँ बहुत प्राचीन काल से प्रचलित हैं। कुछ उपनिषदों में मिलती हैं तथा कुछ यों ही परंपरा से प्राप्त हैं, पर सभी श्रुतिरूप में हिंदूसमाज में मान्य हैं।

गणपतिवन्दना—

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
अभयं वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥
भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्।
आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात्परम्॥
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः॥

(गणपत्युपनिषद्)

(एक दाँतवाले, चार हाथवाले, पाश और अङ्कुश धारण करनेवाले, अभयरूप, वर देनेवाले हाथों से शोभायमान, मूषक ध्वजावाले, रक्त वर्ण, लम्बोदर, शूर्पकर्णवाले, रक्त वस्त्रवाले, रक्त गन्ध से अनुलिप्त अङ्गवाले, रक्त पुष्पों से पूजित, भक्तों पर दया करनेवाले, देव, जगत् के कारण, अच्युत, निर्विकार, सृष्टि के आदि में आविर्भूत होनेवाले, प्रकृति और पुरुष से पर देव का जो नित्य ध्यान करता है वह योगी वह योगियों में श्रेष्ठ है।)

सद्गुरुवन्दना—

नित्यानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
विश्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।

एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥

(शुकरहस्य)

(नित्य, आनन्दरूप, परम सुखदायक, केवल, ज्ञानमूर्ति, विश्व से अतीत, आकाशसम, 'तत्त्वमसि' आदि के लक्ष्य, एक, नित्य, निर्मल, अचल, सर्वबुद्धियों के साक्षीभूत, भावों से अतीत, तीनों गुणों से रहित, उन सद्गुरु (सच्चिदानन्द) को नमस्कार है ।)

देवीवन्दना—

हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां प्रातःसूर्यसमप्रभाम् ।
पाशाङ्कुशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम् ॥
त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे ।
नमामि त्वामहं देवीं महाभयविनाशिनीम् ॥
महादुर्गप्रशमनीं महाकारुण्यरूपिणीम् ॥

(देव्युपनिषद्)

(हृदयकमल में स्थित, प्रातः सूर्य के समान प्रभावाली, पाश, अङ्कुश लिये हुए, वरद और अभय हाथवाली, तीन नेत्रवाली, रक्त वस्त्रवाली, भक्तों की कामधेनु को मैं भजता हूँ । आप महाभयनाशिनी, महादुर्गों को शान्त करनेवाली, महान् दयारूपिणी देवी को मैं नमस्कार करता हूँ ।)

सूर्यवन्दना—

नमो मित्राय भानवे मृत्योर्मा पाहि ।
भ्राजिष्णवे विश्वहेतवे नमः ॥
सूर्याद्भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु ।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च ॥

(सूर्योपनिषद्)

(नमस्कार है मित्र भानु के लिए । मृत्यु से हमारी रक्षा कीजिए । शोभायमान विश्व के हेतु के लिए नमस्कार है । सूर्य से भूत उत्पन्न होते हैं, सूर्य से पालन किये जाते हैं, सूर्य में लय होते हैं । जो सूर्य हैं, वही मैं हूँ ।)

शिववन्दना—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद्)

(जो रुद्र देवताओं का उत्पन्न करनेवाला और ऐश्वर्य देनेवाला है, विश्व का अधिपति है, है, जिसने पूर्व में हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया है वह हमको शुभ बुद्धि से युक्त करे ।)

विष्णुवन्दना—

श्रीमन्नारायणो ज्योतिरात्मा नारायणः परः ।
नारायण परं ब्रह्म नारायण नमोऽस्तु ते ॥

(त्रिपादनारायण)

(श्रीमत् नारायण ज्योतिस्वरूप हैं, नारायण परमात्मा हैं, नारायण परब्रह्म हैं, हे नारा[यण] आपको नमस्कार है ।)

कृष्णवन्दना—

वेणुनादविनोदाय गोपालायाहिमर्दिने ।
कालिन्दीकूललोलाय लोलकुण्डलधारिणे ॥
बल्लकीवदनाम्भोजमालिने नृत्तशालिने ।
नमः प्रणतपालाय श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥

(गो० पू० ता०)

(वेणु के नाद में विनोद माननेवाले, गोपाल, सर्प को नाथनेवाले, कालिन्दी के किनारे पर चल[ने]वाले, चञ्चल कुण्डल धारण करनेवाले, बल्लकी मुखवाले, कमलमाली नृत्तशाली के लिए नमस्कार है प्रणतपाल श्री कृष्ण के लिए नमस्कार है, नमस्कार है ।)

रामवन्दना—

नमो वेदादि रूपाय ॐ काराय नमो नमः ।
रमाधाराय रामाय श्रीरामायात्ममूर्तये ॥

(रा० पू० ता०)

(वेदादिरूप के लिए नमस्कार है, ॐकार के लिए नमस्कार है । लक्ष्मीधर के लिए, राम [के] लिए, आत्ममूर्ति श्री राम के लिए नमस्कार है ।)

हरे राम हरे कृष्ण—

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
इति षोडशकं नाम्ना कलिकल्मषनाशनम्।
नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु दृश्यते ॥

(कलिसंतरणोपनिषद्)

('हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे' ये सोलह नाम कलि के पापों को नाश करनेवाले हैं। इनसे श्रेष्ठ अन्य उपाय वेदों में देखने में नहीं आता।)

गीता—

वेदान्त के सर्वस्व उपनिषदों के ही समान गीता का भी स्थान बड़े महत्त्व का है। यह समस्त इतिहास का नवनीत मानी जाती है। इसमें स्वयं भगवान् ने अर्जुन के बहाने से संसार को भक्ति, ज्ञान, योग आदि का उपदेश किया है। भगवान् के भजन के ऊपर भी इसमें बहुत कुछ लिखा है। वह सब इसी अङ्क में श्री गीतानन्दजी के 'प्रश्नोत्तर' * वाले अंश में लिखा है। पाठकगण उसे पढ़ सकते हैं। यहाँ तो हम केवल गीता में का प्रधान भजनभाग ही दे रहे हैं।

जिस समय भगवान् ने अर्जुन को अपना विश्वरूप दिखलाया, उस समय उसे विश्वास हुआ कि सचमुच उसके सखा और सारथी श्री कृष्णचन्द्र साधारण व्यक्ति नहीं हैं। वे स्वयं भगवान् हैं। समस्त चराचर के निवास हैं। इस भाव से प्रेरित होकर साधारण जीव की भाँति भक्तिपूर्ण हृदय से उसने जो भगवान् की स्तुति की है वह भजन का एक उत्कृष्ट नमूना है। कोई भी व्यक्ति उसी भजन का गान करके अर्जुन के ही समान भगवान् का प्रेमपात्र बन सकता है।

देखिए—भगवान् का विश्वरूप देखते समय अर्जुन भयाकुल हो उठा है और प्रार्थना कर रहा है—

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥

—११।१८

× × ×

इसके बाद स्वयं भगवान् के मुख से उनके रूप को सुनकर अर्जुन बिल्कुल भयभीत हो उठता है और गद्गद् कण्ठ से प्रार्थना करने लगता है—

* देखिए पेज १५१९

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥
त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥
वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥
नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥
सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥
पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥
तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥
अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥
किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते[1] ॥

—गी० ११।३७।४६

हिंदी—

हिंदीसाहित्य में भी अनेक भक्त कवि हुए हैं, लेकिन सबके भजनों का संग्रह करना और देना स्वल्पसमयसाध्य नहीं और न एक साधारण लेख में छापा ही जा सकता है। इसी से यहाँ हम केवल हिंदीसाहित्य के कुछ चुने हुए भक्त कवियों के थोड़े बहुत भजन देकर ही संतोष करेंगे। आशा है, हमारे पाठक भी गागर में ही सागर का आनन्दलाभ कर लेंगे।

१—गीता के पूरे ग्यारहवें अध्याय की व्याख्या आगामी अङ्क शेषाङ्क में देखिए।

राम राम रमु—

राम राम रमु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा।
रामनाम, नवनेह मेह को, मन! हठि होहि पपीहा ॥ १ ॥
सब साधनफल कूप सरित सर, सागर सलिल निरासा।
रामनाम रति स्वाति सुधा सुभ, सीकर प्रेमपियासा ॥ २ ॥
गरजि तरजि पाषान बरषि पवि, प्रीति परखि जिय जानै।
अधिक अधिक अनुराग उमँग उर, पर परमिति पहिचानै ॥ ३ ॥
रामनाम गति, रामनाम मति, रामनाम अनुरागी।
ह्वै गये, हैं, जे होहिंगे त्रिभुवन, तेइ गनियत बड़भागी ॥ ४ ॥
एक अंग मग अगम गवन कर, बिलमु न छिन छिन छाहैं।
'तुलसी' हित अपनो अपनी दिसि, निरुपधि, नेम निबाहैं ॥ ५ ॥

—तुलसीदास

× × ×

नाम का आधार—

है हरिनाम को आधार।
और या कलिकाल नाहिंन, रह्यो विधि ब्योहार ॥ १ ॥
नारदादि सुकादि संकर, कियो यहै विचार।
सकल स्रुति दधि मथत पायो, इतो यह घृतसार ॥ २ ॥
दसहु दिसि गुन करम रोक्यो, मीन को ज्यों जार।
'सूर' हरि के भजनबल ते मिटि गयो भवभार ॥ ३ ॥

—सूरदास

× × ×

रामगोविंदहरी—

भजो रे भैया रामगोविंदहरी।
जप तप साधन कछु नहिं लागत, खरचत नहिं गठरी ॥१॥
संतत संपत सुख के कारन, जासों भूल परी ॥२॥
कहत 'कबीरा' राम न जा मुख, ता मुख धूल भरी ॥३॥

—कबीरदास

(क्रमशः)

मुसलमानों और ईसाइयों में भक्ति भज

(ले०—श्री देवीनारायण एडवोकेट, बी० ए०, एल०-एल० बी०, विद्यासागर (काशी), मुंशी [इलाहाबाद], बनार

(यवने ध्यानं जिनेऽहिंसा वैष्णवे भक्तिरुत्तमा । तांस्तुनैवोद्धरिष्यामि हिंसाशुचिविनिन्दकान् ॥

मुसलमानधर्म

हमारे शास्त्रों में भी मुसलमानों के ध्यान की प्रशंसा की गई है। मुसलमानों में बड़े बड़े फकीर, भक्त और सूफी हो गये हैं। उनके भजन, जप, तप व्रतादि के नियम बहुत उच्च कोटि के हैं। चार कार्य उनके यहाँ फर्ज याने अत्यन्त आवश्यक हैं—(१) नमाज, (२) रोजा, (३) हज्ज और (४) जकात।

नमाज में मुसलमान लोग ध्यान, जप और खुदा (परमेश्वर) को याद करते हैं, परंतु किसी मूर्ति अथवा व्यक्ति का ध्यान नहीं करते। केवल निराकार खुदा का ध्यान करते हैं। परमात्मा के गुणों (वस्फों) द्वारा उसको याद करते हैं। मुसलमान मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी हैं, इसलिए मुसलमानधर्म में गीत गाना, तसवीर बनाना, गहना पहनना आदि शृङ्गार के कार्य नितान्त विरुद्ध माने गये हैं।

नमाज पाँच समय में पढ़ी जाती है जिनके नाम और समय निम्नलिखित हैं।

(१) फजर की प्रातःकाल को,
(२) जोहर—बारह बजे दिन की,
(३) तीन चार बजे शाम को,
(४) मग़रिब—सायंकाल की,
(५) एशा—आठ बजे रात की,

इसके अलावा भी और नमाजे हैं, परंतु वे विशेष विशेष समय और अवसर पर पढ़ी जाती हैं। नमाज में निम्नलिखित क़ुरान की एक आयत अवश्य पढ़ी जाती है और इसके अतिरिक्त जो और आयतें उन्हें जिसकी जब इच्छा हो समयानुसार पढ़ सकते है। नमाज खड़े होकर पढ़ी जाती है। शि लोग हाथ खोलकर पढ़ते हैं और सुन्नी लोग हाथ बाँधकर। इसमें और भी सूक्ष्म भेद हैं जो स्था भाव से नहीं दिये जाते हैं। खड़े होने के बाद फिर झुकते हैं और बैठकर भगवान् का शिज्दा नमस्कार करते हैं, यह एक रेकत है। उक्त पाँ नमाजों में कुल सत्रह रेकतें होती हैं।

क़ुरान की आयत—

जो नमाज में अवश्य पढ़ी जाती है—

बिस्मिल्ला अल रहमान अलरहीम।
अलहमदोल्लिल्लाहे रब्बुल आलमीन।
अल रहमान अल रहीम।
मालिके यौमिद्दीन।
याका ना वोदोव इयाका निस्त ईन।
यह देनस सेरातल मुस्तक़ीन।
सेरातल लज़ीना अन अंता आलेहिम।
जैरिल मगजूवे अलेहिम वलद
जुआलीन ॥ आमीन ॥

अर्थ—आरम्भ करता हूँ अल्ला के नाम से जो कृपालु और दयालु है।

सब स्तुति उस परमात्मा की है जो पालनेवाला तमाम संसार का है।

वह बहुत मेहरवान और बड़ा रहम करनेवाला है।

कयामत याने प्रलय के दिन का स्वामी है। हम लोग तुझी को पूजते हैं। और तुझी से मदद माँगते हैं।

हमको सीधा रास्ता दिखा। उन लोगों का रास्ता जिनपर तेरी बखशिस है, उन लोगों का रास्ता नहीं, जिनपर तेरा क्रोध है, और भटके हुओं का भी नहीं। ऐसा ही हो।

मुसलमानों में एक बात बड़ी विशेष है—संगठन और भ्रातृभाव। कुरान आदि धर्मग्रन्थों में आज्ञा है कि जहाँ तक हो सके बहुत से मुसलमान मिलकर एक साथ जमाअत में नमाज पढ़ें, उसमें ज्यादा फल होता है। और जुम्मा याने शुक्रवार के दिन और ईद आदि पर्वों पर ये लोग लाखों की तायदात में बड़े प्रेम, भक्ति और उत्साह के साथ नियत समय पर एक साथ नेमाज अदा करते हैं। इसके लिए बड़ी बड़ी विशाल मसजिदें बनी हुई हैं। सारे संसार में इन-लोगों ने बड़ी बड़ी मसजिदें बनवाई हैं और वहाँ पादशाह से लेकर फकीर तक एक साथ, एक भाव से प्रेमपूर्वक मिलकर नमाज पढ़ते हैं। धर्म के साथ साथ संगठन का लक्ष्य मोहम्मद साहब ने आरम्भ ही से रखा। इसी से आज सारे संसार में चालीस करोड़ से अधिक मुसलमान हैं और सब पूर्णतया संगठित हैं।

रोजा भी मुसलमानधर्म का एक अत्यन्त आवश्यक कार्य है। मुसलमानों में बारह महीने होते हैं। जिसमें रमजान का एक महीना होता है। इसी महीने में रोजा रखा जाता है। यह बड़ा कठोर व्रत है। इसमें प्रातःकाल से लेकर सूर्यास्त तक कोई वस्तु ग्रहण नहीं की जाती। कठिन से कठिन गर्मी पड़े, पर पानी तक नहीं पी सकते। थूक तक भीतर घोंट नहीं सकते। इस व्रत में बहुत शान्ति, पवित्रता, अहिंसा, सत्यता, ब्रह्मचर्य आदि नियमों के साथ रहना पड़ता है। कुरानशरीफ और हदीस का यही आदेश है और हर एक मुसलमान को इसका पालन करना फर्ज है। रमजान में कुरान का पाठ आवश्यक है। जिन मुसलमानों को कुरान कण्ठ होता है उन्हें 'हाफिज' कहते हैं।

हज्ज करना भी मुसलमानों के लिए फर्ज है। याने अपने जीवनकाल में कम से कम एक बार मक्का मदीना आदि स्थानों पर (जो अरब में हैं) जाना परम धर्म है। वह मुसलमान 'हाजी' कहलाता है, जो हज्ज कर आया है। उस हाजी साहब का बड़ा संमान होता है। शिया मुसलमान हज्ज के साथ साथ करबला भी अवश्य जाते हैं। करबला ईरान में है। यहीं मोहम्मद रसूल के नाती हजरत हुसैन मुसलमानों ही द्वारा मारे गये। इसी से शिया और सुन्नी का भेद भी मुसलमानों में पैदा हुआ जो अबतक है। उसका इतिहास बहुत बड़ा है और एक स्वतन्त्र विषय है, जो कि स्वतन्त्र लेख में आवश्यकता पड़ने पर लिखा जायगा।

जकात—जो आमदनी मुसलमान को हो उसमें से चालीसवाँ हिस्सा धर्म के कार्य में निकाल देना चाहिए। बड़े बड़े व्यापारी लोग लाखों रुपये जकात में निकालते हैं और इस्लाम की उन्नति में व्यय करते हैं; जैसे काशी (मदनपुरा) में ताजा वारिस के वंशज लाखों रुपये जकात निकालते हैं और इस काशी में नित्य प्रति इस्लाम की उत्तरोत्तर वृद्धि, पुष्टि और उन्नति करते जाते हैं, जिससे कि हम हिंदुओं का शिक्षा लेनी चाहिए।

मुसलमान लोग तन्त्र मन्त्र और माला द्वारा जप भी करते हैं। रात भर जागते हैं और जप करते हैं,

जिसको 'शब्बेदारी' कहते हैं। माला दो प्रकार की होती है। शिया लोगों की माला करबला की मिट्टी की होती है और सुन्नी लोगों की लकड़ी वगैरह अथवा और चीजों की; पर करबला की मिट्टी की नहीं। जप में कोई कलमा पढ़ता है, कोई और भी मन्त्र पढ़ते हैं।

कलमा—

ला इलाहा इललल्ला मोहम्मद रसूल उल्ला।

अर्थ—सिवा खुदा के कोई पूजने लायक नहीं है, मोहम्मद खुदा के भेजे हुए हैं।

एक आयत यूनिस की कुरान में है। लोग इसका भी जप माला पर ही करते हैं। जो अँधेरी कोठरी में बैठकर जप करते हैं उनका दुःख बहुत शीघ्र दूर हो जाता है, जैसे पैगंबर यूनियस का दुःख दूर हो गया था।

ला इलाहा इल्ला अंता सुजानका इन्नी कुंतो मिनज़् ज़ालमीन।

अर्थ—सिवाय तेरे कोई खुदा नहीं है और तू पाक है। मैंने अपने पर जुल्म किया है।

मुसलमानों में कथा का विशेष प्रचार है—जिसको मौलूदशरीफ और मजलिश कहते हैं। इसमें एक विद्वान् मेंबर मञ्च पर बैठकर श्रोतागण को इस्लाम-धर्मविषयक कथाएँ सुनाता है। मौलूदशरीफ में मोहम्मद साहब के जन्म की कथा कही जाती है और उनके गुणगान किये जाते हैं। शिया लोग बहुधा मजलिश में मोहम्मद साहब के दामाद हजरत अली और उनके पुत्र हजरत हसन हुसैन आदि के वध का वर्णन करते हैं और मोहम्मद साहब की एक-मात्र पुत्री फातिमा बीबी और हजरत अली आदि के गुणों का भी वर्णन करते हैं। बड़ी बड़ी लड़ाइयों और वीरताओं का भी वर्णन आता है।

मजलिसों में बड़ी उत्तम उत्तम कविताएँ होती हैं। उर्दू के कवि अनीस की मजलिसें लखनऊ में मशहूर थीं। उनकी कुछ कविता नीचे दी जाती है—

"लेकिन जहाँ से आज गुजरना ही खूब है।
इज्जत पै बात आये तो मरना ही खूब है॥
'गुरबत में कोई पूछनेवाला नहीं होता।
शम्अ भी जलावो तो उजाला नहीं होता॥
"गुस्ताख होके अर्ज किया है मोआफ हो।
हमने तो एक दिल भी न पाया जो साफ हो॥
"ऐसे भी बहुत हैं जिन्हें मिलता नहीं दाना।
पीने को जो पानी हो तो मिलता नहीं खाना॥
"भाई! है खुदा मालिक व मुख्तार व तवाना।
कुछ एक साँ रहता नहीं दुनिया में जमाना॥

ईसाईधर्म

इस समय ईसाईधर्म की सारे भूमण्डल में बड़ी उन्नति है। और ईसाई पादड़ी दुनिया के कोने कोने में ईसाईधर्म का प्रचार बड़े प्रेम और उत्साह से कर रहे हैं। करोड़ों रुपया इस कार्य में व्यय हो रहा है। ईसाई और मुसलमानधर्म में बहुत समानता है, जैसे हिंदू और बौद्धों में है। ईसाई और मुसलमान किताबी कहलाते हैं याने ईसाई लोग बाइबिल को अपना प्रधान धर्मग्रन्थ मानते हैं और मुसलमान लोग कुरान को। ईसा और बाइबिल को भी मुसलमान मानते हैं, पर प्रधान रूप से नहीं मानते। मूर्ति-पूजा के विरोध में दोनों एक हैं। हिंदुओं को दोनों हेय समझते हैं। मुसलमान लोग हिंदुओं को काफिर कहते हैं और इसाई लोग हीदन (heathen याने मूर्तिपूजक, जो सच्चे गॉड याने परमात्मा को नहीं मानते)।

ईसाई लोग ईसा (Lord Jesus Christ) को परमात्मा का प्यारा पुत्र मानते हैं। ईसा ने बड़े बड़े कष्ट उठाये और बड़ा सुधार किया, अन्त में यहूदियों ने उनको फाँसी के यन्त्र पर जिसे 'क्रास' (Cross) कहते हैं, लटका कर मार डाला। इसीलिए ईसाई लोग X क्रास के चिह्न को बड़ा पवित्र और पूजनीय मानते हैं। ईसाइयों का सिद्धान्त है कि जब ईसा ने कष्ट करके उपकार और धर्म के लिए शरीर त्याग दिया, तो हर एक ईसाई को कष्ट करके संसार में ईसाईधर्म का प्रचार करना चाहिए। ईसाइयों ने जंगल पहाड़ों में, दूर दूर भयंकर स्थानों पर भी जाकर अपने धर्म का प्रचार किया है, मुफ्त बाइबिलें बाँटी हैं, गिरजे बनवाये हैं, स्कूल, कालेज खोले हैं तथा ग़रीबों, असहायों, यतीमों, बच्चों और वृद्धों की सेवा की है। इस प्रकार हृदय पर प्रभाव डालकर गैर धर्मवालों को ईसाई बनाया और बराबर बनाते जाते हैं। भारत में भी कई करोड़ ईसाई हैं।

ईसाई लोग तीन बातों को बहुत मानते हैं—श्रद्धा विश्वास (Faith), आशा (Hope) और प्रेमभक्ति (Charity) । ईसाइयों में भी दो प्रधान भेद हैं (१) एक प्रोटेस्टेंट (Protestant) (२) दूसरा रोमन कैथोलिक (Roman Catholic)। इन दोनों मतों के अनुयायियों में बड़ा विरोध रहा है। और इस विरोध ने बड़े बड़े भीषण काण्ड किये हैं। इन दोनों मतों के गिरजे अलग अलग होते हैं। रोमन कैथोलिकधर्म के प्रधान पोप (Pope) हैं, जो इटली में रहते हैं और उन्हीं का हुक्म सारे संसार के रोमन कैथोलिक में चलता है। इंगलैंड अमेरिका आदि देशवासियों का मत प्रोटेस्टेंट है। वे लोग पोप को नहीं मानते। रोमन कैथोलिक लोग अपने गिरजों में ईसा और उनकी माता मेरी (Ava Maria) की मूर्ति अथवा तसवीर रखते हैं और पूजन करते हैं, पर प्रोटेस्टेंट लोग ऐसा नहीं करते। रोमन कैथोलिक लोग माला पर मन्त्रों का जप भी करते हैं। प्रोटेस्टेंट लोग केवल ईसा और बाइबिल को मानते हैं और किसी व्यक्ति अथवा ग्रन्थ को उस भाँति नहीं मानते।

ईसाई लोग गिरजा में जाते हैं और वहाँ प्रधान पादड़ी खड़े होकर बाइबिल और प्रार्थनाग्रन्थों में से भभगवान् को, जिनको वह गॉड (God) कहते हैं, स्तुति करते हैं। यह स्तुति सरविस (Service) कहलाती है। रविवार ईसाइयों में बहुत पवित्र दिन माना जाता है। उस दिन विशेष रूप से ईसाई एकट्ठे होकर गिरजा में बाइबिल आदि का पाठ करते हैं और धर्म आदि पर व्याख्यान सुनते हैं।

ईसाइयों में बाइबिल एक अपौरुषेय ग्रन्थ माना जाता है। उसमें से मैं कुछ भगवान् की स्तुति देता हूँ।

Psalm

Blessed is the man that walketh not in the counsel of the ungodly, nor standdeth in the way of sinners, nor sitteth in the seat of the scornful.

But his delight is in the law of the Lord; and in his law doth he meditate day and night.

(साम—वह मनुष्य सुखी है जो नास्तिकों की राय से नहीं कार्य करता, जो पापियों का साथ नहीं करता और जो घृणित मनुष्यों के पास नहीं बैठता। परंतु उसका आनन्द भगवान् के नियमों (याने बाइबिल) के पालन में है और उसी के ध्यान में वह दिन रात मग्न रहता है।)

Serve the Lord with fear, and rejoice with trembling.

(परमात्मा को डरते हुए भजो और काँपते हुए सुख मनाओ।)

Hear me when I call, O God of my righteousness. Thou hast enlarged me when I was in distress ; have mercy upon me and hear my prayer.

(ऐ परमात्मा, जब मैं अपने धार्मिक विचारों को प्रकट करूँ तो सुनो। जब मैं विपत्ति में था तब तुमने मेरी रक्षा की है, मेरे ऊपर दया करो और मेरी प्रार्थना सुनो।)

Stand in awe, and sin not. Commune with your own heart upon your bed and be still. Selath.

(भगवान् का भय करो और पाप न करो। अपने बिस्तरे पर से उसका ध्यान भजन करो और शान्त रहो।)

ईसाइयों में अलग अलग धर्मप्रचारक संघ और संस्थाएँ हैं जिनको चर्च के नाम से पुकारते हैं जैसे–

(१) एंग्लिकन चर्च। (Anglican Church)

यह चर्च इंगलेंड का है। अंग्रेजों के राज्य का यही चर्च है। इंगलेंड के राजा और भारतसम्राट् इसी गिरजा में जाते हैं। वाइसराय गवरनर आदि भारत में इसी चर्च में प्रार्थना करते और उत्सवों पर जाते हैं। यह स्टेट चर्च (State Church) कहलाता है और इसके गिरजा सब स्थानों पर है। भारत में भारतसरकार इसके खर्च में भाग ले[...] बिशप (Bishop) आदि का वेतन भारत[...] मिलता है।

(२) रोमन कैथोलिक चर्च (Roman C[...]olic) । यह पोप के आधीन है। यह स्टे[...] नहीं है। आयरलैंड (Ireland) में रोमन कै[...] अधिक हैं।

(३) इसके अलावा ग्रीक चर्च, (G[...] Church) मेथोडिस्ट चर्च (Methodist Chur[...] कांग्रेगेशनलिस्ट चर्च (Congregatio[...] Church) आदि भी हैं।

ईसाइयों के गिरजे भी बड़े विशाल विशा[...] हैं जिसमें लोग हजारों लाखों की तायदात में एक[...] प्रार्थना कर सकें और आपस में प्रेम और भ्रा[...] (Love and fraternity) का प्रचार [...] इनके यहाँ गिरजों में स्त्रियाँ भी जाती हैं और [...] प्रार्थना में संमिलित रहती हैं।

ईसाई मठों को मोनैस्टरी (Monastery) [...] साधुओं को मॉंक (Monk) कहते हैं। ईसा[...] स्त्रियाँ भी साधुनी होती हैं जो कि नंस (Nu[...] कहलाती हैं। वे ननरी (Nunnery) में [...] हैं और अपना जीवन ब्रह्मचर्य, तपस्या, भजन, [...] उपासना और सेवा में बिताती हैं। ❀

❀ इस लेख में उर्दू या फार्सी के शब्दों पर गीता[...] नियमानुसार नुक्ता नहीं दिया गया है। इसके लिए [...] उत्तरदायी नहीं। —सं०

विश्वधर्माङ्क की शब्दसूची

A

Atheism = नास्तिकता

Atheist = नास्तिक

Anti-religious = धर्मविरोधी

Achievement = कृति

Action = कर्म

Anger = क्रोध

Avarice = लोभ

Ascetic = साधु, फकीर

Adaptation to environment = युगानुरूपता, युगानुसरिता, जैसा देश वैसा भेष

Act = कानून, कायदा, ला

Action = क्रिया, कर्म

Activity = कार्य

B

Belief = विश्वास

Beautiful = सुन्दर

C

Catholicity = विचारों की उदारता

Conviction = विश्वास, प्रतीति, धारणा

Crisis = संक्रान्ति, विषम

Constitution = विधान

Civility = सुशीलता, शिष्टता

Civilisation = सभ्यता

Civilised = सभ्य

Civil = सुशील

Consciosness = साक्षात्कार, संज्ञा

D

Devotion = भक्ति

Desire = काम, इच्छा

Deism = ईश्वरकर्तृत्ववाद

Dogma = सांप्रदायिकमत

Doctrine = मत

E

Ethics = नीतिशास्त्र, कर्तव्यशिक्षा

Edition=संपादन

Experience = अनुभव

F

Fate = भाग्य

Forgiveness = क्षमा

G

Gift = दान, देन

God = ईश्वर, देवता

Goddess = देवी

Golden means = मध्यम मार्ग, मज्झिम पथ

Golden rule of criticism = आत्मौपम्य का उदार नियम, आलोचना का स्वर्ण नियम

Good = अच्छा, श्रेय

H

Harmlessness = अहिंसा

Henotheism = सर्वेश्वर वाद

I

Irreligious = अधार्मिक

Idol = मूर्ति

Idolatry = मूर्तिपूजा

Impression = संस्कार

Instinct = सहज संस्कार, सहज प्रकृति

Impulse = वेग अथवा आवेग

K

Knowledge = ज्ञान

L

Love = प्रेम

Love of God = ईश्वरभक्ति, भगवद्भजन

Law = कानून, नियम, कायदा

M

Meditation = ध्यान

Monotheism = एकेश्वरवाद, एकदेववाद

Myth = पुराण, कथा

Morals = सदाचार और नीति

Meliorism = युद्धवाद, प्रयत्नवाद

Mythology = पुराणविज्ञान, कथाविज्ञान

N

Non-Conformation = पुराणप्रतिवाद, कर्मकाण्डविरोध

O

Orthodox = (धार्मिक विचारों में) कट्टर

Optimism = विजयवाद

P

Parliament of Religions = सर्वधर्मपरिषद्

Prayer = प्रार्थना

Polytheism = अनेकेश्वरवाद, बहुदेववाद

Pilgrim = तीर्थयात्री

Pilgrimage = तीर्थयात्रा

Preaching, = उपदेश, प्रचार

Priest = पुरोहित

Providence = अदृष्ट

Pity = दया

Psycho-analysis = मनोविश्लेषण

Policy = नीति

Pleasant = प्रिय, सुहावना

Psychological analysis = मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

Pessimism = पराजयवाद

R

Religion = धर्म, मजहब

Religious = धार्मिक

Righteousness = शील, धार्मिकता

Rule = नियम

S.

Salvation = मोक्ष

Sect = संप्रदाय

Sage = ऋषि

Saint = संत

School = संप्रदाय

Sweet = मधुर, रुचिकर, मीठा

Suffering = दुःख, बौद्धों का दुःखवाद

Stoicism = स्टोक मत,

T.

Theism = आस्तिकता, ईश्वरविश्वास

Theology = धर्मशास्त्र, धर्मविज्ञान

Temple = मन्दिर

Truth = सत्य

Tolerant = सहिष्णु, समदर्शी

Toleration = एकदृष्टि, समदर्शन

Teacher = गुरु

W.

Worship = पूजा

Work = काम

ऐसे शब्दों का तो एक कोष बन सकता है। इन शब्दों की दिन रात जरूरत भी पड़ती है। अभी में कोई ऐसा कोष है भी नहीं; पर इस अङ्क में कोई विशेष उपयोगिता नहीं; इसी से अधिक शब्द नहीं हैं। हम विश्वधर्माङ्क में लिख चुके थे, इसलिए यह छोटी दे दी है जिससे कुछ पाठक अवश्य लाभ उठावेंगे।

विश्वधर्माङ्क के चित्रों का परिचय

१—गणेशजी (मुख पृष्ठ पर)।

हिंदुओं के यहाँ प्रत्येक शुभ कार्य के प्रारम्भ में गणेशजी का पूजन अथवा स्मरण किया जाता है। ये सब विघ्न बाधाओं को दूर करनेवाले हैं। ये धर्म के अध्यक्ष भी हैं, अतः गीताधर्म के विश्वधर्माङ्क के प्रारम्भ में इनके चित्र का होना आवश्यक है।

यह गणेशजी के बालरूप का बड़ा सुन्दर चित्र है। बालस्वभाव और बाललीला इस चित्र से फूट फूटकर निकल रही हैं। गणेशजी की मोदकप्रियता का अङ्कन चित्रकार ने बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है। एक हाथ के लड्डू को वे खा रहे हैं, दो हाथों में एक एक लडड्ड लिये हुए हैं तथा चौथा हाथ लड्डू माँगने के लिए बढ़ा रहे हैं। हाथी को कमल का फूल बहुत प्रिय लगता है। यहाँ पर हाथी का चेहरा धारण करनेवाले गजानन के कान पर खोंसा हुआ कमल का फूल एक अद्वितीय शोभा रखता है।

२—भगवान् वेदव्यास (पृष्ठ १०७२)।

यह वेदव्यासजी का उस समय का चित्र है जब वे पुराणों की रचना में लगे थे। वेदव्यासजी पुराणों की रचना करके उनको लिखवाने के लिए प्रस्तुत थे, किंतु कोई शक्तिशाली लेखक न मिलता था। अन्त में बहुत कहने सुनने पर गणेशजी लिखने के लिए तैयार हुए थे। इस चित्र में वेदव्यासजी बोलते हुए तथा गणेशजी लिखते हुए दिखाये गये हैं।

३—कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् (पृष्ठ १०८०)।

वसुदेव और देवकी के संमुख कृष्णजी अपने विष्णुरूप से उपस्थित हैं। घोर कष्टों से पीड़ित वसुदेव और देवकी के यहाँ कारागार में जन्म लेते ही श्री कृष्णजी ने उन्हें अपना शङ्खचक्रगदापद्मधारी रूप दिखा दिया है जिससे वे निर्भय हो जायँ और उनके मन से सारी शङ्काएँ दूर हो जायँ। वसुदेव और देवकी अकस्मात् अपने पुत्र को इस रूप में देखकर आश्चर्य में पड़ गये हैं और चुपचाप हाथ जोड़े हुए बैठे हैं।

४—राधाकृष्ण (पृष्ठ ११४०)।

प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच, इस चित्र में राधा और कृष्ण की अद्भुत झाँकी दिखाई देती है। वर्षा हो रही है। एक सुरम्य वनस्थली में कदम्बों के झुरमुट के नीचे एक पर्दे के भीतर कृष्णजी राधिकाजी को छिपाये हुए हैं तथा आप भी उसी में छिपे हुए हैं। देखने में तो यह चित्र शृङ्गारिक जान पड़ता है, किंतु इसमें गूढ़ आध्यात्मिक व्यञ्जना छिपी हुई है। यह नामरूपात्मक सारी सृष्टि माया का पर्दा है जिसके भीतर प्रकृति और पुरुष साथ साथ छिपे हुए हैं। भगवान् कृष्ण पुरुषरूप हैं जो राधारूपिणी अपनी शक्ति को अपने साथ साथ छिपाये रखते हैं। विश्व की मूलरूपिणी इस जुगुलजोड़ी की अनोखी छबि को देखकर वन्य पशु पक्षियों के सहित सारी वनस्थली खिलखिलाकर हँस पड़ी है। सभी इस झाँकी को देखकर मुग्ध हो गये हैं।

इस चित्र के संबन्ध में कुछ लोग आक्षेप करते हैं तथा इसे धर्मविरुद्ध समझते हैं। इसका निवारण विश्वधर्माङ्क (१०८७ पृष्ठ) में किया जा चुका है।

इस संबन्ध में व्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि और कलाविद् राय कृष्णदासजी की कुछ पङ्क्तियाँ पढ़िए—

कारी घटा, रजनी मनों घोर ,
करै घन सोर, अरन्य अछोर ।
झंझा झकोर, बिजू चमकै ,
थमकै नहिं नैकु , कुहूकत मोर ॥
भजित भीत श्री राधिका कों ,
हरि कामरि में करि, लीन्हीं अँकोर ।

औचक यों चित चाही भई,
इतहूँ रस की बरसात अथोर ॥

५—देवी सरस्वती का ध्यान (पृष्ठ ११८४)।

यह श्वेत रूपवाली, श्वेत कमल पर बैठी हुई, हाथों में वीणा, पुस्तक और माला धारण किये हुए देवी सरस्वतीजी का सुन्दर चित्र है। इसी रूप में उनका ध्यान करने से अविद्या का नाश होता है तथा सद्बुद्धि की वृद्धि होती है।

६—बाबा विश्वनाथ (पृष्ठ १२३८)।

यह भगवान् शंकर का बड़ा अच्छा चित्र है। इसमें भोला बाबा अपने भोले भाले रूप में दिखाये गये हैं। हालाहल पान करने से शंकरजी के कण्ठ में जो नीलिमा आ गई है उसका चित्रकार ने इस चित्र में अच्छा प्रदर्शन किया है। चित्रकार रामप्रसाद ने शंकरजी के जितने चित्र बनाये हैं उन सब चित्रों में यह सर्वश्रेष्ठ है। इतना सुन्दर और भावपूर्ण चित्र हमें कानपूर के प्रसिद्ध वैद्य श्री शिवनारायणजी से मिला है, इसके लिए उन्हें अनेक धन्यवाद।

७—रघुपति राघव राजाराम (पृष्ठ १२६४)।

श्री रामचन्द्रजी के इस सुन्दर चित्र में बड़ी मधुरता और स्वाभाविकता है। अपने ढंग का यह अनूठा चित्र है। भोलापन और गम्भीरता एक साथ श्री रामचन्द्रजी के चेहरे पर विद्यमान है।

८—जगत् के माता पिता (पृष्ठ १२७६)।

इस चित्र का परिचय विश्वधर्माङ्क में दिया जा चुका है।

९—श्री गोसाईं तुलसीदासजी (पृष्ठ १३३२)।

इस चित्र में श्री तुलसीदासजी एकान्त स्थान में वृक्ष के नीचे आसन पर बैठे हुए रामनाम के जप में लीन हैं। यह तुलसीदासजी का एकमात्र प्रामाणिक चित्र है। इस चित्र के हाशिये पर जैसी सुन्दर, सुरुचिपूर्ण और बारीक काम की सजावट है वैसी बहुत कम देखने में आती है।

१०—हृदयकमल में बालकृष्ण (पृष्ठ १३४०)।

भक्त के हृदयकमल में भगवान् का निवास रहता है। हृदय का स्वरूप कमल के समान माना जाता है। उसी कमल पर एक हाथ में माखन और एक हाथ में मिश्री लिये हुए भगवान् कृष्ण बालरूप में विराजमान हैं। कृष्ण स्वरूप में बालकों की मुद्रा का चित्रकार ने अच्छा अङ्कन है। हृदयकमल में कृष्णजी के बालरूप की कल्पना ही सुन्दर है।

११—श्री लक्ष्मणजी (पृष्ठ १३८४)।

इस चित्र में बालोचित भोलेपन के साथ साथ लक्ष्मण की तेजस्विता टपक रही है।

१२—आदि जगद्गुरु श्री १०८ शंकराचार्यजी म राज (पृष्ठ १४०८)।

जिस समय बौद्धधर्म की अधिकता और दुरुपयोग कारण भारतवर्ष में नास्तिकता चरम सीमा को पहुँच थी उस समय श्री शंकराचार्यजी ने अपने वेदान्त के अ मोल उपदेशों का शङ्ख फूँककर इस नास्तिकता को किया था। अनेक स्थानों पर शास्त्रार्थ करके उन्होंने नास्ति को परास्त किया था। उन्होंने ही दण्डी संन्यासियों संप्रदाय का प्रवर्तन किया था। इस चित्र में शंकराचा अपने चारों प्रधान शिष्यों को उपदेश देते हुए दिखाये हैं। ये ही चार शिष्य पीछे दण्डियों की चार प्र गद्दियों के अधिकारी हुए।

१३—माँ गङ्गा का ध्यान (पृष्ठ १४२९)।

मकर पर सवार श्री गङ्गाजी का यह बड़ा सुन्दर चि है। वे मकर की पीठ पर एक कमल के फूल पर वि मान् हैं। दो हाथों में एक एक कलश तथा दो हाथों में एक कमल का फूल लिये हैं।

१४—श्री हनुमान्जी (पृष्ठ १४५६)।

इस चित्र में श्री हनुमान्जी का परम वैष्णव रूप दि लाया गया है। सीताजी का पता लगाने के बाद जब रामचन्द्रजी के पास लौटकर आये तब रामचन्द्रजी उनकी बड़ी प्रशंसा की। किंतु हनुमान्जी ने हाथ जोड़ यही कहा कि—

"सो सब तव प्रताप रघुराई।
नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥"

वही विनम्र भाव इस चित्र में दिखाया गया है। हनुमान्जी का ऐसा स्वाभाविक चित्र भक्तों का हृदय ब ही अपनी ओर खींच लेता है।

समालोचना

(१) Kalyana Kalpataru, Sri Krishna Number (कल्याणकल्पतरु का श्री कृष्णाङ्क)-कल्याणकल्पतरु गीता प्रेस, गोरखपुर से अंगरेजी में निकलनेवाला धार्मिक मासिक पत्र है। यह श्री कृष्णाङ्क इसी पत्र का जनवरी १९३७ का विशेषांक है। पृष्ठसंख्या २८० है। इसके संपादक सी० एल० गोस्वामी तथा कृष्णदासजी हैं। यह अङ्क बहुत से तिरंगे और सादे चित्रों से सुसज्जित है। भगवान् कृष्ण के संबन्ध में अच्छे अच्छे विद्वानों और महात्माओं के लेखों और विचारों का इसमें अच्छा संग्रह किया गया है। अंगरेजी पढ़े लिखे लोगों के लिए श्री कृष्णजी के जीवन और उनकी शिक्षाओं की जानकारी प्राप्त करने का यह विशेषाङ्क एक उत्तम साधन है। बिना जिल्द के इस अङ्क का मूल्य २॥) है तथा कपड़े की जिल्दसहित का ३) है। साढ़े चार रुपये देकर साल भर के लिए कल्याणकल्पतरु का ग्राहक बन जाने से यह विशेषाङ्क मुफ्त में मिल सकता है। मिलने का पता यह है—मैनेजर, कल्याणकल्पतरु, गोरखपुर।

(२) विनयपत्रिका (सटीक)—(काव्यग्रन्थ-रत्नमाला का छठाँ रत्न)। टीकाकार—श्रीयुत वियोगी हरि। प्रकाशक—साहित्यसेवासदन, काशी। इस पुस्तक के मिलने का भी यही पता है। पृष्ठसंख्या ६३४ है। छपाई साफ है। मूल्य बिना जिल्द २॥), जिल्दसहित ३) है।

गोस्वामी तुलसीदासजी की विनयपत्रिका की अब तक अनेक टीकाएँ निकल चुकी हैं और शायद अभी और भी निकलती रहेंगी। इसी से इस ग्रन्थ के महत्त्व का तथा साथ ही साथ इसकी जटिलता का भी पता लगता है। श्री वियोगी हरिजी की की हुई इस 'हरि-तोषिणी' टीका से विनय की जटिलता को सुलझाने में बहुत सहायता मिल सकती है। पहले मूल पद, फिर शब्दार्थ, फिर भावार्थ और तत्पश्चात् टिप्पणी देने का क्रम रखा गया है। टीकाकार ने भाव को स्पष्ट करने के लिए आवश्यकतानुसार संस्कृत के श्लोक तथा अन्त-र्कथाएँ भी दे दी हैं। हमारे विचार से टीका बड़ी सुन्दर हुई है, रखने योग्य है।

(३) भ्रमरगीतसार—(काव्यग्रन्थमाला का आठवाँ रत्न)। संपादक—पं० रामचन्द्र शुक्ल। प्रकाशक-साहित्यसेवासदन, बुलानाला, काशी। पृष्ठसंख्या १४८, कागज अच्छा और छपाई साफ है। मूल्य १) है।

इस पुस्तक में सूरदास के भ्रमरगीत संबन्धी चुने हुए पद हैं। पुस्तक के प्रारम्भ में सूरदासजी के संबन्ध में ७६ पन्नों का नोट है जिसमें उनकी कविता के संबन्ध में बहुत सी बातों का समावेश है। पुस्तक संग्रह-णीय है। ऐसे संग्रह किसी के भी पुस्तकालय की शोभा बढ़ा देते हैं।

(४) भावना—(काव्यग्रन्थमाला का १२ वाँ रत्न)। इस गद्य काव्य के लेखक—श्री वियोगी हरि हैं। प्रकाशक-साहित्यसेवासदन, काशी। पृष्ठसंख्या ९३, छपाई साफ है। मूल्य ॥=) है।

श्री वियोगी हरिजी हिंदी के प्रतिभाशाली लेखक और कवि हैं। उनकी लेखनी से निकले हुए गद्य काव्यों का यह संग्रह पढ़ने योग्य है।

(५) दानलीला—(वैष्णवग्रन्थमाला का प्रथम रत्न)। लेखक—श्री हरिहररायजी। प्रकाशक—साहित्य-सेवासदन, काशी। पृष्ठसंख्या ४४। छपाई अच्छी है। मूल्य बिना जिल्द का ।-), जिल्द सहित का ॥) है।

श्री हरिहररायजी का नाम यद्यपि व्रजभाषा के कवियों में अभी तक प्रसिद्ध नहीं हो सका है, किंतु उनकी रचनाएँ सरस हुई हैं। व्रजभाषा काव्य की प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने दानलीला का अच्छा वर्णन किया है।

(६) भ्रमरगीत—(महात्मा नन्ददासजी कृत)। संपादक—व्रजरत्नदास। प्रकाशक—साहित्यसेवासदन, बनारस सिटी। पृष्ठसंख्या १६। मूल्य ≈) मात्र।

व्रजभाषा काव्य में नन्ददासकृत भ्रमरगीत का एक विशेष स्थान है। इस पुस्तिका में आवश्यकतानुसार संपादक ने फुटनोट भी दे दिये हैं।

(७) रामराज्य—लेखक—सर श्री प्रभाशंकर दलपतरामजी पट्टणी के० सी० आई० ई०। अनुवादक—कुमारी शकुन्तला विशारद। प्रकाशक—जयन्तीलाल मोरारजी मेहता। संपादक—'देशीराज्य' नडियाद। पृष्ठसंख्या ३१ है।

यह पुस्तिका प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ सर प्रभाशंकरजी पट्टणी के रामराज्य संवन्धी गुजराती के लेख का हिंदी अनुवाद है। इसमें मूललेखक ने रामचन्द्रजी के चरित्र पर विचार करते हुए उनके राज्य की विशेषताओं को दिखाने का अच्छा प्रयत्न किया है।

(८) रामकृष्ण परमहंस—(शताब्दी जयन्ती स्मृति)। प्रकाशक—स्वामी सत्यानन्द, श्री रामकृष्ण मिशन होम आफ सर्विस, लक्सा, बनारस सिटी। पृष्ठसंख्या ३२०। मूल्य ॥=) मात्र। मिलने का पता मन्त्री, श्री रामकृष्णसेवाश्रम, लक्सा, बनारस सिटी।

इस पुस्तक का प्रकाशन श्री स्वामी रामकृष्ण परमहंस की गत मार्च के महीने में मनाई जानेवाली शताब्दी जयन्ती की स्मृति में किया गया है। इसमें रामकृष्णजी के संवन्ध में अनेक समाचारपत्रों ए[illegible] देशी विदेशी विद्वानों और महात्माओं के मतों [illegible] उनके जीवनचरित्र का, उनके वचनामृत का त[illegible] जयन्ती के अवसर पर काशी में मनाये जानेवाले उत्स[illegible] में विभिन्न विद्वानों और संतों के द्वारा दिये गये अभिभाषणों का संग्रह है। श्री रामकृष्ण परमहंस पर श्र[illegible] रखनेवालों के लिए यह पुस्तक रखने के योग्य है। असल में हम तो चाहते हैं कि इस ग्रन्थ के लेख स[illegible] पाठक पढ़ें। बड़े पवित्र और सुन्दर लेख हैं।

(९) योगप्रदीप—लेखक—श्री अरविन्द। प्र[illegible]शक—श्री मदनगोपाल गाडोदिया, श्री अरविन्द ग्रन्थमाल[illegible] ४, हेयर स्ट्रीट, कलकत्ता। भाषान्तरकार—श्री लक्ष्म[illegible] नारायण गर्दे। पृष्ठसंख्या ६५। कागज अच्छा, छपा[illegible] साफ और सुन्दर है। मूल्य ॥) है।

श्री अरविन्द घोष के पत्रों में से कुछ का इस पुस्त[illegible] में संग्रह है। इनसे इस विषय पर प्रकाश पड़ता[illegible] कि योग क्या है और किस प्रकार उसका साधन कर[illegible] चाहिए। अध्यात्मविद्या के विद्यार्थियों के लि[illegible] यह बड़े काम की चीज है। अरविन्दजी के जीव[illegible] के संवन्ध में भी इस पुस्तक से बहुत कुछ जानका[illegible] प्राप्त हो सकती है। अरविन्द का नाम ही काफी है, अधिक क्या लिखें ?

(१०) धन की उत्पत्ति—लेखक—दयाशं[illegible] दुवे एम० ए०, एल-एल० बी० और भगवानदा[illegible] केला। प्रकाशक—रामनारायण लाल पब्लिशर औ[illegible] बुकसेलर, इलाहाबाद। पृष्ठसंख्या २७६। मूल्य १)

अर्थशास्त्र के उत्पत्ति संवन्धी (Production) अंग पर विद्वान् लेखकों ने इस पुस्तक में अच्छा विवेच[illegible] किया है।

भारत के कुछ भक्त

(ले०—स्वामी श्री रवीन्द्रानन्दजी महाराज, घंटाकोठी, कनखल, हरिद्वार)

भारतभूमि सदा से भक्तों की खान रही है। संसार के बड़े बड़े भक्त इसी भूमि में जन्मे और पले। यहाँ का जल वायु भक्ति और ज्ञान के उन महत्तत्त्वों से ओतप्रोत है कि इसकी धूलि में खेलकर बढ़नेवाले अवश्य ही एक न एक आत्मज्ञान की चिनगारी पा गये हैं। यही कारण है कि सारे भूमण्डल में भक्तों को सर्वाधिक संख्या में पैदा करने का जो श्रेय भारतमही को प्राप्त है वह किसी भी दूसरे को नहीं मिल सका। आज भी इस प्रकार के भक्तों से माँ भारत की गोद सूनी नहीं है। गुरुवर गीताव्यास स्वामी विद्यानन्दजी महाराज वर्तमान युग में भी भक्ति का प्रभाव दिखा रहे हैं। प्रभु किस प्रकार उनके गीताप्रचार, गीतासंमेलन और गीताधर्म आदि को बढ़ा रहा है! यह प्रभु की भक्ति का ही प्रभाव है। मैं तो भक्तों का भक्त हूँ। इसी से अपने पाठकों और बराबरी के भक्तों को दूसरे संतों और भक्तों की कथा सुनाकर उनकी भक्ति किया करता हूँ।

इस प्रकार के भक्तों के चरित बड़े ही रोचक और शिक्षाप्रद होते हैं। उनका रहन सहन, खान पान आदि सभी साधारण लौकिक जनों से भिन्न होता है। जहाँ सांसारिक मनुष्य अपनी इहलोक की उन्नति में व्यस्त रहता है, वहीं भक्त का लक्ष्य 'पर' की ओर रहता है। वह परमात्मा और परलोक की तरफ देखता है। पर सत्य के अनुसंधान में सचेष्ट रहता है। ऐसी हालत में उसके कार्य और व्यवहार भी हमसे भिन्न और हमारे लिए अलौकिक तथा आकर्षक होते हैं। नई बातों को जानने के लिए मनुष्य की रुचि सहज ही होती है।

ऐसी दशा में यदि हम अपने पाठकों के समक्ष कतिपय श्रेष्ठ भक्तों की चरितगाथा उपस्थित करें, तो वह अवश्यमेव रोचक होगी। इसी विचार से हम यहाँ कुछ ऐतिहासिक भक्तों की कथा संक्षेप में देंगे। आधुनिक और पौराणिक भक्तों का वर्णन छोड़कर हम केवल ऐतिहासिक तथा अधिकांश में मध्य काल के भक्तों का ही वर्णन देंगे। पुराणों की गाथा में प्रायः लोग कपोलकल्पना का दोषारोपण कर सकते हैं तथा अर्वाचीनों की पूरी जानकारी न प्राप्त हो सकने के कारण वर्णन में त्रुटि आ सकती है; फिर एक स्थान पर सबका वर्णन संभव भी नहीं। इसी विचार से इन दोनों कोटि के भक्तों का वर्णन प्रस्तुत लेख में नहीं किया जायगा।

इस लेख में एक बात यह भी हमारे पाठकों के ध्यान देने की है कि सभी भक्तों के साथ भजनाङ्क की संगति बैठाने के लिए उनके भजनीकत्व का भी वर्णन आ जाय, इसका वृथा प्रयास नहीं किया जायगा। भक्तों के जीवन में भजन तो उनकी दिनचर्या में ही शामिल रहता है। कोई राम का गुणानुवाद गाता है, तो कोई कृष्ण का। कोई 'शिव शिव' भजता है, तो कोई 'नारायण नारायण'। किसी के आराध्य सगुण ईश्वर हैं, तो किसी के निर्गुण ब्रह्म। अतः पाठकों को यह समझ लेना चाहिए कि 'भजन' तो सभी भक्तों के जीवनपथ का सबसे बड़ा संबल रहा है। एक बात और है। वह यह कि लेख में भक्ति में नई धारा के प्रवर्तक आचार्यों का भी वर्णन दे दिया गया है। वे लोग आचार्य थे। लोगों का ध्यान पहले उनके आचार्यत्व की ही ओर जाता है। उनके साधनमय भक्त जीवन की ओर लोग कम देखते हैं। पर वस्तुतः देखा जाय, तो मालूम होगा

कि वे लोग आचार्य होने के साथ ही भक्त भी बड़े ऊँचे दर्जे के थे। अतः उनकी जीवनी भी अपना महत्त्व रखती है। हाँ, मुसलमान भक्तों का वर्णन इसमें छोड़ दिया गया है[1], क्योंकि लेख के बहुत बढ़ जाने की संभावना थी।

अब अकारादि क्रम से भक्तों की जीवनी दी जाती है। संभव है वहुत से भक्तों की जीवनी प्रमाद या अज्ञानवश छूट भी जाय। अतः आशा है, पाठकगण उसके लिए हमें क्षमा करेंगे।

(१) एकनाथ

पैठण (प्रतिष्ठान) के प्रसिद्ध महाराष्ट्र ऋग्वेदी ब्राह्मणपरिवार में उनका जन्म शाके १४५५ के लगभग हुआ था। इनके पिता का नाम सूर्यनारायण और माता का नाम रुक्मिणी बाई था।

जन्म होने के कुछ ही समय बाद इनके माता पिता का देहान्त हो गया। इस मातापिताविहीन बालक के लालन पालन और शिक्षा दीक्षा का भार इनके पितामह चक्रपाणि पर आ पड़ा। पितामह और पितामही ने इनका उचित रीति से पालन पोषण किया। बालक एकनाथ अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि थे।

एकनाथ को किसी योग्य गुरु की चिन्ता थी। अन्त में एक दिन आकाशवाणी हुई कि देवगढ़ में पं० जनार्दन पंत के पास जाओ, वे तुम्हारी सब आशाएँ पूरी कर देंगे।

बालक एकनाथ की अवस्था इस समय बारह वर्ष की थी। एक दिन बिना किसी से कहे सुने, तड़के उठकर वे देवगढ़ की ओर चल दिये और गुरु जनार्दन पंत के चरणों में उन्होंने अपने को अर्पण कर दिया। पंतजी की कृपा से इन्हें सिद्धि मिली और भगवान् से साक्षात्कार भी हो गया। इसके पश्चात् ये गुरु की आज्ञा से तीर्थयात्रा को निकले।

तीर्थयात्रा से लौटने पर गुरु की आज्ञा से एकनाथ का विवाह पैठण के निकट बीजापुर ग्राम के एक संभ्रान्त कुल की कन्या गिरिजा बाई के साथ हो गया।

यात्रा के समय आपने भागवत और रामायण पर विस्तारसहित ग्रन्थ लिखे थे। चतुःश्लोकी भागवत, हस्तामलक टीका, शुकाष्टक टीका, स्वात्मबोध, चिरंजीवपद, आनन्दलहरी, अनुभवानन्द, मुद्राविलास, लघुगीता, भजनीभारुड़, रुक्मिणीस्वयंबर, भागवत, भावार्थ रामायण, राम कृष्णलहरी, उद्धवगीता आदि अनेकों ग्रन्थों की रचना का श्रेय आप ही को है।

अपने पुत्र श्री हरि पण्डित से इनका विचार भिन्न था, इसी से हरि पण्डित काशी चले गये और बहुत समझाने पर अपने पिता के यहाँ गये।

पैठण में एक स्त्री रहती थी उसका संकल्प एक हजार ब्राह्मणों को भोजन कराने का था। काल-गति से थोड़े ही दिन बाद उसका पति मर गया। वह वैभवशाली स्त्री कंगाल हो गई, पर अपने संकल्प को पूरा करने का निश्चय कर उसने विलक्षण पण्डित से उपाय पूछा। उन्होंने उससे कहा कि यदि तुम एकनाथजी को खिला दोगी, तो तुम्हारा संकल्प पूरा हो जायगा। इसपर उसने एकनाथजी को निमन्त्रित किया। श्री हरि पण्डित भोजन बनाने को भेजे गये। एकनाथजी के भोजन कर चुकने पर इन्होंने श्री हरि पण्डित को पत्तल फेंकने को कहा। हरि पण्डित पत्तल उठाने लगे, तो उन्हें मालूम हुआ कि एक के बाद दूसरा—इस प्रकार पूरे एक हजार पत्तल थे। इस प्रकार की अनगिनत कथाएँ आपके विषय में प्रचलित हैं।

(क्रमशः)

[1]—मुसलमान भक्तों की जीवनी इसी अङ्क में अन्यत्र प्रकाशित है। पाठक उसे पढ़ सकते हैं। सं०—

गीताधर्म

[सचित्र धार्मिक मासिक]

आज

लगभग एक वर्ष से आप लोगों की सेवा करके
अपने दूसरे वर्ष में प्रवेश ~~कर रहा~~ किया है।

इसके विशाल नववर्षाङ्क का नाम है-

विश्वधर्माङ्क

❁

इसमें

धर्म और साहित्य की अनूठी बातों का समावेश रहता है,
मार्मिक रहस्यों का उद्घाटन होता है।

इसके

ग्राहक होकर हमारी सहायता और अपने
ज्ञान की अभिवृद्धि करिए।

समालोचनार्थ पुस्तकें
देकर सत्साहित्य की वृद्धि और अपना प्रचार करिए।

प्रकाशनार्थ विज्ञापन
देकर अपने उद्योग में सफलता प्राप्त करिए।

वार्षिक चंदा ४) रु०

व्यवस्थापक,
गीताधर्म कार्यालय,
साक्षीविनायक, काशी।

एक प्रति ।=) आ०

गीताधर्म में समालोचना

गीताधर्म में प्रतिमास उत्तमोत्तम साहित्यिक, धार्मिक तथा अन्य विषयक पुस्तकों की आलोचना की जाती है। कुछ पुस्तकों का परिचय तथा प्राप्तिस्वीकार मात्र भी दिया जाता है। ये सब परिचय तथा आलोचनाएँ कुछ विशेष नियमों से दी जाती हैं। यथा—

१. पुस्तक की केवल एक प्रति प्राप्त होने से हम साधारण परिचय और प्राप्ति-स्वीकार मात्र देते हैं।

२. दो प्रति प्राप्त होने पर किसी भी पुस्तक की निष्पक्ष और सम्यक् समालोचना की जाती है। प्रत्येक विषय की पुस्तकों पर केवल उसके अधिकारी व्यक्ति ही लिखते हैं।

(उपर्युक्त दोनों प्रकार की आलोचनाओं के लिए पुस्तकें संपादक—'गीताधर्म' के नाम आनी चाहिएँ।)

३. यदि किसी को किसी पुस्तक की विशद और उसके प्रत्येक पहलुओं पर प्रकाश डालनेवाली समालोचना करानी हो तो उसके लिए हम लोगों ने विशेष प्रबन्ध कर रखा है। काशी की प्रसिद्ध संस्था तुलसी ममिांसा परिषद् के अन्तर्गत एक समालोचक समिति है। उसका कार्य किसी भी पुस्तक को लेकर पहले उसका पूर्ण अध्ययन करना है। तदनन्तर वे लोग जो निष्पक्ष समालोचना लिखते हैं, वह प्रदर्शनी नामक छमाही पत्रिका में प्रकाशित की जाती हैं। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य पुस्तकालोचन ही है। इस प्रकार की समालोचना के लिए निम्न पते पर किसी भी पुस्तक की दो प्रति आनी आवश्यक हैं—

श्री मन्त्री, तुलसी ममिांसा परिषद्, गीताधर्म कार्यालय, काशी।

अतः यदि आप लोग हिंदी, संस्कृत, गुजराती, अंग्रेजी, बँगला, उर्दू, मराठी आदि भाषाओं की किसी भी पुस्तक की निष्पक्ष आलोचना और ग्रन्थ का एक नये क्षेत्र में प्रचार चाहते हैं तो ऊपर लिखी बातों पर ध्यान देकर गीताधर्म जैसी संस्था के पास अपनी पुस्तकें अवश्य भेजिए।

संपादक—गीताधर्म,

गीताधर्म कार्यालय, काशी।

अच्युतग्रन्थमाला, काशी की अनुपम, दुर्लभ सस्ती पुस्तकें—

(क) विभाग

१—भगवन्नामकौमुदी—[भगवन्नाम की महिमा का प्रतिपादक अनुपम ग्रन्थ] ॥=)

२—भक्तिरसायन—[आचार्य मधुसूदन सरस्वतीरचित भक्तिस्वरूप का परिचायक अत्युत्तम ग्रन्थ] ।।।)

३—शुल्वसूत्र—[कात्यायनश्रौतसूत्र का परिशिष्ट अंश] ।)

४—कात्यायनश्रौतसूत्र—[महर्षि कात्यायनप्रणीत । इसमें दर्शपूर्णमास से लेकर अश्वमेध, पितृमेधपर्यन्त कितने ही यज्ञों की विधियाँ साङ्गोपाङ्ग वर्णित हैं] ६)

५—प्रत्यक्तत्त्वचिन्तामणि—(दो भाग में) [शांकरभाष्यानुसार सुसरल पद्यमय ग्रन्थ] ४।)

६—भक्तिरसामृतसिन्धु—[श्रीरूप गोस्वामीप्रणीत । भक्तिरस से परिपूर्ण यह ग्रन्थ सचमुच पीयूषबिन्दु है] ३)

७—तिथ्यर्क—[श्री दिवाकरभट्टरचित । तिथियों के निर्णय आदि पर अपूर्व एवं प्रामाणिक ग्रन्थ] १।।)

८—परमार्थसार—[श्री वेदान्त का अति प्राचीन ग्रन्थ, भगवान् पतञ्जलिप्रणीत] ।=)

९—प्रेमपत्तन—[श्री कृष्णभक्ति से सराबोर चैतन्यसंप्रदाय का अपूर्व ग्रन्थ] १)

(ख) विभाग

१—खण्डनखण्डखाद्य—[कवितार्किकशिरोमणि श्री हर्षरचित, भाषानुवाद से विभूषित] २।।।)

२—काशीकेदारमाहात्म्य—[ब्रह्मवैवर्तपुराणान्तर्गत, भाषानुवादसहित] २।।)

३—सिद्धान्तबिन्दु—[आचार्य श्री मधुसूदन सरस्वतीविरचित, भाषानुवादसहित] १।=)

४—प्रकरणपञ्चक—[भगवान् शंकराचार्य के आत्मबोध, प्रौढानुभूति, तत्त्वोपदेश आदि ५ प्रकरणग्रन्थों का भाषानुवादसहित संग्रह] ।।)

५—ब्रह्मसूत्र—[शाङ्करभाष्य-रत्नप्रभा-भाषानुवादसहित । सदाशिवेन्द्र सरस्वतीकृत ब्रह्मतत्त्वप्रकाशिकावृत्ति के अनुसार सूत्रों का पदच्छेद, पदार्थोक्ति और सुविशद भाषार्थ एवं वैयासिकन्यायमाला के संदेह, पूर्वपक्ष तथा सिद्धान्तनिर्देशपुरस्सर सुस्पष्ट और विशद भावार्थ से विभूषित, वेदान्तप्रेमियों के लिए अत्यन्त उपादेय और अनुपम ग्रन्थ] कपड़े की पक्की तीन जिल्दों में प्रकाशित; छपाई, सफाई सभी मनोहर; पृष्ठसंख्या २६०० के लगभग । १४)

नोट—अच्युतग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहकों को उक्त सभी पुस्तकें पौन मूल्य पर दी जाती हैं । 'अच्युत' मासिक पत्र के स्थायी ग्राहक (ख) विभाग के स्थायी ग्राहक समझे जायँगे । बुकसेलरों को सभी पुस्तकों पर २५/० कमीशन दिया जाता है ।

ध्यान दीजिए—ये सभी पुस्तकें काशी की गीताधर्मबुकडिपो से मिल सकती हैं—

Gita Dharma Registered No. A 2843

हरिद्वार में आगामी कुम्भ पर
अखिल भारतवर्षीय गीतासंमेलन
का दूसरा अधिवेशन होगा

सभी साधु महात्माओं, गीताप्रेमियों और विद्वानों से प्रार्थना है कि वे अभी से अपने विचारों और कार्यों द्वारा हमारी सहायता करें।

मन्त्री—

गीतासंमेलन

गीताधर्म कार्यालय

काशी।

× × × ×

श्री पद्मनारायण आचार्य एम० ए० द्वारा गीताधर्म प्रेस, साक्षीविनायक, काशी में मुद्रित, संपादित और प्रकाशित।





विषयसूची

चित्रसूची—

श्री विद्यानन्दसत्संगमण्डल

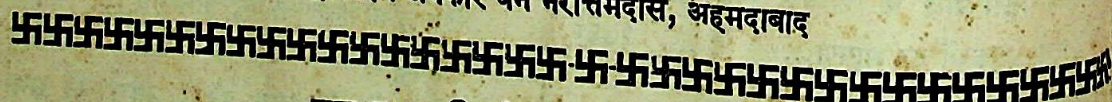
स्वामीजी ने गीताचर्चा तथा भगवद्भजन के लिए भारतवर्ष के भिन्न भिन्न भागों में मन्दिर, सभा आदि अनेक संस्थाएँ स्थापित की हैं। उन्हीं में से एक है अहमदाबाद का विद्यानन्दसत्संगमण्डल। यहाँ का प्रबन्ध बड़ा सुन्दर है और इस की समिति की नामावली नीचे दी जाती है—

१. प० पू० स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज···प्रमुख
२. वे० शा० ईश्वरलाल कचराभाई शर्मा
३. रा० रा० शेठ बद्रीनारायण जमनादास पटेल
४. „ „ कान्तीलाल रतनलाल बोडीवाला···सेक्रेटरी
५. „ „ आरतलाल लक्ष्मीलाल महेता···ज्वाइंट सेक्रेटरी
६. „ „ चिमनलाल जमनादास मोदी···हिसाबी मन्त्री
७. „ „ शेठ चंदूलाल हरगोवनदास मोदी
८. „ „ शेठ चंदूलाल बापालाल चॉक्शी
९. „ „ छोटालाल मूळजीभाई मोदी
१०. „ „ शिवलाल नानशा मोदी
११. „ „ बालाभाई पंचाल
१२. „ „ मणीभाई हरीभाई पटेल
१३. „ „ बाबूभाई पूँजाभाई शाह
१४. „ „ संतूभाई पटेल

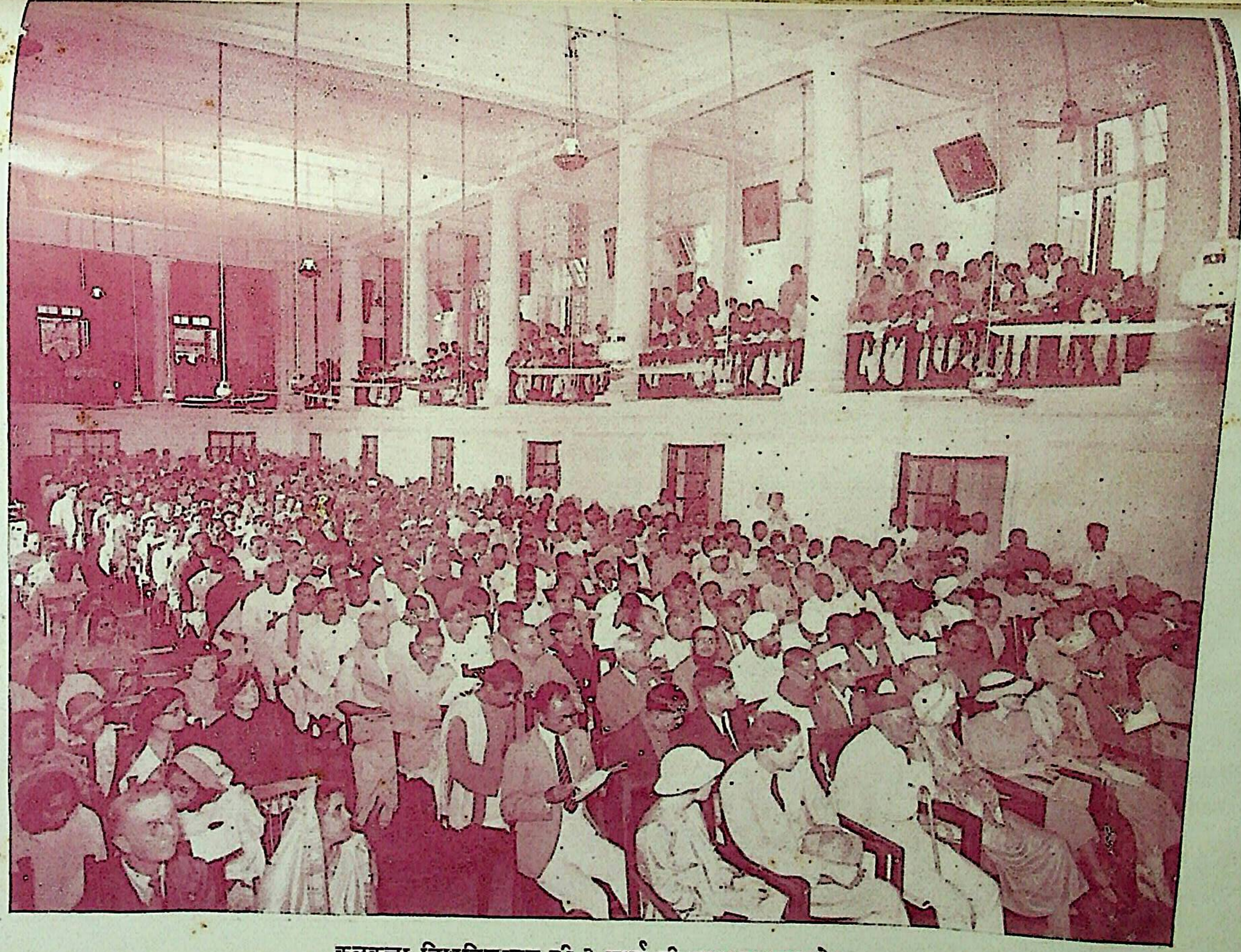
गीताधर्म के विशेष संरक्षक

(गत अङ्क में हम गीताधर्म के संरक्षकों तथा सहायकों की नामावली दे चुके हैं, किंतु ये निम्नलिखित दोनों व्यक्ति हमारे विशेष संरक्षक हैं। अतः अलग से हम इन का नाम सधन्यवाद प्रकाशित करते हैं। —व्यवस्थापक)

१. श्रीमान् बालाभाई एंड डाह्याभाई, अहमदाबाद
२. श्रीमती गङ्गास्वरूप जयकोर बेन नरोत्तमदास, अहमदाबाद



कलकत्ता विश्वविद्यालय की ३ मार्च की सभा का समारोह



कलकत्ता विश्वविद्यालय की ३ मार्च की सभा का समारोह



गीता धर्म

संस्थापक—
गीताव्यास (लोकसंग्रही स्वामी विद्यानन्दजी)

वर्ष २ सं० ६
सितंबर, १९३७
काशी

संपादक—
पद्मनारायण आचार्य
एम० ए०

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

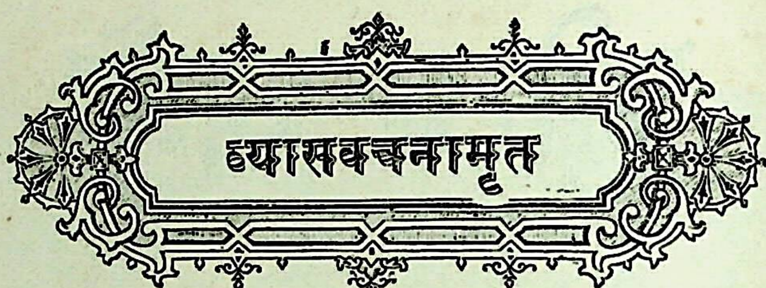
संपादकीय सूचना

१. गीताधर्म के कवर पर जो चित्र दिया जाता है उसी का मर्म ऊपर के श्लोक में है। उस की तो कई वार गीताधर्म के पृष्ठों में व्याख्या हो चुकी है और आगामी वर्ष के बड़े विशेपाङ्क में वह व्याख्या विशेष रूप से होगी।

२. इस अङ्क में सर्वधर्मपरिषद् संबन्धी लेख अधिक हैं। उन पर धार्मिकों को विचार करना चाहिए। उन का एक निराला महत्त्व है।

३. वचनामृत का पान करने के लिए तो मेरी नित्य की प्रार्थना है।

४. व्यासवचनामृत पढ़ना न भूलिए और एक वार स्वयं **अभ्यास करके** अभ्यास का महत्त्व समझिए।



'अभ्यास'

प्रभु के प्रेमियो,

गये मार्च में भारत में सर्वधर्मपरिषद् हुई थी। भारत के सब से बड़े शहर कलकत्ता में यह अन्तर्राष्ट्रीय संमेलन—यह रिलीजनों की पार्लमेंट बड़े समारोह से हुई थी। उस समय आप ने इस की काफी चर्चा सुनी होगी। प्रायः सभी पत्र पत्रिकाओं में इस विश्वधर्मसंमेलन की चर्चा निकली थी। गीताधर्म में तो इस पार्लमेंट (अर्थात् धर्मपरिषद्) के संवन्ध में बराबर लेख निकल रहे हैं। विश्वधर्माङ्क, भजनाङ्क, सामान्य अङ्क आदि कई अङ्कों में लेख तथा भाषण निकल चुके हैं। इस सितंबर के अङ्क में तो अधिक लेख उसी परिषद् से ही संवन्ध रखनेवाले हैं। अतः उस परिषद् के बारे में हमें कुछ नहीं कहना है।

परिषद् का लक्ष्य भी आप जानते हैं—वह लक्ष्य है सब धर्मों की एकता और मैत्री। भजनाङ्क में यह प्रसिद्ध प्रार्थना आप पढ़ चुके हैं 'समानी व आकूतिः' इत्यादि।

इन सब धर्मसंमेलनों और राष्ट्रसंघों की बार बार संयोजना और बैठक होने पर भी क्यों परस्पर मैत्री और शान्ति नहीं रहती? क्यों दिनों दिन अशान्ति और द्वेष की आग बढ़ती जा रही है?

रोज लोग स्वास्थ्य, संयम और आचार के ... में सदुपदेश पढ़ते और सुनते हैं तो भी लोग ... अस्वस्थ, असंयमी और आचारहीन ही देख प... हैं? इन सब का एक मात्र उत्तर है—

अभ्यास का अभाव

यदि विश्व में शान्ति स्थापित करना है, ... धर्मों में मैत्री स्थापित करना है, तो कोरी सभाओं ... कोई लाभ न होगा। इन लक्ष्यों का जीवन बिता... होगा। शान्ति का सच्चा और सतत अभ्यास करि... धर्म और सदाचार का मूल यही अभ्यास है।

व्यक्तिगत जीवन में भी यही अभ्यास सब ... करता है। अतः चाहे समाज का मन वश में कर... हो अथवा अपना स्वयं मन ठिकाने लाना हो, ... का एक ही उपाय है—

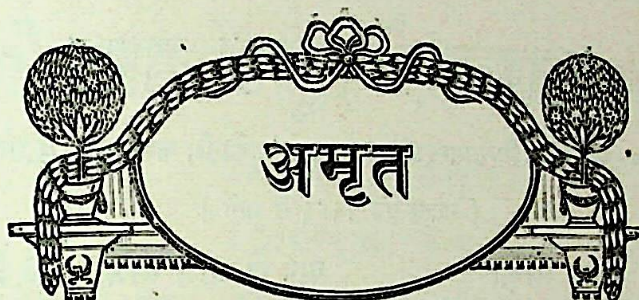
मन का योगाभ्यास

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।

गी० ६।३...

अभ्यास करके देखिए, अभ्यास का कितना मह... है? और अधिक मैं क्या कहूँ!

श्री कृष्णार्पणमस्तु



(ले०—गीताव्यास (लोकसंग्रही स्वामी विद्यानन्दजी महाराज) बोर्डीमिल, अहमदाबाद)

गये अङ्क में हम अमृत की चर्चा कर चुके हैं। उसी संवन्ध में आज एक वहुत वड़ी वात कहनी है। वह कहने में वहुत छोटी और व्यवहार में वहुत वड़ी वात है। हमारे जीवन के लिए तो वही एकमात्र अमृत है। उस वात को हम ने सव के साथ न रखकर आप के सामने आज अलग से रखने का विचार किया था। उसे सावधान होकर आप सुनिए—

वह अमृत है मीठा वचन

जीवन में 'मीठे वचन' से वढ़कर दूसरी कोई वड़ी चीज नहीं है। मीठे वचन से पूरा जीवन ही मीठा हो जाता है। इसी से महात्माओं ने कहा है कि मीठा वचन ही इस संसार का अमृत है।

यह सर्वधर्मपरिषद् का अङ्क है। सर्वधर्मपरिषद् में एका, मेल और शिष्टाचार की चर्चा होती है। इस महापरिषद् का लक्ष्य है विश्व के सभी धार्मिकों में परस्पर शान्ति और सद्भाव की स्थापना। लक्ष्य वड़ा सचा और अच्छा है, पर इस को सफल वनाने के लिए केवल व्याख्या और लेख पर्याप्त नहीं हो सकते।

शान्ति और सद्भाव वनाये रखने का तो एकमात्र उपाय है मीठा वचन। चाहे विश्व में हो, चाहे एक कुटुम्व में हो, यही एक उपाय है जिस से सुख शान्ति की वृद्धि हो सकती है। हजारों महापुरुष इस का अनुभव कर चुके हैं। आप भी मीठे वचन का अभ्यास करके देखिए, आप का संसार अमृतमय हो जायगा। घर जाकर इस वात पर खूब विचार करिए और नित्य जपा करिए—

'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्'

दीवाल पर इस वाक्य को लाल अक्षरों में लिखकर टाँग दीजिए तो और भी अच्छा होगा।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



भारत के कुछ भक्त

(ले०—स्वामी रविन्द्रानन्दजी महाराज, घंटाकोठी, कनखल, हरिद्वार)

[गताङ्क पृष्ठ १६८६ से आगे]

(१६) राँका बाँका

पंढरपुर नामक स्थान में राँका नाम का एक अति गरीब पुरुष था। उस की स्त्री और वह दोनों जंगल से लकड़ी चुनकर लाते और किसी प्रकार अपना निर्वाह करते थे। उन की यह दशा देखकर भक्तवर श्री नामदेव को बड़ी व्यथा हुई। उन्होंने भगवान् से राँका को धन देने की प्रार्थना की। भगवान् ने कहा—राँका बड़ा संतोषी है, वह तो स्वयं धन लेना नहीं चाहता। विश्वास न हो तो कल वनमार्ग में छिपकर देखना।

दूसरे दिन जंगल जाते वक्त राँका ने मार्ग में मोहरों की एक थैली देखी और इस आशङ्का से कि कहीं उस की स्त्री लोभवश उसे उठा न ले मिट्टी में गाड़ने लगा। स्त्री ने आकर कहा—नाथ! सोना भी तो धूल है; फिर धूल को धूल से क्यों ढँकते हो? इस पर राँका बहुत खुश हुआ और कहने लगा तुम्हारी भक्ति तो बहुत उत्कृष्ट है। तुम्हारा वैराग्य बड़ा बाँका है। उसी रोज से राँका की स्त्री का नाम बाँका पड़ गया।

जब ये दम्पति घर लौटने को हुए, तब तक इन की लकड़ियों का ढेर भगवान् ने बाँधकर रख दिया। राँका बाँका ने उसे किसी दूसरे की लकड़ी समझकर छोड़ दिया। सूखी लकड़ियों के अभाव में खाली हाथ घर लौटे। उस दिन उन्हें उपवास करना पड़ा। कहने लगे—देखो, सोना देखने के पाप से आज भोजन नहीं मिला। ले लेते तो जाने क्या होता! अन्त में भगवान् ने दया करके उन लोगों को अपना दुर्लभ दर्शन देकर कृतकृत्य किया।

(१७) रामकृष्ण

परमहंस रामकृष्ण ने दक्षिणेश्वर (कलकत्ता के निकट) में रहकर सिद्धि प्राप्त की थी। वहीं पर रहते हुए अपने वचनरूप अमृत से संसारी तापों से संतप्त प्राणियों की पिपासा को शान्त किया। आप कुछ पढ़े लिखे नहीं थे, फिर भी अच्छे अच्छे पण्डित चरण में बैठकर मुख से निकले हुए सहज ज्ञान को बड़ी श्रद्धा भक्ति के साथ ग्रहण करते थे।

परमहंस रामकृष्ण ने खड़े होकर न तो अपने जीवन में कभी व्याख्यान ही दिया और न हाथ में कलम लेकर कभी ग्रन्थ ही लिखा; फिर भी आप ने संपूर्ण धर्मशास्त्र का मर्म कह डाला है। आप जगज्जननी के उपासक थे। आप इतने बड़े महात्मा हो गये हैं कि आप की ख्याति केवल भारत ही नहीं, दूसरे दूसरे देशों में भी फैली हुई है।

(१८) रामतीर्थ

स्वामी रामतीर्थ का नाम आजकल का प्रत्येक व्यक्ति जानता है। वे बहुत बड़े महात्मा थे। उन की एक एक बात अमूल्य हुआ करती थी। रामकृष्ण, रामतीर्थ, विवेकानन्द आदि भक्तों का तो नाममात्र लिख देना इस युग के लिए बहुत है।

(क्रमशः)

योगी अरविन्द की अमृतवाणी

(ले०—श्री वीरेन्द्र मालवीय)

[गताङ्क पृ० १६८८ से आगे]

मुझे तैयार करो, ऐसी इच्छा तलवार नहीं करती। इसी तरह तैयार हो जाने पर उस के प्रयोगी का वह विरोध भी नहीं करती; और जब उस के टुकड़े हो जाते हैं तब वह शोक भी नहीं करती। तैयार होने में एक प्रकार का आनन्द है, प्रयोग में आने में अन्य प्रकार का और खूँटी पर टँग रहने पर तथा अन्त काल में टुकड़े हो जाने पर भी आनन्द रहता है। इन सब आनन्दों को तू खोज निकाल।

× × × ×

तुझे दुःख किस लिए होता है? प्रथम तो करण को तू भ्रम से कर्ता तथा ईश्वर मान बैठा है, इस लिए। दूसरे तेरी अपनी स्थिति, तेरा अपना लाभ, तेरा अपना उपयोग इत्यादि तू अपनी इच्छा के बिना अज्ञान से आच्छादित होकर पसंद करने लगता है, इस लिए। इन्हीं कारणों से लाल लाल ज्वालाएँ प्रकट कर रही धकधकाती दुःख की भट्टी में तुझे बार बार तपना पड़ता है तथा कितनी ही बार पुनर्जन्म लेना पड़ता है। जब तक तू सुधरेगा नहीं तब तक लोहे को पानी पिलाने का यह क्रम चालू रहेगा।

× × × ×

और यह सब अपूर्णताएँ विघ्न क्यों डालती हैं? कारण कि यह सब तेरी अपक्व प्रकृति में हैं, इस से! जब तू करण बनता है तब प्रकृति कर्ता-स्वरूप में कार्य करती है। और प्रकृति क्या कर रही है, इसे तू जानता है? आकाररहित अपक्व मन, प्राण तथा स्थूल द्रव्यतत्त्व में से वह संपूर्ण-रूपेण सचेतन प्राणियों को क्रम क्रम से उपजा रही है।

× × × ×

कर्ताभाव

अब दूसरा पैर उठा, तेरे स्वत्व को कर्तारूप में अनुभव कर। कर्ता बनना है, तो तू अपनी प्रकृति को पहचानना सीख; और अपना आत्म-स्वरूप प्राप्त करना है, तो तेरी अपनी प्रकृति और विश्वप्रकृति को बराबर समझ।

× × × ×

यह प्रकृतिस्थ स्वरूप तेरा वास्तविक स्वरूप नहीं है। तेरी प्रकृति परिमित नहीं है। यह महान् सूर्य और सूर्यमालाएँ, पृथिवी और उस के अनन्त प्राणी, तू, तेरे और तू जो कुछ जानता है वह सब तेरी प्रकृति ने उत्पन्न किया है। (क्रमशः)



श्री श्री रामकृष्णजी के उपदेश

(रामकृष्णवचनामृत)

"चिन्मय"

[गताङ्क पृष्ठ १६९८ से आगे]

(४)

ज्ञानयोग या वेदान्तविचार

'तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृह्णन्ति ये भूरिदा जनाः ॥'

४१—इस संसार में विद्यामाया भी है, अविद्या-माया भी; ज्ञान भी है, भक्ति भी; फिर कामिनी और काञ्चन भी हैं। सत् भी है, असत् भी; अच्छा भी है, बुरा भी; किंतु ब्रह्म है निर्लिप्त। भलाई बुराई—सत् असत्—सभी जीव को है, पर ब्रह्म को कुछ भी नहीं।

४२—दिये के सामने कोई भागवत पढ़ते हैं और कोई जाल ठगी किया करते हैं; पर दिया है निर्लिप्त !

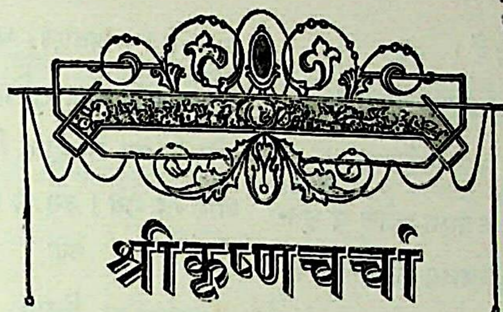
४३—सूर्य शिष्टों (सज्जनों) के ऊपर प्रकाश देते हैं, फिर दुष्टों (दुर्जनों) के ऊपर भी।

४४—यदि कहो कि तब दुःख, पाप, अशान्ति ये सब किस को हैं ? तो उस का जवाब यह है कि वे सभी हैं जीव के लिए; पर ब्रह्म निर्लिप्त ही है। साँप में जहर है; उस के काटने से दूसरा मर जाता है, पर (अपने जहर से) साँप को कुछ नहीं होता।

ब्रह्म अनिर्वचनीय है

४५—मुँह से कहा नहीं जा सकता कि ब्रह्म क्या है ? सब चीजें जूठी हो गईं; वेद, पुराण, तन्त्र—छः दर्शनशास्त्र—सभी जूठे हो चुके हैं ! इस लिए जूठे हुए हैं कि वे सभी मुँह से पढ़े गये—मुँह से उच्चारित हुए हैं। किंतु एक ही चीज है, जो उच्छिष्ट (जूठी) नहीं हुई। वह है ब्रह्म। ब्रह्म (वास्तव में) क्या है, वह आज तक कोई मुँह से कह नहीं सका।

४६—एक बाप के दो लड़के थे। ब्रह्मविद्या सीखने के लिए लड़कों को बाप ने किसी आचार्य के हाथ सौंप दिया। कुछ वर्ष बाद वे गुरुजी के घर से लौट आये। आकर बाप को प्रणाम किया। बाप का ख्याल हुआ कि इन के ब्रह्मज्ञान की जाँच करें। बड़े लड़के से पूछा—'बेटा, तू ने तो सब पढ़ लिया, बोल तो ब्रह्म कैसा है ?" बड़ा लड़का वेदों से नाना श्लोक कहकर ब्रह्म का स्वरूप समझाने लगा। बाप चुप रहा। उस ने जब छोटे लड़के से पूछा, तो छोटा सिर नीचाकर चुप हो गया। मुँह में कुछ भी बात नहीं। बाप तब प्रसन्न हुआ और छोटे लड़के से बोला—"बेटा, तू ने ही कुछ समझा है। ब्रह्म वस्तु क्या है, मुँह से कोई कह नहीं सकता।" (क्रमशः)



श्रीकृष्णचर्चा

(ज्ञानतपस्वी श्री गीतानन्दजी से)

"श्री भगवानुवाच"

संपादक (गीताधर्म)—व्यासजी के प्रसाद से मिले हुए दिव्य ज्ञान से संजय ने गीता सुनी थी और धृतराष्ट्र को सुनाई थी। बाद में संजय की उसी उक्ति का व्यासजी ने ज्यों का त्यों वर्तमान रूप में प्रकाश किया था। इस से तो यह स्पष्ट है कि गीता में कहा हुआ "श्री भगवानुवाच" संजय का ही कथन है, व्यासजी का नहीं; अन्यथा व्यासजी "श्री कृष्ण उवाच" अथवा "कृष्ण उवाच" ही कहते। तो अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि संजय ने किस आधार पर 'श्री' और 'भगवान्' इन दोनों पदों का प्रयोग किया है? मैं समझता हूँ कि शायद आप इस शङ्का का समाधान करने के लिए यही कहेंगे कि यह कथन केवल आदरार्थ है। यह बात तो ठीक ही है। कृष्ण का भगवत्त्व और श्रीमत्त्व संजय ने प्रत्यक्षीकृत किया ही था। तथापि मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि कृष्णजी के प्रति संजय की श्रद्धा के अतिरिक्त क्या गीता में कोई ऐसा वचन है जिस से इन दोनों विशेषणों का समर्थन होता है? अथवा इन्हें केवल औपचारिक मानकर ही संतोष कर लेना चाहिए?

गीतानन्दजी—मार्मिक प्रश्न पूछने के लिए मैं ने अनेक वार आप की प्रशंसा की है। तथापि आज यदि फिर से मैं आप की प्रशंसा करूँ, तो मेरे विचार से इस में 'पुनरुक्त दोष' नहीं है। यों तो गीता के अर्थ के पूछनेवाले जिज्ञासु बहुत अधिक संख्या में मेरे पास आते हैं, किंतु इस प्रकार की अन्तस्तलस्पर्शिनी शङ्काओं का समाधान करने के अवसर मुझे कभी कभी ही मिलते हैं। अस्तु।

आप के प्रश्न का उत्तर मैं बहुत संक्षेप में देता हूँ। संजय ने कृष्ण (भगवान्) का उल्लेख सब से पहले गीता के प्रथम अध्याय के १४ वें श्लोक में किया है।

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ॥
(गी० १-१४)

'मा' का अर्थ है लक्ष्मी या श्री और 'धव' का अर्थ है पति। अतः माधव का अर्थ हुआ श्रीपति या श्रीमान्। इसी प्रकार कृष्ण को श्री कृष्ण कहने का चलन हुआ है। अब भगवान् शब्द का सार्थक्य सुनिए।

'भग' शब्द के छः अर्थ हैं।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

गीता के प्रथम अध्याय के प्रथम श्लोक में धृतराष्ट्र ने जिस रहस्य की जिज्ञासा की है उस का उत्तर संजय ने गीता के अन्तिम (अर्थात् अष्टादश अध्याय के अन्तिम अर्थात् ७८वें) श्लोक में दिया है। (फलतः गीता के आदिम और अन्तिम इन्हीं दो श्लोकों में धृतराष्ट्र के प्रकृत जिज्ञास्य की दृष्टि से गीता परिसमाप्त है, ऐसा कहना सर्वथा सुसंगत है।) गीता का अन्तिम श्लोक यह है—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम॥

यहाँ पर 'योगेश्वर' पद से ज्ञान सूचित होता है। अर्जुन तो भगवान् की एक विभूतिविशेष ही हैं, क्योंकि कृष्णजी ने गीता में स्वयं कहा है कि 'पाण्डवानां धनंजयः' १०।३७। जो अर्जुन—

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन!
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते॥

—गी० १।३५

इस प्रकार की बातें कह रहा है कि मैं त्रैलोक्य के राज्य के लिए भी कौरवों को मारने के लिए तैयार नहीं हूँ, वह अवश्य ही अपने मन में बड़े निःस्पृह भाव का पोषण करनेवाला है। यह समझना चाहिए कि वह वैराग्य की पराकाष्ठा को लाँघ गया है। धनुर्धर शब्द से यहाँ पर यह अभिप्राय है कि फल की आकाङ्क्षा से रहित होकर वह स्वधर्माचरण करनेवाला है। अतएव धनुर्धरपद से भी अर्जुन का वैराग्यशाली होना सूचित होता है। इस प्रकार ज्ञान और वैराग्य का होना सिद्ध हुआ। अब चार गुण और रह गये। उन के लिए स्पष्ट शब्द रखे हुए हैं।

श्रीः = श्री
विजयः = यश
भूतिः = ऐश्वर्य
नीतिः = धर्म

इस प्रकार कृष्ण में भगवत्त्व अर्थात् ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन छः गुणों का होना प्रतिपन्न हुआ है। इस लिए कृष्णजी के लिए "श्री भगवान्" पद का प्रयोग करना संजय के लिए सर्वतोभावेन उचित है।

आप गीता के द्वारा अपनी शङ्का का समाधान कराना चाहते थे, सो यथामति मैं ने किया है। इस विषय में आप को और कुछ पूछना हो तो पूछिए।

सं०—आज के मनन के लिए तो इतना ही सुपर्याप्त था, किंतु केवल एक बात और पूछता हूँ कि क्या योग का अर्थ गीता में ज्ञान है?

गी०—संक्षेप में और संकेत मात्र से उत्तर यह है कि—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तावानहमव्ययम्॥

—गी० ४।१

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया॥

—गी० १८।६३

अतएव योग = ज्ञान।

इस का विस्तार एक स्वतन्त्र लेख का विषय हो सकता है। फिर कभी कहूँगा।

श्री श्री रामकृष्णचरितप्रसंग

(ले०—श्री स्वामी चिन्मयानन्दजी, श्री रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, लक्सा, काशी)

[गताङ्क पृष्ठ १६९६ से आगे]

पहला परिच्छेद

कलकत्ता में किसी के भी घर में श्री रामकृष्णजी का जब शुभागमन होता, तो थोड़ी ही देर में वह बात उन के विशिष्ट भक्तों को मालूम हो जाती। यह बात नहीं थी कि कोई इस समाचार को घर घर कह आता हो, बल्कि स्वतः भक्तों का प्राण ही श्री रामकृष्णजी के दर्शन के लिए सर्वदा उन्मुख रहता। यदि कोई किसी खास कारण से दक्षिणेश्वर तक उन का दर्शन करने नहीं जा सकते, तो दूसरों के घर में चले जाते और उन्हीं के संबन्ध में वार्तालाप करते और परम आनन्द का अनुभव किया करते। उन में से किसी को यदि श्री रामकृष्णजी का आना मालूम हो जाता, तो थोड़ी ही देर में अनेकों को विना चेष्टा के उस का पता लग जाता था। यह समझाना अब बहुत कठिन है कि श्री रामकृष्णजी की किस शक्ति से भक्तगण परस्पर एक अकथनीय प्रेमडोर में बँध गये थे। कलकत्ते के बागबाजार, शिमला, और आहिरीटोला मुहल्लों में ही श्री रामकृष्णजी के बहुतेरे भक्तों का निवास था। इस लिए प्रायः इन्हीं तीन जगहों में उन का आना अधिक होता था। उन में भी बागबाजार में और ज्यादा उन का आना हुआ करता था।

उक्त कई घटना के कुछ दिन बाद बागबाजार में स्वर्गस्थ बलराम बसु महाशय के घर श्री रामकृष्णजी ने एक दिन शुभागमन किया। बागबाजार मुहल्ले के बहुत से भक्त खबर पाकर वहाँ पहुँच गये। पूर्वोक्त भक्त (स्वामी तुरियानन्दजी) का घर नजदीक ही था। श्री रामकृष्णजी के (तुरियानन्दजी का) जिक्र करने पर मुहल्ले का कोई प्रतिवासी युवक जाकर उन को बुला लाया। बलराम बाबू के घर के दो मंजिले पर की सुन्दर बैठक में आकर भक्तों से घिरे हुए श्री रामकृष्णजी का उन्होंने दर्शन किया, और प्रणाम करके उन के पास ही बैठ गये। श्री रामकृष्णजी ने भी मुस्कराकर उन का कुशल समाचार पूछा एवं प्रकृत प्रसंग पर बात करने लगे।

प्रसंग की दो एक बात सुन कर ही वे (स्वामी तुरियानन्दजी) समझ गये कि श्री रामकृष्णजी आये हुए सब लोगों को यह समझा रहे हैं कि चाहे ज्ञान कहो या भक्ति, दर्शन कहो या और कुछ, ईश्वर की कृपा छोड़कर दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता। सुनते सुनते उन को यह अनुभव होने लगा कि श्री रामकृष्णजी ने उन के मन की गलत धारणा को हटाने के लिए ही आज मानों उस प्रसंग को उठा लिया है और उस संबन्ध में वे (श्री रामकृष्णजी) जो कुछ कह रहे हैं, सब उन्हीं को लक्ष्य करके कह रहे हैं।

श्री रामकृष्णजी कह रहे थे—"क्यों तुम जानते हो कि कामिनी काञ्चन ठीक ठीक मिथ्या है और जगत तीनों काल में असत् है, मन और विचार से ईश्वर की कृपा छोड़कर इस की ठीक ठीक धारणा होना ईश्वरलाभ नहीं होता। क्या सहज बात है ? क्या विना उन की कृपा से कुछ हो सकता है ? यदि कृपया वे वैसी धारणा करा दें, तो हो सकता है। नहीं तो मनुष्य स्वयं साधना करके उन की धारणा कैसे कर सकते हैं ? मनुष्य की कितनी शक्ति है ? उस

शक्ति द्वारा वे कितनी कोशिश कर सकते हैं ?" इस प्रकार ईश्वर की कृपा की बातें कहते कहते श्री रामकृष्णजी की समाधि लग गई। कुछ देर बाद अर्द्धबाह्यदशा को प्राप्त होकर फिर कहने लगे—"पहले एक ही ठीक नहीं कर सका, फिर और दूसरा एक माँगता है।" यह कहकर श्री रामकृष्णजी उसी प्रकार भावावस्था में गीत गाने लगे—

"ओरे कुशि लव, करिस् कि गौरव,
धरा ना दिले कि पारिस् धरते।"

गाते गाते श्री रामकृष्णजी की दोनों आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी, बिछौने तक भींग गये ! शिष्य (स्वामी तुरीयानन्द) भी उस अपूर्व शिक्षा से गद्‌गद होकर रोते रोते आकुल हो गये ! बहुत देर बाद दोनों प्रकृतिस्थ हुए।

शिष्य (स्वामी तुरीयानन्दजी) कहते थे—"वह शिक्षा सर्वदा मेरे हृदय में अङ्कित रही। उसी दिन से मैं ने समझा कि ईश्वर की कृपा न होने से कुछ होनेवाला नहीं है।"

श्री रामकृष्णजी के अद्वैत ज्ञान की गम्भीरता के संबन्ध में और भी एक बात कहते हैं। श्री रामकृष्णजी को उन दिनों बीमारी हुई थी। बीमारी के कारण काशीपुर (कलकत्ता) के एक बगीचे में आप रहने लगे। बीमारी बहुत कठिन थी। उन की बीमारी की बात सुनकर श्रीयुत शशधर तर्कचूडामणि कई एक साथियों को लिये हुए उन्हें देखने को आये।

शशधर पण्डित का श्री रामकृष्णजी से योगशक्ति द्वारा बीमारी अच्छी करने को कहना, और श्री रामकृष्णजी का उत्तर।

पण्डितजी ने बातों बातों में श्री रामकृष्णजी से कहा—"महाशय, मैं ने शास्त्रों में पढ़ा था कि आप जैसे महापुरुष इच्छामात्र से शारीरिक बीमारियाँ अच्छी कर सकते हैं। 'अच्छी हो जा' ऐसा ख्याल कर, मन को एकाग्र कर एक बार बीमारी की जगह पर कुछ देर तक रखने से ही सब बीमारी अच्छी हो जाती है। एक बार आप भी वैसा ही क्यों नहीं करते ?" श्री रामकृष्णजी ने कहा—"अरे ! तुम ने पण्डित होकर ऐसी बात कैसे कही ? जो मन सच्चिदानन्द को दे दिया, उस को वहाँ से उठाकर फिर क्या इस टूटे हुए हाड़ मांस के पिंजरे (पिण्ड) में देने की लगन होती है ?"

पण्डितजी निरुत्तर हो गये। किंतु स्वामी विवेकानन्द आदि भक्तगण निश्चेष्ट नहीं रहे। पण्डितजी के चले जाने पर उन्होंने श्री रामकृष्णजी से अत्यन्त उद्वेग से अनुरोध किया और कहा—"आप को अपनी बीमारी हटानी ही पड़ेगी। हमारे लिए इस को अच्छी कर दीजिए।"

स्वामी विवेकानन्द आदि भक्तों का श्री रामकृष्णजी से उस विषय में अनुरोध एवं उन का उत्तर।

श्री रामकृष्णजी—"अरे, मेरी क्या यह इच्छा है कि बीमारी को भोगता रहूँ ? मैं तो सोचता हूँ कि बीमारी अच्छी हो जाय, किंतु वह अच्छी होती कहाँ है ? अच्छी होना न होना सब माँ के हाथ है।"

स्वामी विवेकानन्द—"तो माँ से कहिए, वह अच्छी कर दें। वह तो आप की बात सुनेंगी ही।"

श्री रामकृष्णजी—"तू तो कहता है, पर वह बात मेरे मुँह से तो निकलती ही नहीं।"

स्वामी विवेकानन्द—"ऐसा नहीं होगा महाराज, आप को कहना ही पड़ेगा। हमारे लिए कहना होगा।"

श्री रामकृष्णजी—"अच्छी बात है, देखूँगा; हो सका कहूँगा।"

कुछ घंटों के बाद श्रीमत् स्वामी विवेकानन्दजी ने फिर श्री रामकृष्णजी के पास आकर पूछा—"महाराज, आप ने माँ से कहा था ? माँ ने क्या कहा ?"

श्री रामकृष्णजी—"माँ से कहा (गले की बीमारी दिखाकर)—'इस के कारण कुछ खा नहीं पाता हूँ। आप ऐसा कर दें कि जिस से दो दाने खा सकूँ।' यह सुनकर माँ ने (तुम सब लोगों को दिखाकर) कहा—'क्यों ? यों इतने मुँहों से तो खा रहे हो।' मैं लज्जित होकर फिर कुछ कह नहीं सका।"

श्री रामकृष्णजी के अद्वैतभाव की गम्भीरता ।

देहबुद्धि का कैसा अद्भुत अभाव है ! अद्वैतज्ञान में कैसी अपूर्व स्थिति है ! उस समय छः महीने पहले से ही श्री रामकृष्णजी का, रोज का, खाना शायद कुल चार पाँच छटाँक वाला था । ऐसी स्थिति में भी जगन्माता ने जैसे कहा 'यों इतने मुँहों से तो खा रहे हो', वैसे ही 'क्या अन्याय किया है ! इस तुच्छ शरीर से "मैं" कहा !' यह ख्याल कर श्री रामकृष्णजी लज्जित हो मुँह नीचा कर निरुत्तर हुए । पाठक, यह भाव क्या कभी कल्पना में भी ला सकते हो ?

श्री रामकृष्णजी का हर एक प्रकार की परीक्षाओं में उत्तीर्ण (पार) होना ।

कैसे एक अद्भुत परमहंस के साथ भक्तों की भेंट हुई थी ! ज्ञान, भक्ति, योग और कर्म—पुराने और नये सभी प्रकार के धर्मभावों का एक अपूर्व सामञ्जस्य उन में था। आज तक उन के भक्तों और शिष्यों में के बहुत लोग श्री रामकृष्णजी की जीवनलीला की गवाही देने के लिए मौजूद हैं । उपनिषदों के कर्ता ऋषि लोग कहते हैं कि ठीक ठीक ब्रह्मज्ञानी पुरुष सर्वज्ञ और सत्यसंकल्प हुआ करते हैं । संकल्प या इच्छामात्र से उन की इच्छा (ख्याल) को बाह्य जगत् के सभी पदार्थ—सभी शक्तियाँ वे मालूम मान लेती और उसी भाव से पलट भी जाती हैं। अतः वैसे पुरुष का अपना शरीर तथा मन भी अपने इच्छानुसार बदल जायगा; इस में कोई विचित्र बात नहीं है। उपनिषदों के ऋषियों की उस बात की सत्यता की परीक्षा करना साधारण मनुष्यों के लिए संभव नहीं है । तथापि यह बात भी सत्य है कि स्वामी विवेकानन्द आदि परमहंस श्री रामकृष्णजी के शिष्य लोग अपनी अपनी शक्ति के अनुसार जहाँ तक हो सकता था, उन की परीक्षा किया करते थे । वे लोग उन की जीवनलीला की चाहे जिस प्रकार भी सर्वदा समीक्षा करते, किंतु उस में कुछ भी कमी नहीं पाते । बल्कि श्री रामकृष्णजी हर दफे हर एक परीक्षा में हँसते हँसते पार हो गये ! वे कभी कभी अपने शिष्यों से दृढ़ता के साथ कहते थे—"अब तक अविश्वास ! विश्वास करो—पक्का कर समझ लो—कि जो राम और कृष्ण हुए थे वे ही अब (अपना शरीर दिखाकर) इस खोल (शरीर) के भीतर हैं । किंतु इस बार गुप्त भाव से आये हैं । जैसे राजा छद्म (छिपे) वेश में अपने राज्य में आते हैं; और कोई पहचान ले तो वहाँ से चले जाते हैं । इन का आना भी उसी प्रकार का हुआ है । (अर्थात् जब श्री रामकृष्णजी को सब लोग पहचान लेंगे तब वे भी शरीर छोड़ देंगे ।)"

श्री रामकृष्णजी के भावावस्था में देखे हुए विषयों का बाह्य जगत् में भी सत्य होना

श्री रामकृष्णजी के जीवन की बहुत घटनाएँ उपनिषदों में कहे गये बहुत से विषयों का अनुभव करा देती हैं । साधारणतया देखा जाता है कि मनुष्य के मन में जितने भी भाव प्रकट होते हैं, वे सभी यथार्थ में उस को 'स्वसंवेद्य' हैं । अर्थात् उन सब भावों के परिमाण, तीव्रता आदि का ठीक ठीक अनुभव केवल उसी को होता है । दूसरा उस भाव का केवल थोड़ा बहुत बाहरी विकास देखकर उस का अनुमानमात्र कर सकता है । भावसमाधि की उस प्रकार की स्वसंवेद्य प्रकृति (subjective nature) सभी के लिए अपने अनुभव का विषय है । सभी लोग जानते होंगे कि और और मानसिक चिन्ताओं की भाँति भावसमूह भी मानसिक विकार या शक्ति का विकासमात्र है । मन में ही उन का उदय और मन में ही उन का लय होता है। बाह्य जगत् में उन का रूप या उसी प्रकार की प्रतिकृति (आकार) देखना और दिखाना असंभव है। किंतु श्री रामकृष्णजी की भावसमाधि के बहुत विषयों में उस नीति का व्यतिक्रम (उलटापन) देखा जाता है ।

देखिए—साधनाओं के समय उन के अपने हाथों से बोये गये पञ्चवटी के नये अङ्कुरों को बकरों और गौओं ने खा लिया था। यह देखकर श्री रामकृष्णजी को उस स्थान के चारों ओर बेड़ लगाने की इच्छा हुई। इस से कुछ देर बाद ही गङ्गा के बान (लहर) से बेड़ बनाने की जरूरी सभी चीजें—तरह तरह की खूँटियाँ, बाँस, नारियल की रस्सी आदि—बहती हुई उस स्थान में आ गईं। उन चीजों से आप ने कालीमन्दिर के नौकर भर्तृहरि माली के सहारे बेड़ बना लिया। और देखिए—रासमणि के दामाद मथुरानाथ के साथ तर्क में उन्होंने कहा—"ईश्वर की इच्छा हो, तो सब हो सकता है। असंभव भी संभव होता है। लाल फूलों के पेड़ में भी सादा फूल खिल सकता है।" मथुरानाथ ने यह बात स्वीकार नहीं की। दूसरे ही दिन परमहंसजी ने बगीचे में जवाफूल के एक पेड़ की एक ही डाल में दो प्रकार के दो फूल देखे—एक लाल और एक सादा। उन्होंने फूलों के सहित उस डाल को तोड़ ली और उसे लाकर मथुरानाथ को दिया। उन के आश्चर्य की हद नहीं रही। और भी देखिए—तन्त्र, वेदान्त, वैष्णव, इस्लाम आदि जिस किसी भी मतानुसार साधना करने की श्री रामकृष्णजी के मन में जब कभी इच्छा होती, तो उसी समय उस उस मत के अनुयायी सिद्ध व्यक्ति दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर में आ पहुँचते और अपने अपने मतानुसार उन को दीक्षित करते थे। फिर देखिए—श्री रामकृष्णजी ने पहले ही भक्तों को समाधि की अवस्था में देख लिया था। उस के बाद उन को आह्वान करते रहे और अपने पास आने पर हर एक को उन्होंने पहचानकर स्वीकार किया। इस प्रकार की बहुत सी बातों का उल्लेख किया जा सकता है। विचार करने पर इन सब घटनाओं में यह देखा जाता है कि श्री रामकृष्णजी के मानसिक भाव साधारण मनुष्य के मानसिक भावों की भाँति केवल मानसिक चिन्ता या विकासरूप ही नहीं थे, किंतु बाह्य जगत् की घटनाएँ उन के मानसिक भावों के अनुसार हमारे अज्ञात किसी एक नियमवश रूपान्तरित हो जाती थीं। हम ने यहाँ उस सत्य का निर्देशमात्र करके इस प्रसंग को छोड़ दिया है। इस से पाठकों में जिन की जैसी रुचि और ख्याल हो वे वैसी ही आलोचना और अनुमान आदि करें; किंतु ये सभी घटनाएँ वास्तव में थीं वैसी ही।

उस का दृष्टान्त—पञ्चवटी का बाड़ इत्यादि।

हम ने पहले ही कहा है कि श्री रामकृष्णजी निर्विकल्प समाधि की अवस्था के समय छोड़कर और सब समय 'भावमुख' रहते थे। इसी लिए देखा गया है कि उन्होंने अपने पास आनेवाले हर एक भक्तों के साथ एक एक भिन्न भिन्न भाव का संबन्ध स्थापित कर बराबर उस उस संबन्ध को अक्षुण्ण (अटूट) रखा था। श्री श्री जगदम्बा की ह्लादिनी और संधिनी शक्ति के विशिष्ट विकास की जगह सभी स्त्रीमूर्तियों के साथ श्री रामकृष्णजी के जीवनपर्यन्त तक रहनेवाले मातृसंबन्ध की बात सर्वसाधारण में प्रसिद्ध है। किंतु हर एक पुरुष भक्तों के साथ उन के उसी प्रकार के एक एक संबन्ध की बात शायद अनेकों को मालूम नहीं है। इस लिए उस संबन्ध में यहाँ कुछ कहना अप्रासंगिक नहीं होगा। साधारणतया श्री रामकृष्णजी अपने भक्तों को दो स्तर या दरजे में विभक्त करते थे; कोई शिव के अंश से होनेवाले थे और कोई विष्णु के। उन्होंने इस प्रकार निर्देश किया कि उन दोनों दरजे के भक्तों की प्रकृति, आचार, व्यवहार तथा भजन में अनुराग आदि सभी विषयों में पार्थक्य है। यह पार्थक्य आप स्वयं समझ सकते थे। किंतु यह पार्थक्य क्या था, पाठकों को विशेषतया समझाना हमारे लिए कठिन है। अतः संक्षेप में पाठक यही समझ लें कि शिव और विष्णु का चरित्र मानों दो आदर्श साँचे हैं और उन दोनों साँचों में मानों हर एक भक्तों की मानसिक प्रकृति बनी हुई है। उन भक्तों के साथ श्री रामकृष्णजी के शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य आदि सभी प्रकार के भावों का संबन्ध स्थापित किया हुआ था। पर यह ध्यान देने की बात है कि भिन्न भिन्न

हर एक भक्त के साथ श्री रामकृष्णजी का भिन्न भिन्न संबन्ध।

भक्तों की प्रकृति देखकर श्री रामकृष्णजी का हर एक के साथ भाव या संबन्ध स्थापित करना।

व्यक्तियों के साथ भिन्न भिन्न भाव का संबन्ध था। जैसे— श्रीयुत नरेन्द्रनाथ (श्रीमत् स्वामी विवेकानन्दजी) के संबन्ध में परमहंसजी कहते थे—"नरेंदर (नरेन्द्र) मानो मेरे ससुर का घर है। (अपने को दिखाकर) इस के अंदर जो है वह मानों मादा है और (नरेन्द्र को दिखाकर) उस के अंदर जो है वह मानों नर है।" श्रीमत् स्वामी ब्रह्मानन्दजी (राखाल महाराज) को ठीक ठीक अपना लड़का सा मानते थे। संन्यासी और गृही हर एक विशिष्ट भक्तों के साथ श्री रामकृष्णजी का उस प्रकार का एक एक विशिष्ट भाव या संबन्ध था। यह कहना ही अधिक है कि साधारण हर एक भक्तों के प्रति उन की नारायणबुद्धि सर्वदा स्थिर रहती थी और इस कारण वे उन के साथ शान्तभाव के संबन्ध का अवलम्बन करके रहते थे।

हर एक भक्तों की भीतरी प्रकृति देखकर ही श्री परमहंसजी का उन के साथ उस प्रकार का भाव या संबन्ध स्थापित होता था। इस का कारण यह था कि श्री रामकृष्णजी कहते थे—"मनुष्यों के भीतर क्या है, वह सब वैसे ही देख पाता है, जैसे काँच की अलमारियों में उस के भीतर की सब चीजें देखी जाती हैं।" जिस की जैसी प्रकृति है उस से उलटा आचरण वह कभी कर नहीं सकता। अतः किसी भक्त के लिए श्री रामकृष्णजी के उस संबन्ध या भाव के विपरीत चलना या आचरण करना संभव नहीं था। यदि कभी कोई दूसरों को देखकर विपरीत आचरण कर बैठता, तो परमहंसजी उस से विरक्त हो जाते और उस की भूल उसे अच्छी तरह से दिखा देते। जैसे श्रीयुत गिरिश को श्री रामकृष्णजी भैरव कहते थे। दक्षिणेश्वर में कालिका माता के मन्दिर में भावसमाधि में उन्होंने गिरिश को वैसा ही देखा था। परमहंसजी श्रीयुत गिरिश के बहुत चुलबुलापन और उन की कठिन भाषा को सर्वथा सहन करते थे, क्योंकि वे उन की उस प्रकार की भाषा के आवरण में छिपा हुआ अनोखा आत्मनिर्भरता का भाव देख पाते थे। गिरिश का अनुकरण करके श्री रामकृष्णजी के एक दूसरे प्रिय भक्त ने एक दिन उसी प्रकार की भाषा का उपयोग किया था। परमहंसजी उस से बहुत विरक्त हुए और बाद में उस की भूल उन्होंने सुधार दी। अस्तु; अब हम प्रकृत प्रसंग पर चलें।

श्री रामकृष्णजी का भक्तों को कितने ही प्रकार से धर्म-मार्ग पर बढ़ाना।

भावमुख अवस्था में स्थित श्री रामकृष्णजी स्त्री या पुरुष हर एक भक्तों के (अपनी प्रकृति के अनुसार) आध्यात्मिक भाव समझ लेते और उन के साथ उस उस भाव के अनुसार एक प्रेम का संबन्ध स्थापित कर रखते थे। उस उस भाव के संबन्ध का आश्रय लेकर हर एक को भगवान् के दर्शन प्राप्त करने के मार्ग पर वे कैसे बढ़ा देते थे, पाठकों को यहाँ उस का कुछ परिचय देकर हम इस अध्याय की समाप्ति करेंगे। अद्वैतभाव की भूमि-पर से उतरकर श्री रामकृष्णजी ने स्वयं सख्य, वात्सल्य तथा मधुर रस की उपलब्धि के लिए साधनाएँ करके उस उस भाव की पराकाष्ठा (चरम सीमा–हद) प्राप्त की थी। इन साधनाओं को कर चुकने के बहुत दिन बाद जब भक्त-गण उन के पास आ गये तब एक दिन परमहंसजी को भावावस्था में इच्छा हुई कि भक्तों को भी भावसमाधि मिले। इस के लिए उन्होंने जगदम्बा से प्रार्थना भी की थी। इस के बाद भक्तों में भी किसी किसी को उस प्रकार का भाव प्राप्त होने लगा। भावावस्था में बाह्य जगत् और शरीर आदि का बोध कम हो जाता था और भीतर एक विशिष्ट भावप्रवाह प्रकट होता था। जैसे, किसी मूर्ति की चिन्ता इतनी स्पष्ट हो जाती कि वह मूर्ति मानों ज्वलन्त—जीवन्त—रूप से साफ साफ सामने हाजिर हुई दिखाई पड़ती और मालूम होता कि हँस रही है, बात कर रही है; इत्यादि। जब ये लोग भजन गीत आदि सुनते, तो उन्हें अक्सर इस तरह का भाव हुआ करता था।

श्री रामकृष्णजी के और एक दरजे के भक्त थे, जिन को संगीत आदि सुनने पर वैसा भाव नहीं होता, पर ध्यान आदि करते समय देवमूर्ति आदि का दर्शन होता था। पहले पहल उन की दर्शन ही होता पीछे ध्यान जितना गाढ या गम्भीर होता जाता उतना ही उन मूर्तियों का हिलना डुलना, बात करना आदि भी वे देख पाते थे। किसी किसी को पहले पहल नाना प्रकार के दर्शन आदि होते, पर ध्यान के गम्भीर होने पर फिर वैसा नहीं होता। किंतु आश्चर्य की बात तो यह है कि श्री रामकृष्णदेवजी इन के हर एक के दर्शन और अनुभव आदि की बात सुनकर ही समझ लेते कि कौन किस श्रेणी या दरजे का है, किस को क्या आवश्यक है एवं बाद को भी उन में से कौन क्या दर्शन आदि करेगा। दृष्टान्त के लिए हम यहाँ एक की ही बात कहते हैं।

भक्तों को देव देवियों को मूर्तियों का दर्शन।

श्रीमद् काली महाराज (स्वामी अभेदानन्दजी) ने श्री रामकृष्णदेव से उपदेश लेकर ध्यान आदि करना शुरू किया। पहले पहल ध्यान के समय उन को नाना भाव से इष्टमूर्ति का दर्शन होने लगा। जैसा जैसा दर्शन मिलता, वे बीच बीच में कभी कभी दक्षिणेश्वर में आकर परमहंसजी से सब कह जाते। परमहंसजी भी कहते कि 'ठीक है' 'ऐसा ही करना' इत्यादि।

बाद को एक दिन श्रीमद् काली महाराज ने ध्यान के समय देखा कि जितनी (देव देवियों की) मूर्तियाँ हैं, सब एक ही मूर्ति के शरीर में मिल गईं। श्री रामकृष्णजी से यह बात कहने पर उन्होंने कहा—"जा तुझे वैकुण्ठ का दर्शन हो गया। इस के बाद अब दूसरा और दर्शन नहीं मिलेगा।" श्रीमान् स्वामीजी (अभेदानन्दजी) कहते हैं—"वास्तव में हुआ भी वैसा ही। ध्यान करते करते कोई दूसरी मूर्ति फिर देखने में नहीं आई। श्री भगवान् के सर्वव्यापित्व आदि दूसरे प्रकार के उच्च भावसमूह आकर हृदय पर अधिकार कर बैठते। मुझे उन दिनों मूर्तियों का दर्शन करना अच्छा लगता था। फिर उसी प्रकार के दर्शन आदि के लिए सब कोशिश भी करता था। किंतु कोशिश करने से क्या; किसी तरह से भी किसी भी मूर्ति का दर्शन नहीं मिलता।"

किसी भक्त को वैकुण्ठ का दर्शन।

श्री रामकृष्णजी साकारवादी भक्तों से कहते थे—"ध्यान करने के समय सोचना कि मन को मानों रेशम की डोरी से इष्ट (ध्येयरूप) के पादपद्म में बाँध दिया है, जिस से वहाँ से फिर कहीं जा नहीं सकता। रेशम की डोरी क्यों कह रहा हूँ जानते हो? इस लिए कि वह पादपद्म बड़ा नाज़ुक है; दूसरी डोरी बाँधी जाने पर उस में गड़ जायगी।" और भी आप कहते थे—"ध्यान के करने के समय इष्ट की चिन्ता करके उस के बाद क्या और बाक़ी समय उन को भूल कर रहना है? कुछ न कुछ मन को सर्वदा उधर रखना चाहिए। देखा तो होगा, दुर्गा पूजा के समय एक यागप्रदीप (अखण्ड ज्योति) जला रखना पड़ता है। देवता के पास सर्वदा एक दीप रखना पड़ता है, उसे बुझने नहीं देते; बुझने पर गृहस्थ का अकल्याण होता है। उसी प्रकार हृदय पद्म में इष्ट (ध्येय आदर्श) को बिठाकर उन की चिन्ता (स्मरण मनन) रूपी यागप्रदीप सर्वदा जला रखना चाहिए। संसार के सारे कर्म करते करते भी बीच बीच में भीतर की ओर ख्याल करके देखना चाहिए कि वह दीपक जल रहा है या नहीं।"

साकार वादियों के प्रति श्री रामकृष्णजी का उपदेश।

रेशम की डोरी और अखण्ड ज्योति।

वे फिर कभी कहते थे—"अरे, उन दिनों इष्ट की चिन्ता करने से पहले सोचता था कि मानों मन के भीतर अच्छी तरह से धो दे रहा हूँ! मन के भीतर नाना प्रकार की मैल पड़ी (चिन्ता, वासना) आदि रहती हैं न? उन सब को अच्छी तरह से धोकर साफ करके—हटा करके—उस में (हृदय में) इष्ट को बैठाता हूँ। तुम भी इसी प्रकार का ख्याल करना।" इत्यादि।

ध्यान करने से पहले मन का धोना।

श्री रामकृष्णदेवजी ने किसी समय श्री भगवान् के साकार और निराकारभाव की चिन्ता के संबन्ध में अपने शिष्यों से कहा था—"कोई तो साकार के जरिये निराकार में पहुँचता है, और कोई निराकार के जरिये साकार में।" परमहंसजी के परम भक्त श्रीयुत गिरिशचन्द्र के घर में एक दिन उन के एक भक्त (श्रीयुत देवेन्द्रनाथ वसु) ने पूछा था—"निराकार दो प्रकार का है—पक्का और कचा। पक्का निराकार ज़रूर ऊँचे भाव का है। साकार के जरिये उस निराकार में पहुँचना होता है। कचा निराकार वह है, जैसे आँखों के मूँद ने से ही अन्धकार; यथा ब्राह्मसमाज का निराकार।" पाश्चात्य शिक्षा के फलस्वरूप कच्चे निराकार को मानकर साधना करनेवाला (श्रीरामकृष्णजी के भक्तों का) एक दल और था। श्री रामकृष्णजी उन को ईसाइ पादरियों की भाँति साकारभाव की चिन्ता की निन्दा करने से या श्री भगवान् की साकार मूर्ति का अवलम्बन कर साधना करनेवाले भक्तों के साथ 'पौत्तलिक', 'अन्धविश्वासी' आदि कहकर द्वेष करने से मना करते थे।

साकार बड़ा है या निराकार?

आप कहते थे—"अरे, वह साकार भी है और निराकार भी। इस के ऊपरान्त वह और भी क्या है, कौन जानता है?" "साकार कैसे होता है, जानते हो?—जैसे, जल और वर्फ। जल जमकर वर्फ होता है। वर्फ के भीतर बाहर सब जल ही जल है। जल से अतिरिक्त वर्फ और कुछ भी नहीं। किन्तु देख, जल का रूप नहीं है, (कोई विशिष्ट आकार नहीं है), लेकिन वर्फ का आकार है। उसी प्रकार अखण्ड सच्चिदानन्दरूप सागर का जल भक्तिरूप हिम से जमकर वर्फ की भाँति नाना आकारों को धारण किया करता है।" श्री रामकृष्णजी के इस दृष्टान्त ने बहुत से लोगों के मन में यह धारणा पक्की कर दी और इस तरह उन्हें शान्ति भी दी है कि श्री भगवान् के साकार और निराकार दोनों भावों का एकत्र, एक ही समय समावेश होना संभव है।

साकार और निराकार में सामञ्जस्य।

इस प्रसंग में और भी एक बात कहनी है। श्री परमहंसजी के कच्चे निराकारवादी भक्तों में (केवल उसी दल में नहीं, बल्कि परमहंसजी तो उन को समस्त श्रेणी या दरजे के सभी भक्तों में अग्रगण्य (श्रेष्ठ) मानते थे) सब से प्रधान (मुखिया) थे श्रीयुत नरेन्द्रनाथ या स्वामी विवेकानन्द। नरेन्द्रनाथ उन दिनों पाश्चात्य शिक्षा या ब्राह्मसमाज के प्रभाव से साकारवादियों के ऊपर कभी कभी थोड़ा बहुत कटाक्ष (तिरछी नजर या व्यङ्गय) कर बैठते। उन का यह भाव विशेषतया तर्क के ही समय देखा जाता। श्री रामकृष्णजी भी कभी कभी उन के साथ साकारवादी किसी न किसी भक्त को घोर तर्क में लगा देते और बैठे बैठे मजा देखते। इस प्रकार तर्क में स्वामीजी के सामने कोई टिक नहीं सकता। और कोई कोई तो उन की तीव्र युक्तियों से निरुत्तर होकर मन में क्षुण्ण (दुःखी) भी हो जाते थे। श्री रामकृष्णजी वे बातें अनेकों बार दूसरों से सानन्द कहते थे—"अमुक की बातें नरेंदर ने उस दिन कचकच कर (अनायास) काट दीं! क्या बुद्धि है!" इत्यादि। किंतु साकारवादी गिरिश (नाट्यकार गिरिशचन्द्र घोष) के साथ तर्क में एक दिन स्वामीजी (विवेकानन्दजी) को निरुत्तर होना पड़ा था। हमारा विश्वास है कि उस दिन श्री रामकृष्णजी ने श्रीयुत गिरिश के 'विश्वास' को और भी दृढ और पुष्ट करने के लिए ही मानों उन का पक्षपात किया था। अस्तु।

स्वामी विवेकानन्द और अन्धविश्वास।

स्वामी विवेकानन्दजी ने एक दिन श्री भगवान् में विश्वास के सम्बन्ध में बातों ही बातों में श्री रामकृष्णजी से

साकारवादियों के विश्वास को 'अन्धविश्वास' कहा। श्री परमहंसजी ने इस के उत्तर में उन से कहा—"अच्छी बात है! अन्धविश्वास किसे कहते हो? इस को मुझे समझा सकते हो? विश्वास के तो सभी हिस्से अन्ध हैं। फिर विश्वास की आँखें कहीं है? यों तो बोल 'विश्वास' नहीं तो बोल 'ज्ञान'। अगर यह न हो, तो यह कैसे हो सकता है कि कोई तो अन्ध है और किसी के आँखें हैं?" स्वामी विवेकानन्दजी कहते थे—"मैं उस दिन यथार्थ में परमहंसजी को अन्धविश्वास का अर्थ समझाने जाकर बहुत मुश्किल में पड़ गया था। उस का कोई भी अर्थ हजार बार ढूँढने पर भी मुझे नहीं मिलता था। परमहंसजी की ही बात ठीक है समझ कर, मैं ने उस दिन से फिर उस का कहना ही छोड़ दिया।"

निराकारवादियों के प्रति उन का उपदेश।

श्री रामकृष्णजी कच्चे निराकारवादी और साकारवादी दोनों को बराबर नजर से देखते थे। कच्चे निराकारवादियों को भी आप जिस प्रकार ध्यान करने से उन का कल्याण होगा, वह उपाय बतला देते। परमहंसजी कहते थे—"देख, मैं उन दिनों (इस भाव के साधन के समय) सोचता था कि भगवान् मानों समुद्र के जल हैं। समुद्र के जल की भाँति वे मानों समस्त पृथिवी पर व्याप्त होकर वर्त रहे हैं और मैं मानों एक मछली हूँ—उस सच्चिदानन्दसागर में डूब रहा हूँ, बह रहा हूँ, तैर रहा हूँ! फिर कभी ख्याल होता कि मानों मैं एक घड़ा हूँ। उस जल में डूबा जा रहा हूँ, और मेरे भीतर बाहर वे ही अखण्ड सच्चिदानन्द पूर्ण होकर वर्त रहे हैं।"

श्री रामकृष्णजी का, अपनी मूर्ति का ध्यान करने का, उपदेश।

फिर कभी कहते थे—"देख, ध्यान करने के लिए बैठने से पहले एक बार (अपने को दिखाकर) इस को सोच लेना। ऐसा क्यों कहता हूँ जानते हो? इस के ऊपर तुम्हारा विश्वास है, न?—इसी लिए। इस को सोचने से ही उन की (भगवान् की) याद आ जायगी। जिस प्रकार गायों के झुण्ड को देखने से रखवाले (गोपाल-ग्वाले) का ख्याल होता है, लड़के को देखने से उस के बाप की बात का ख्याल होता है, वकील को देखने से कचह[री] की बात का ख्याल होता है; उसी प्रकार इस को देखने [से] भगवान् का ख्याल आयगा। समझ गये हो? म[न] नाना जगहों में फैला हुआ रहता है। इस को सोचने [से] ही मन एक जगह एकाग्र हो जायगा और उस मन [से] ईश्वर की चिन्ता करने पर ठीक ठीक ध्यान लग जायगा।"

और भी कहते थे—"जिस (मूर्ति) को अच्छा ल[गे] जिस भाव को अच्छा लगे, एक को और एक ही भाव [को] अच्छी तरह से पकड़ो, त[ब] तो पक्का होगा। अ[...] भाव का विषय है। भा[व] को छोड़कर अभाव—वि[ष]य भाव—से उसे पकड़ा नहीं जा सकता। इस लिए भा[व] चाहिए। किसी एक भाव को लेकर उसे पुकारना चाहिए। जैसा भाव होता है वैसा ही लाभ होता है। वही मूल प्रत्यय है। एकाग्र भावना से ही भाव की उत्पत्ति होती है। इस लि[ए] भाव—भावना—चाहिए, विश्वास चाहिए। अच्छी तरह से पकड़ना चाहिए—तब होगा। भाव किस को कहते हैं, जानते हो? उन के (ईश्वर के) साथ कोई संबन्ध करने का नाम भाव है। उसी को सर्वदा ख्याल में रखना चाहिए। जैसे 'मैं उन का दास हूँ, मैं उन की संतान हूँ, मैं उन का अंश हूँ'। यह है पक्का अहंभाव, विद्या का अहंभाव। इस को खाते पीते, सोते, बैठते हर समय याद रखना चाहिए। फिर 'मैं ब्राह्मण हूँ, मैं कायस्थ हूँ, मैं अमुक का लड़का हूँ, मैं अमुक का बाप हूँ' यह सब है अविद्या का अहंभाव। इसे छोड़ना चाहिए—त्यागना चाहिए। इस में अभिमान—अहंकार—बढ़ने से बन्धन होता है।

पक्का अहंभाव और कच्चा अहंभाव।

एक भाव को अच्छी तरह से पकड़ने से तब ईश्वर से जिद किया जा सकता है।

(क्रमशः)

सर्वधर्म-परिषद्

सोमवार, मार्च १–८, १९३७*

धर्मों की पार्लामेंट

प्रारम्भिक गान

वेदमन्त्र

(श्रीमती सरलादेवी चौधरी के द्वारा संगीतरूप में रूपान्तरित)

संगच्छध्वं संवदध्वं ।
सं वो मनांसि जानताम् ॥
समानो मन्त्रः समितिः समानी ।
समानं मनः सहचित्तमेषाम् ॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥

अर्थ—

१. एक साथ चलो, एक साथ बोलो, एक साथ तुम्हारे मन सोचें समझें। (अर्थात् कायेन, वाचा और मनसा सभी प्रकार से आप लोग एक साथ रहो।)

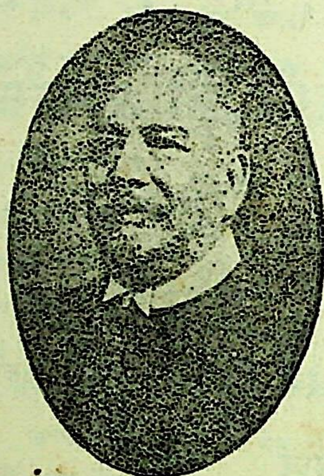
२. मन्त्र एक हो, समिति एक हो, इन का मन भी चित्त के साथ ही एक हो। (अर्थात् जो कुछ करो सोच समझकर, एक होकर, एक मन से करो।)

३. जिस प्रकार आप लोगों का सुन्दर साथ हो गया है (इस संसार और समाज में एक साथ जन्म हुआ है) उसी प्रकार आप लोगों का संकल्प एक हो, हृदय एक हो और मन एक हो।

* यह वैदिक गान नित्य ही पहली मार्च से ८ मार्च तक परिषद् के प्रारम्भ में गाया जाता था—सं०।

स्वागतसमिति के अध्यक्ष सर एम० एन० मुकर्जी का

भाषण



(सर एम० एन० मुकर्जी)

गीताधर्म के अगस्त के अङ्क में पृष्ठ १६६९ पर देखिए



सभापतियों के भाषण

(१) सर ब्रजेन्द्रनाथ सील

(भूतपूर्व वाइसचांसलर, मैसूर यूनिवर्सिटी)

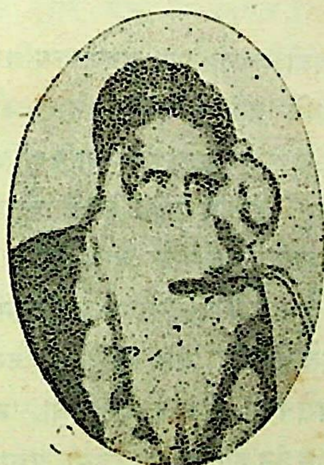
(चन्द्रवार, १ मार्च)

प्रिय मित्रो,

यह सर्वधर्मपरिषद् जो कि आज से प्रारम्भ हो रही है, साल भर तक मनाये जानेवाले उत्सवों के उस कार्यक्रम का एक अङ्ग—शायद अन्तिम अङ्ग—है जो परमहंस रामकृष्ण के जन्म अथवा जैसा कि दूसरे लोग समझते हैं कि इस संसार में उन के पदार्पण की शताब्दी से संबन्ध रखता है।

मुझे याद है कि सिस्टर निवेदिता के प्रार्थना करने पर मुझे "स्वामी विवेकानन्द की मानसिक उन्नति की प्रारम्भिक अवस्था" (An Early stage of Vivekanand's Mental Development शीर्षक लेख को लिखे हुए पच्चीस वर्ष से अधिक हो चुके होंगे। मैं ने उस लेख का अन्त विवेकानन्द

के गुरु श्री रामकृष्ण से होनेवाली अपनी भेंट का वर्णन करके किया था। उस संध्या के समय आँधी चल रही थी तथा साथ ही साथ बादलों की गरज और बिजली की चमक भी थी। ये सब बातें उस भेंट से मेरे अंदर पैदा होनेवाली खलबली के बहुत ही अनुकूल थीं। आज इस तीसरे पहर के समय अपनी जीवनसंध्या की निर्वेदपूर्ण शान्ति में मैं इसे अपना विशेष सौभाग्य समझता हूँ कि मैं इस सभाभवन में शरीर से अथवा आत्मा से उपस्थित इन हजारों व्यक्तियों के साथ, उस व्यक्ति



(सर ब्रजेन्द्रनाथ सील)

के शताब्दी उत्सव में भाग ले रहा हूँ जो व्यक्ति इस पृथिवी पर प्रवास करते समय देश और काल से परे था।

इस सर्वधर्मपरिषद् ने दूर और नजदीक सभी स्थानों से प्रेमपूर्ण सद्भावनाएँ प्राप्त की हैं। इस सभा में भाग लेनेवाले व्यक्ति जो शरीररूप से यहाँ पर उपस्थित हैं, धर्म, जीवन, नैतिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक उन्नति की समस्याओं के संबन्ध में भिन्न भिन्न दृष्टियों से विचार करने जा रहे हैं। इस सभा के सामने उपस्थित किये जानेवाले कुछ लेखों का विषय रामकृष्णजी का उपदेश ही है। मैं तो केवल उस महात्मा के संबन्ध में अपने कुछ संस्मरण ही उपस्थित करूँगा तथा मनुष्यमात्र के विचारक्षेत्र और कार्यक्षेत्र के लिए उन्होंने जो कुछ दिया है उस का दार्शनिक और ऐतिहासिक दृष्टियों से वर्णन करूँगा।

लड़कपन की प्रारम्भिक अवस्था में रामकृष्ण कृष्णलीला और गाजनगीत (Gajan songs ?) आदि साधारण प्रदर्शनों और तमाशों में भाग लेते थे। इन साधारण तमाशों में वे कृष्ण अथवा शिव के चरित्रों का अभिनय करते थे। अपने बड़े भाई की मृत्यु हो जाने के बाद वे कलकत्ता के समीप दक्षिणेश्वर की कालीबाड़ी (कालीजी के मन्दिर) में पुजारी हो गये। वे दैवी माता कालीजी को साक्षात् देखना चाहते थे और उन्होंने यह धमकी दी कि यदि कालीजी उन के सामने न प्रकट होंगी, तो वे अपने पेट में कोई हथियार भोंककर आत्महत्या कर लेंगे। वे अर्द्धविक्षिप्त हो गये थे और आखिरकार, जैसा कि उन का विचार था, उन्हें कालीजी का दर्शन हो गया।

इस के पश्चात् वे तपस्या करने लगे। उन्होंने काम और काञ्चन के त्याग की प्रतिज्ञा की थी। एक हाथ में सोना और दूसरे हाथ में मिट्टी लेकर वे कहा करते थे कि 'सोना मिट्टी है और मिट्टी सोना है।' इसी प्रकार उन्होंने शरीर की सभी कामनाओं को वशीभूत कर लिया था और अन्त में वे प्रत्येक स्त्री को माता के समान मानकर उस का आदर करते थे।

एक सुन्दरी युवती ने उन को तान्त्रिक साधनाओं की ओर फुसला लिया था। वे उस की गोद में लेटकर कालीजी का ध्यान किया करते थे। वह

पूजा की क्रियाओं में मांस और मदिरा का व्यवहार करनेवाली ब्रह्मचारिणी थी। वे उस स्त्री को नग्न देवी के रूप में पूजते थे। इस प्रकार उन की सभी इन्द्रिय संबन्धी वासनाएँ जलकर नष्ट हो चुकी थीं।

वे प्रत्येक धर्म का अनुभव उस की साधना अथवा आध्यात्मिक सुव्यवस्था की पूर्णता के साथ करना चाहते थे। कभी वे मुसलमान फकीर बन जाते थे और उसी पद के उपयुक्त रीति रिवाज, भाव और पोशाक का व्यवहार करते थे; और कभी नया बना हुआ ईसाई बन जाते थे और अपने को पापी मानकर मोक्ष के लिए पुकार मचाते थे। इन सब बातों में कोई भी बात केवल दिखाव या कल्पना न थी। इसी प्रकार वैष्णवसंकीर्तन तथा संगीत भी उन के धार्मिक कार्यों में शामिल हो गये थे।

प्रारम्भ में रामकृष्ण पर जिन लोगों का व्यक्तिगत प्रभाव पड़ा था उन में से आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती उल्लेखनीय हैं। दयानन्द ने वेदों को अपना आधार माना था। वे यह मानते थे कि वेदों से एक विश्वधर्म की शिक्षा मिलती है। वे एक लड़नेवाले के समान भाव रखकर सब प्रकार की मूर्तिपूजा का विरोध करते थे। किंतु रामकृष्ण पर उन का स्थायी अथवा गहरा प्रभाव न पड़ सका। रामकृष्ण की सचाई ने उन में हिंदुओं में प्रचलित रीतियों के विरुद्ध विद्रोह करने की प्रवृत्ति पैदा कर दी थी। वे जात पाँत से घृणा करते थे तथा मेहतर की भी सेवा करने के लिए तैयार थे। यह बात शायद वेदों के माननेवालों को भी अच्छी न लगती। ये तोतापुरी तथा अन्य संतों की ओर आकृष्ट होते थे और इस प्रकार के अनेक अनुभवों ने उन्हें अपने जीवन के मिशन (Mission) के लिए तैयार कर दिया था। तोतापुरी ने ही उन्हें संन्यास की ओर लगा दिया था।

उन पर ब्रह्मसमाज का भी प्रभाव पड़ा था। ब्रह्मानन्द केशवचन्द्र ने जिस नवविधान (New Dispensation) का उपदेश दिया था उस के कारण रामकृष्ण के ध्यान में वे सामाजिक बुराइयाँ और अनीतियाँ चढ़ गई थीं जिन्होंने बाद के हिंदूधर्म और धार्मिक प्रथाओं को खराब कर दिया था।

रामकृष्णजी अपना एक पृथक् व्यक्तित्व रखते थे। निरुपाधि दृष्टि से सत्य पदार्थ का विचार करते समय वे सब प्रकार की उपाधियों का निषेध करते थे, किंतु सोपाधि दृष्टि में वे काली अथवा दैवी माता तथा देवताओं के अन्य रूपों की पूजा करते थे। वे सब में एक की तथा एक में सब की उपासना करते थे और ऐसा करने में उन्हें किसी प्रकार का विरोध न दिखाई देता था, प्रत्युत एक पूर्ण सत्य का दर्शन होता था। इसी प्रकार उन्होंने साकार और निराकार उपासना का भी मेल कर दिया था। उन को देवताओं के साकार रूप में अपने स्वरूप में स्थित परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता था। उन की दृष्टि में प्रकृति और पुरुष में कोई भेद न था।

वे इस बात को मानने से इनकार करते थे कि हम सब परिस्थितियों तथा शरीर संबन्धी सब दुर्बलताओं से परे हैं। किंतु समाधि के अवसर पर उन्हें विशुद्ध रूप में हर्षोन्माद हो जाता था। वैसा हर्षोन्माद पाश्चात्य देशों के धार्मिक संसार में एकार्ट (एखार्त Eckhart) और टायूलर

(Taculer) के बाद से शायद ही कहीं देखा गया होगा।

बहुत से हिंदू संतों के समान उन के पास भी घरेलू कहावतों वचनों, रूपकों अन्योक्तियों और दृष्टान्तों का अटूट भण्डार था जिस के द्वारा कम से कम समझवाले लोगों और यहाँ तक कि एक बच्चे के भी ध्यान में आध्यात्मिक बातें बैठा दी जा सकती थीं।

राममोहन राय, जो सचमुच आधुनिक भारतवर्ष के उत्पन्न करनेवाले कहे जा सकते हैं, एक ऐसे विश्वधर्म को ढूँढते थे जो हिंदू, मुसलमान, ईसाई तथा अन्य दूसरे धर्मों का आधार हो। उन्हें यह विदित हो गया था कि इन बड़े बड़े धर्मों में से प्रत्येक धर्म कुछ ऐतिहासिक तथा शिष्टता संबन्धी भेदों के सहित इसी साधारण धर्म पर निर्भर है। इस बात की ओर ध्यान देना आवश्यक है कि अपने एक शरीर में ही राममोहन राय दो रूपों में थे। प्रथम तो वे एक कट्टर विश्व की एकता को माननेवाले थे. और इस रूप में उन्होंने निश्चयात्मक तथा कार्यात्मक ढंग से उस पंथ की रचना की जो कि 'निओ-थियोफिलैन्थ्रापी' (Neo-theophilanthropy) अर्थात् 'परमात्मा और मनुष्यमात्र के प्रति नवीन प्रेम' कहा जाता है। इसी के आधार पर उन्होंने गायत्री बनाई। और आश्चर्य की बात है कि ये हिंदू पश्चिम में माने जानेवाले यूनीटैरियन (Unitarian) पंथ तथा उपासना के तीन आचार्यों में से एक आचार्य हो गये हैं।

दूसरे रूप में राममोहन राय एक राष्ट्रीय सुधारक थे। और उन्होंने तीन भिन्न मार्गों में काम किया था—१. हिंदू सुधारक के नाते उन्होंने वेदान्त में से लेकर हिंदूशास्त्रों का एक समन्वित संग्रह तैयार किया था। २. एक धर्मरक्षक मुसलमान के समान उन्होंने तुफ़ातुल मोवाहिदीन और मनाजरातुम अदियान लिखे थे जो विवादात्मक ग्रन्थ थे। ३. और अन्त में एक ईसाई के समान, ईसाईधर्मप्रचारकों के साथ तर्क वितर्कों के रूप में उन्होंने पुराने और नये सभी धर्मग्रन्थों का एक यूनिटेरियन (Unitarian) रूप तैयार कर दिया था। इस प्रकार राममोहन राय स्वयं विश्व की एकता की भावना भी रखते थे तथा एक में ही मिली हुई तीन राष्ट्रीयताओं से युक्त भी थे।

महर्षि देवेन्द्रनाथ ने आदि ब्रह्मसमाज में विश्वासों, रीति रिवाजों और अनुष्ठानों की व्यवस्था हिंदुओं के उपनिषदों के आधार पर की थी।

एक ऐसे विश्वधर्म की रचना का काम जो हिंदू अथवा ईसाईधर्मशास्त्रों से पृथक् हो, ब्रह्मानन्द केशवचन्द्र सेन पर पड़ा। उन्होंने उद्धार की भावना के आधार पर इस काम को करने का प्रयत्न किया और इस प्रकार धार्मिक रीतियों और पूजा की विधियों को सुव्यवस्थित किया। पहले केशवचन्द्र ने ईसाईधर्म को अपना केन्द्रीय धर्म बनाया था, किंतु बाद के जीवन में वे भावात्मक तथा धार्मिक कार्यों के लिए वैष्णवधर्म की ओर अधिक आकृष्ट हुए थे। यह चुन चुनकर बनाया हुआ उदार धर्म था। इस प्रकार उन्होंने धार्मिक अनुभवों, विचारों, रीति रिवाजों और पूजाओं को ऐसा नवीन रूप और ऐसी पूर्णता दे दी जिस का कि पहले कभी प्रयत्न नहीं किया गया था। और दूसरे धर्मों को छोड़ देने पर भी बौद्ध, ईसाई, इस्लाम तथा वैष्णवधर्मों में से प्रत्येक ने केशवचन्द्र के नवविधान (New Dispensation) नामक धर्म को अपना सार पदार्थ दे दिया था। उस में जो कुछ नई बातें थीं वे थीं उदारता और शिष्टता।

दूसरा कदम (और वास्तव में यह एक महत्त्वपूर्ण प्रेरणा थी) परमहंस रामकृष्ण ने बढ़ाया था। ये परमहंस प्रत्येक पंथ और धर्म का उस के पूर्ण रूप में अनुभव करते थे।

केशवचन्द्र प्रत्येक धर्म के मुख्य तत्त्व पर जोर देते थे तथा उस के सत्य को स्वीकार करते थे। इस भाव को लेकर केशवचन्द्र कहते थे कि "यह बात नहीं है कि प्रत्येक धर्म के सिद्धान्त सत्य ही हैं, परंतु इतना अवश्य है कि प्रत्येक धर्म सच्चा है।" पर चूँकि धर्म अनेक हैं इस लिए इन का अभिप्राय यह है कि वे सत्य के भिन्न भिन्न पक्षों को वतलाते हैं। वे सब केवल एक भाग को ही नहीं, वरन् पूरे जीवन को लेकर चलते हैं। हाँ, देखते हैं वे अपनी अपनी मौलिक दृष्टि से; तो भी प्रत्येक धर्म परस्पर एक दूसरे का विरोध करते हैं। प्रत्येक धर्म यह दावा करता है कि केवल उसी की दृष्टि ठीक है तथा और सब दृष्टियाँ धोखे में डालनेवाली हैं। किंतु केशवचन्द्र ऐसा नहीं मानते थे। वे जीवन को उद्धार की भावना से इन सभी दृष्टियों से देखते थे। प्रत्येक धर्म में जो सार पदार्थ उन्हें दिखाई देता था उसे वे चुनकर ले लेते थे। वे सिद्धान्तपक्ष तथा कार्यपक्ष दोनों प्रकार की बातों को लेते थे। उन्होंने ब्रह्मसमाज में तथा विशेष रूप से नवविधान (New Dispensation) के पंथ में इन अपूर्ण पक्षों का एक सुगठित संग्रह तैयार किया था। सारांश यह है कि केशवचन्द्र के मत से प्रत्येक धर्म, जिस रूप में उस का मुख्य सार तथ्य है, बिलकुल सच्चा है; किंतु उस में पूरा पूरा सत्य नहीं है जो कि केवल उद्धार की दृष्टि से ही देखा जा सकता है।

नवविधान (New Dispensation) में प्रत्येक धर्म के विशेषतापूर्ण सार पदार्थ को ले लिया गया है और उन सब का संग्रह करके अनुयायियों का एक समूह सा बना दिया गया है। इसी बात के संबन्ध में रामकृष्ण का केशवचन्द्र से मतभेद था। वास्तव में वे अपने पूर्ववर्ती लोगों से दो प्रधान बातों में मतभेद रखते थे। एक तो उन की यह धारणा थी कि प्रत्येक धर्म के सिद्धान्त संबन्धी मतों और विश्वासों की अपेक्षा धार्मिक रीतियों और नियमों के सहित उस धर्म के पालन से उस के सार पदार्थ का ज्ञान अधिक यथार्थ और जीवित रूप में हो सकता है। दूसरी बात यह है कि रामकृष्ण का यह दृढ विश्वास था कि चुने हुए उद्धारक धर्म के द्वारा नहीं, प्रत्युत दृढ निश्चय से तथा किसी भी धर्म को पूरे मन से स्वीकार कर लेने से उस के पूरे महत्त्व और मूल्य का ज्ञान और अनुभव हो सकता है।

रामकृष्ण का यह कहना था कि चुने हुए अंशों से प्रत्येक धर्म की जीवनशक्ति नष्ट हो जाती है। हिंदू, मुसलमान और ईसाईधर्मों में से प्रत्येक धर्म के संपूर्ण सत्य तथा सुप्रभाव का अनुभव करने के लिए वे हिंदू के साथ हिंदू, मुसलमान के साथ मुसलमान तथा ईसाई के साथ ईसाई बन जाते थे। किंतु वे एक साथ ही भिन्न भिन्न धर्मों के नियमों का पालन नहीं करते थे और न भिन्न भिन्न विश्वासों को एक ही समय धारण करते थे। प्रत्येक धर्म के नियम, अभ्यास और रीति रिवाज उस के अङ्ग होते हैं। धार्मिक सत्प्रभाव तथा उस के सत्य का अनुभव करने के लिए वे मुसलमानों के (अथवा कैथालिक ईसाइयों के) पूरे पूरे विश्वास को, ज्यों का त्यों मानने को तैयार रहते थे। इन सब में प्रलोभन और गड्ढे हो सकते हैं, किंतु मनुष्य को एक भोले भाले बच्चे के समान होकर आग में से बिना जले बाहर निकल जाना चाहिए। इसी प्रकार

परमहंस क्रमशः ईसाई और मुसलमानधर्मों के अनुभवों से बाहर निकल आये थे। ऐसा ही परमहंस का निश्चित मत था।

इस प्रकार धर्म के क्षेत्र में रामकृष्ण केवल राष्ट्रवादी ही नहीं थे, वरन् वे विश्व के विश्वबन्धुत्व के माननेवाले भी थे। उन्होंने विश्व भर के मनुष्यों से बन्धुत्व का भाव उत्पन्न किया था, और यह हमारे युग में पूर्ण हो जाना चाहिए। अब मानववाद में अनेक पक्ष और अनेक प्रकार की उन्नति देखी जाती है। कामटे (Comte) के निश्चयात्मक मानववाद को जिस में कि ग्रांदे-एतर (Grande etre) की उपासना की जाती है, तथा अपनी बादवाली शाखा बाबिज्म (Babism) के सहित बाहाइज्म (Bahaism) अर्थात् मानव-मातृत्व के धर्म को छोड़ देने पर हम उन से भी बादवाले पक्षों, जैसे जूलियन, हक्सले आदि की नास्तिकता को माननेवाली धर्मभावना, की ओर देख सकते हैं। केवल इतना ही नहीं है। सत्य, शिव और सुन्दर के अप्रत्यक्ष आदर्शों ने कभी-कभी ईश्वर को प्रत्यक्ष रूप में मानने के प्राचीन विश्वास को भी हटा दिया है। और केवल यही एक ऐसा धार्मिक भाव नहीं है जो हमारे समय में बढ़ता जा रहा है। विज्ञान तथा दर्शन अथवा वैज्ञानिक दर्शनशास्त्र की भावना और कला तथा रस की भावना हमारी शिष्टता में आधुनिकता के चिह्न हैं। ये ही बातें अधिकांश में पुरानी धर्म-भावना को हटा रही हैं।

इस समय हमारी खोज एक सर्वधर्मपरिपद् के लिए है। उस की पूर्ति हम इस सभा में देखना चाहते हैं। किंतु यह तो मानवपरिपद् अथवा (समस्त संसार के) विश्वसंस्कृतिसंघ तक पहुँचने का साधनमात्र है।

विश्वास, संप्रदाय और मत मतान्तर की बातें मनुष्य से मनुष्य को पृथक् कर देती हैं, किंतु हम धर्म को मानवजाति के मिलने का एक स्थान मानते हैं। हम जो कुछ चाहते हैं वह केवल तत्त्वप्रधान (केवल अध्यात्मप्रधान) विश्वधर्म नहीं है जैसा कि राममोहन राय ने अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ढूँढा था, और न वह अनेक धर्मों के सिद्धान्त तथा व्यवहार की कुछ चीजों की खिचड़ी बनाया हुआ एक उद्धारक धर्म है जैसा कि केशवचन्द्र ने उसे माना था, किंतु वह पूर्णता से युक्त अनुभव है जैसा कि मानवजाति के इतिहास में प्रकट हुआ है। और जैसा कि रामकृष्ण ने सिखाया है, हम इस का अनुभव धर्म के निश्चयात्मक अभ्यास के द्वारा हिंदू के साथ हिंदू, मुसलमान के साथ मुसलमान तथा ईसाई के साथ ईसाई बनकर कर सकते हैं। मनुष्य में ईश्वर और ईश्वर में मनुष्य का पूर्ण अनुभव करने की यह प्रारम्भिक अवस्था है।

अनेक धर्मों के स्थूल रूपों से धर्म का व्यापक अर्थ भिन्न है। ऐसा होने के कारण यह एक ऐसी शक्ति है जो जीवन और जीवन की क्रियाओं को व्यवस्थित करती है। सभी संस्कृतियों में और सच पूछा जाय, तो सभी भावों में धर्मभाव की प्रधानता रहती है। भोजन, स्त्री पुरुष का संबन्ध, परिवार, जातीय जीवन तथा लड़ाइयाँ, सभी बातों का नियन्त्रण धर्मभावना के द्वारा होता है। साम्राज्य-विज्ञान तथा घरेलू जीवन धर्म के केन्द्रीय भाव के ही आस पास रहा करते हैं। और क्रमशः उन्नति करते करते उच्च धर्मों का विकास होता है। इस प्रकार सर्वधर्मपरिपद् को ऊपर चढ़ते हुए धार्मिक विकास के मार्ग में केवल चोटी समझना चाहिए।

किंतु धार्मिक रूप में प्रकट कर देना ही केवल अन्तिम अनुभव का प्रकटीकरण नहीं है। हमारे सामने विज्ञान, दर्शन, कला अथवा सौन्दर्यमय इन्द्रियानुभव (रसानुभव) अथवा रहस्यात्मक अनुभव भी हैं, जो कि सभी मानववाद के भिन्न भिन्न पक्ष हैं। और सिद्धि लौकिक मानववाद के ही द्वारा मिल सकती है, जो कि मानवजाति की परिमित दृष्टि को हटाकर विश्व में मनुष्य की तथा मनुष्य में विश्व की स्थिति मानता है। और हमें चाहिए कि हम इसे केवल किसी भी दशा से भिन्न न मानें, वरन् सूर्य के चारों ओर घूमनेवाले ग्रहमण्डल तथा नक्षत्रमण्डलों और उस से भी परे यदि एक शब्द में हम कहना चाहें, तो कह सकते हैं कि विश्व से भी उसे भिन्न मानना चाहिए।

आज हमारा तात्कालिक उद्देश्य सर्वधर्मपरिषद् है। किंतु मेरी दृष्टि में तो यह एक बड़ी परिषद् मानवमात्र की उस परिषद् का पूर्वरङ्गमात्र है जिस परिषद् में कि विश्व की संस्कृतियों का एकत्रीकरण हो। और ऐसा मैं कह भी चुका हूँ और यह जिस वस्तु की स्थापना करने की इच्छा करेगी वह क्रमशः उन्नति करते हुए मानवजाति के विकास के रूप में जीवन की एक समन्वयात्मक दृष्टि होगी जिस की भावना स्थिर नहीं, वरन् गतिमान् होगी।

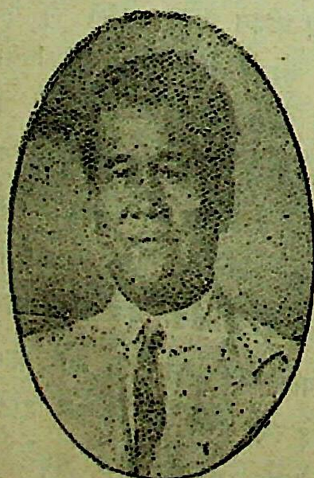
(२) सी० एल० चेन

(चीन के कांसल जनरल, कलकत्ता)

मङ्गलवार, २ मार्च—प्रातःकालीन अधिवेशन।

मित्रो,

इस के पूर्व कि मैं सर्वधर्मपरिषद् के इस प्रातःकालीन अधिवेशन के व्याख्यानदाताओं का परिचय दूँ, मुझे भूमिका के रूप में कुछ शब्द कहने की अनुमति दीजिए। आज हम लोग जीवन की समस्याओं के इस बुद्धि संबन्धी केन्द्र में एकत्रित हुए हैं। स्वामी विवेकानन्द ने एक बार कहा था कि—"यदि भारतवर्ष नष्ट हो जाय, तो संसार से पूर्ण रूप में धर्म का नाश हो जाय।" ऐसे समय में जब कि संसार के राष्ट्र स्पष्ट रूप से आक्रमण और रक्षा की लड़ाइयों के लिए शस्त्रास्त्रों को बढ़ाने की उन्मत्त नीति को बर्त रहे हैं, भारतवर्ष के लिए कितना उचित है कि भारतवर्ष फिर से आगे आवे और धर्म का संदेश—भ्रातृत्व, प्रेम और शान्ति का संदेश—सुनावे और घर घर पहुँचावे। संसार के बुद्धिमान् धर्माचार्य आज इस जागृति के कार्य में आगे



(सी० एल० चेन)

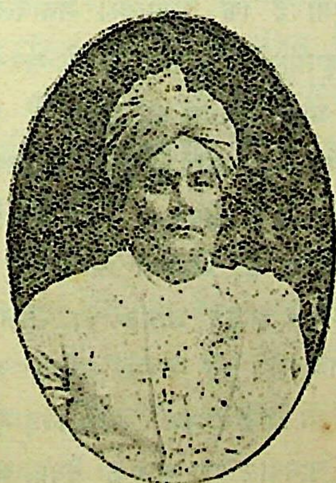
भारतवासियों के साथ हाथ बटा रहे हैं। आप भारतवासियों ने बहुत समय तक धैर्य के साथ अपने विचारों की छानबीन की है और आप को परमात्मा का ऐसा समन्वयात्मक ज्ञान प्राप्त है जैसा दूसरी जातियों को प्राप्त नहीं जान पड़ता। खोज करने की गहनता में शायद आप लोग कुछ बातों की उपेक्षा कर गये हैं। संभव है कि इन में से कुछ बातों का संकेत इस सर्वधर्मपरिषद् के विदेशी प्रतिनिधियों के संभाषणों और व्याख्यानों से आप को मिल जाय और आप उन्हें जान सकें। घबराया हुआ संसार आज अन्धकार में टटोल रहा है। जीवन का मार्ग कहाँ है? हमारे सब संदेहों और भ्रमों का निराकरण क्या है? मेरी प्रार्थना है, इस सर्वधर्मपरिषद् की विवेचनाएँ सत्य का मार्ग आलोकित कर दें और प्रकाशित कर दें। मनुष्यों में परस्पर सद्भावना और शान्ति का मार्ग, अरे, स्वयं परमात्मा का मार्ग !!

(३) स्वामी अभेदानन्द

(मङ्गलवार, ? मार्च—अपराह्निक अधिवेशन)

बहनो और भाइयो,

इस युग में जब कि लौकिक उन्नति और व्यापारिक आधिपत्य सभ्य राष्ट्रों के आदर्श और शासन करनेवाली शक्तियाँ हैं, जब कि प्रत्येक राष्ट्र अपने पड़ोसियों पर अविश्वास करता है तथा अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए और अपने भोले भाले पड़ोसियों की कल्पनातीत बर्बरता के साथ हत्या करने के लिए, जैसा कि आजकल यूरोप में स्पेन के समान सभ्य देश में हो रहा है, जब कि एक ऐसे सभ्य राष्ट्र का जो एक शक्तिशाली डिक्टेटर (Dictator) के पीछे पीछे चलता है, कभी तृप्त न होनेवाला लोभ अच्छे अथवा बुरे किसी न किसी उपाय के द्वारा अपने से कमजोर जाति को जीतकर उसे दबाने में लगा है—जैसा कि अबीसीनिया के मामले में हुआ है, जब कि मनुष्य तोपों और मशीनगनों की भोजन-सामग्री बनने के योग्य जीवरहित मशीनों के समान समझे जाते हैं, जब कि पूर्व में भी इसी प्रकार के लड़ाई झगड़े और खींचातानी के काम हो रहे हैं और जब कि घृणास्पद सांप्रदायिकता भारतवर्ष में कथाओं में वर्णित पिशाच के समान हृदय का रक्त चूस रही है, ऐसे समय में यह बात बहुत आवश्यक है कि शान्ति, सद्भावना और शत्रु के प्रति प्रेम (जिस की शिक्षा दो हजार वर्ष पहले



(स्वामी अभेदानन्द)

गैलिली (Galilee) के विनम्र और साधुस्वभाव मानवपुत्र (Son of man) ने दी थी) का संदेश फिर से वर्तमान समय की परिस्थितियों के अनुकूल बनाकर एक बार घोषित किया जाय और पूरी आध्यात्मिक शक्ति लगाकर उस में जोर दिया जाय।

इस महान् उद्देश्य को पूरा करने के लिए—धर्म की स्थापना और अधर्म का नाश करने के लिए सर्वशक्तिमान् भगवान् ने अपने को भगवान् श्री रामकृष्ण, जिन की शताब्दी के अवसर पर यह सर्वधर्मपरिषद् हो रही है, के रूप में प्रकट किया है।

इस समय में होनेवाली आध्यात्मिकता की बाढ़ जिस की लहरों ने लगभग आधी दुनिया को पार करके अमेरिका के किनारों का स्पर्श किया है, भगवान् श्री रामकृष्ण के ईसामसीह के समान चरित्र और दिव्य व्यक्तित्व के द्वारा उत्पन्न की गई थी। श्री रामकृष्ण समस्त भारतवर्ष में नवीन भारत के सब से बड़े संत माने जाते हैं और आजकल सभी वर्गों के हिंदू लोग उन्हें दैवी यश का आदर्श अवतार मानकर उन का आदर करते हैं। उन का जीवन इतना अद्भुत और अनोखा था कि इस पृथिवी से उन के चले जाने के बाद दस वर्ष के भीतर ही उस ने केवल भारतवर्ष के सब वर्गों के लोगों की ही नहीं, वरन् उन्नीसवीं शताब्दी के बहुत से प्रसिद्ध अंग्रेज और जर्मन विद्वानों (जिन्हें उन के संबन्ध में कुछ भी जानने का अवसर मिल जाता था) की भी प्रशंसा और आदर सत्कार को अपनी ओर खींच लिया था।

भगवान् श्री रामकृष्ण के जीवन का एक संक्षिप्त विवरण सब से पहले इंपीरियल ऐंड कार्टर्ली रिव्यू (Imperial and Quarterly Review) के जनवरी सन् १८९६ ई० के अङ्क में, एक आधुनिक हिंदू संत (A Modern Hindu saint) नामक लेख में प्रकाशित हुआ था। यह लेख बहुत योग्यतापूर्ण था और इस के लेखक प्रोफेसर सी० एच० टानी थे जो बहुत वर्षों तक कलकत्ता विश्वविद्यालय में संस्कृत के अध्यापक तथा लंदन में इंडिया हाउस (India House) के प्रसिद्ध पुस्तकालयाध्यक्ष थे। इस लेख ने यूरोप के बहुत से विद्वानों की रुचि को जगा दिया। इन विद्वानों में से स्वर्गीय प्रो० मैक्स मूलर ने नाइंटींथ सेंचुरी (Nineteenth century) के अगस्त, सन् १८९६ ई० के अङ्क में इस हिंदू संत के जीवन का एक संक्षिप्त परिचय एक सच्चे महात्मा (A Real Mahatman) नामक लेख में प्रकाशित करवाकर अपनी सराहना का परिचय दिया था। इस महत्त्वपूर्ण लेख में, जिस की कुछ समय तक इंग्लैंड और भारतवर्ष के ईसाई पादरियों और थियासफी मत के अनुयायियों ने बहुत ही कठोर आलोचना की थी, प्रसिद्ध प्रोफेसर ने यह दिखा दिया है कि थियासफी मतावलम्बियों के कल्पित महात्माओं और भारतवर्ष के सच्चे महात्मा, जिस की आत्मा विशाल या महान् है और जिस ने परमात्मा का साक्षात्कार हो चुका है तथा जिस ने अपने नित्य प्रति के जीवन के सभी कार्यों में देवत्व को प्रकट किया है, में क्या अन्तर है। उन्होंने श्री रामकृष्ण के अद्भुत जीवन का संक्षिप्त विवरण दिया था तथा उन की उतनी अधिक आदरसूचक प्रशंसा की थी जितनी एक ईसाई विद्वान् इस मूर्तिपूजक कहे जानेवाले देश के एक दैवी अवतार की कर सकता था। इस के पश्चात् सन् १८९८ में उन्होंने संग्रह करके 'रामकृष्ण उन का जीवन और उपदेश' (Ramakrishne, His Life and Sa[illegible]

ings) नामक पुस्तक प्रकाशित की जिस में उन्होंने दिव्य व्यक्तित्व से युक्त इन अद्भुत चरित्रवाले व्यक्ति के जीवन और उपदेशों का पहले से और अधिक संग्रह किया था।

न्यूयार्क, संयुक्तराज्य अमेरिका की वेदान्त-समिति (Vedanta society) ने एक अलग पुस्तक के रूप में भगवान् श्री रामकृष्ण के उपदेशों को सन् १९०३ ई० में तथा स्वामी अभेदानन्द के द्वारा लिखा हुआ भूमिका से युक्त "रामकृष्ण का धर्मोपदेश" सन् १९०७ में प्रकाशित किया। श्री रामकृष्ण के सांप्रदायिक भेदभाव से रहित तथा विश्वजनीन उपदेशों ने अमेरिका और यूरोप के, हृदय से सचमुच सत्य को खोजनेवाले ईसाइयों का ध्यान अपनी ओर खींच लिया था। और उसी 'रामकृष्ण का धर्मोपदेश' (Gospel of Ramakrishna जो न्यूयार्क से प्रकाशित हुआ था) का अनुवाद स्पैनिश भाषा में हुआ था तथा दक्षिणी अमेरिका के ब्यूनस एरीज से सन् १९१५ ई० में वह पुस्तक प्रकाशित हुई थी। उस का अनुवाद पुर्तगाल की भाषा में भी हुआ था और वह दक्षिणी अमेरिका के ब्राजिल से प्रकाशित हुई थी। यूरोप में वह डेनिश, स्कैंडीनेवियन और शेकोस्लोवैकियन भाषाओं में अनुवादित होकर प्रकाशित हुई थी।

प्रेग (आस्ट्रिया) के सुप्रसिद्ध कलाकार स्वर्गीय फ्रैंकड्वोराक (Frank Dvorak) इस धर्मोपदेश (Gospel) को पढ़ने के बाद इतने अधिक प्रभावित हुए थे कि उन्होंने श्री रामकृष्ण का एक सर्वाङ्गपूर्ण चित्र बनाया था।

सन् १९२५ ई० में एम० के० गांधी की भूमिका के सहित 'श्री रामकृष्ण की जीवनी' (The Life of sri Ramakrishna) भारतवर्ष में मायावती के अद्वैताश्रम की ओर से प्रकाशित हुई थी। इस के बाद फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् रोम्याँ रोलाँ ने फ्रेंच भाषा में सन् १९२८ ई० में रामकृष्ण की जीवनी लिखी थी। इस का अनुवाद अंग्रेजी में ई० एफ० मैलकम स्मिथ ने किया था और यह अद्वैताश्रम से सन् १९३० ई० में प्रकाशित हुई थी। इस ग्रन्थ में रोम्याँ रोलाँ ने कहा है—

"देश और काल की विभिन्नताओं को छोड़ देने पर रामकृष्ण हमारे ईसा मसीह के छोटे भाई हैं।" (पृ० १३)

स्वर्गीय प्रो० मैक्स मूलर पर इन महान् संत और सच्चे महात्मा की मौलिकता का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा था। इन का पालन पोषण किसी विश्वविद्यालय के घेरे के भीतर नहीं हुआ था और न इन्हें किसी नवीन अथवा प्राचीन पुस्तक के द्वारा ज्ञान प्राप्त हुआ था। किसी पुराने धर्माचार्य से भी इन्हें ज्ञान नहीं मिला था। इन्हें तो सब ज्ञान और बुद्धि के सनातन स्रोत से सीधे जल प्राप्त हुआ था। उन्होंने सब धर्मों के लक्ष्य को किसी देश के धर्मोपदेशक अथवा आध्यात्मिक गुरु के बनाये हुए मार्ग पर चलकर नहीं प्राप्त किया था, प्रत्युत उन का मार्ग मौलिक था, और उस पर अभी तक संसार के कोई भी धर्मरक्षक नहीं चले थे। स्वर्गीय प्रो० मैक्स मूलर पर भी उस व्यापक, उदार और सांप्रदायिकताविहीन भाव का प्रभाव पड़ा था जो श्री रामकृष्ण के कथनों में विद्यमान है। वास्तव में भगवान् (रामकृष्ण) के जीवन और उपदेशों ने धार्मिक कहे जानेवाले संसार के सांप्रदायिक अन्धविश्वास और परस्पर के भेदभाव को घातक चोट पहुँचाई है। जिस किसी ने भी उन के उपदेशों को पढ़ा है उस पर उन के आध्यात्मिक आदर्शों,

जिन में समस्त मानवजाति के आदर्शों का समावेश है, की विश्वजनीनता का प्रभाव पड़ा है।

लड़कपन से ही श्री रामकृष्ण सांप्रदायिक मतों और अन्धविश्वासों के विरुद्ध युद्ध करते रहे, किंतु साथ ही साथ उन्होंने यह दिखा दिया था कि सब मत और संप्रदाय सच्चे जीवों को सब धर्मों के एक ही विश्वव्यापी लक्ष्य तक पहुँचा देनेवाले मार्ग हैं। संसार के भिन्न भिन्न मतों और संप्रदायों के ढंगों और रीतियों के अनुसार चलकर भगवान् श्री रामकृष्ण ने प्रत्येक धर्म के उच्चतम आदर्श का अनुभव कर लिया था। और उन्होंने साधना के द्वारा जो कुछ आध्यात्मिक अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया था वह सब मानवजाति को अर्पित कर दिया था। उन के द्वारा दिया हुआ प्रत्येक भाव ऊपर से आया हुआ तथा नवीन था और उस में मानव-मस्तिष्क, शिष्टता अथवा विद्वत्तापूर्ण शिक्षा के कारण किसी प्रकार की मिलावट न थी। लड़कपन से अन्तिम समय तक पद पद में उन का जीवन विशेषताओं से भरा हुआ था। प्रत्येक अवस्था एक ऐसे प्राचीन ग्रन्थ के नये नये अध्यायों के खुलने के समान थी जो कि अलक्ष्य के हाथों से पूर्व और पश्चिम के विचारों के उपयुक्त होने तथा बीसवीं शताब्दी की आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लिखा गया था।

इन महर्षि ने अपने जीवन में यह दिखा दिया था कि परमात्मा की खोज कैसे करनी चाहिए और अपने ही उदाहरण के द्वारा यह साबित कर दिया था कि जहाँ परमात्मा के दर्शनों की उत्कट अभिलाषा होती है वहाँ परम सत्य का साक्षात्कार निकट ही आ जाता है। इन सच्चे महात्मा का जीवन इस सत्य का ज्वलन्त प्रमाण है कि इस युग में भी ऐसे लोग जो हृदय से शुद्ध, पवित्र और सीधे सादे हैं और जो लौकिक स्वार्थों को छोड़कर केवल आध्यात्मिक साक्षात्कार के लिए परमात्मा में पूरा पूरा मन और आत्मा लगा सकते हैं, देवपद को पहुँच सकते हैं तथा दैवी पूर्णता को प्राप्त कर सकते हैं।

इन आदर्श महात्मा भगवान् श्री रामकृष्ण के चरित्र से बढ़कर शुद्ध, सीधा सादा, पवित्र और दिव्य चरित्र हम ने न तो कहीं देखा और न कहीं सुना ही है। वे शुद्धता और पवित्रता के साकार स्वरूप और सत्यता की मूर्ति ही थे। उन का जीवन पूर्ण त्यागमय था और वे इस पृथिवी पर पाये जानेवाले सुखों और सुविधाओं की कुछ भी पर्वाह नहीं करते थे। उन्हें अपने जीवन में सुख, सुविधा और आनन्द तो केवल तभी मिलते थे जब वे समाधि अथवा ईश्वर के साक्षात्कार की परमानन्दमयी अवस्था में होते थे और जब उन की जीवात्मा लौकिक शरीर के बन्धन से मुक्त होकर परमात्मा के असीम आकाश में उड़ जाती थी तथा शाश्वत शान्ति और आनन्दमय घर में प्रवेश कर जाती थी।

वे इच्छानुसार अपनी जीवात्मा को शरीररूपी पिंजड़े से अलग कर सकते थे और योग की इस बड़ी भारी विभूति पर उन का पूरा अधिकार था। वे कभी भौतिक संबन्धों को नहीं मानते थे, वरन् परमात्मा ही उन के माता पिता, भाई बहन और सभी कुछ थे।

रामकृष्ण यह उपदेश देते थे कि प्रत्येक स्त्री चाहे वह जवान हो अथवा बूढ़ी, इस पृथिवी पर देव-माता की प्रतिनिधिस्वरूपा है। वे ईश्वर को विश्व की माता मानकर पूजते थे। और दिव्य माता उन के कथनानुसार उन को यह दिखाती थीं कि

सभी स्त्रियाँ पृथिवी पर दिव्य माता की प्रतिनिधि-स्वरूपा हैं। संसार के धार्मिक इतिहास में एक दैवी अवतार ने सब से पहले इस बात का उपदेश दिया था और इसी पर सब देशों के पुरुषों और विशेषतया स्त्रियों के अनैतिकता, व्यभिचार तथा उन सभी बुराइयों से जो एक सभ्य समाज में पाई जाती हैं, छुटकारे का उपाय निर्भर है। रामकृष्ण ने ही स्वयं अपने उदाहरण के द्वारा इस इन्द्रियवासना के युग में भी शरीर के आधार पर नहीं, वरन् केवल जीवात्मा के आधार पर आध्यात्मिक विवाह की सचाई को स्थापित किया है। उन के एक स्त्री थी जिस के साथ वे सदा आदरपूर्वक व्यवहार करते थे और जिसे वे सदा अपनी देवमाता का प्रतिनिधि-रूप मानते थे। उन्होंने अपनी स्त्री अथवा किसी भी स्त्री के साथ स्त्री पुरुष का शारीरिक संबन्ध नहीं रखा। उन की पत्नी परमधन्या कुमारी शारदा देवी अपने चारों ओर असंख्य आध्यात्मिक संतानों से घिरी हुई दैवी मातृत्व की सजीव प्रतिमा के समान रहती थीं। वे भी बदले में भगवान् (राम-कृष्ण) को अपनी परम धन्या माता देवी का मानव-स्वरूप मानती थीं।

अपने लौकिक जीवन के अन्तिम क्षण तक भगवान् पूर्ण रूप से शुद्ध और पवित्र तथा अपनी विश्व की दिव्य माता की पूर्ण संतान रहे हैं। इस से और भी आगे बढ़कर अपने गुरु को स्त्री के रूप में मानकर उन्होंने स्त्रीत्व के आदर्श को ऊँचा उठा दिया। धार्मिक इतिहास में अभी तक किसी धर्मरक्षक अथवा आध्यात्मिक नेता ने स्त्रीत्व को इतना आदर नहीं प्रदान किया है।

भगवान् श्री रामकृष्ण का उद्देश्य अपने जीवन के उदाहरण के द्वारा इस बात को दिखा देना था कि इन्द्रियमय संसार से विरक्त होकर एक सच्चा आध्यात्मिक पुरुष परमात्मा के साक्षात्कार की भूमि पर किस प्रकार रह सकता है। वे यह सिद्ध कर देना चाहते थे कि व्यक्तिगत रूप में प्रत्येक जीवात्मा अमर तथा तथ्य रूप में दैवी है। उन का उद्देश्य धार्मिक मतों और संप्रदायों के बीच सामञ्जस्य स्थापित कर देना था। रामकृष्ण ने ही सब से पहले इस बात को स्पष्ट रूप से दिखा दिया था कि सब धर्म एक ही लक्ष्य तक पहुँचानेवाले मार्ग हैं तथा एक सर्वशक्तिमान् परमात्मा का अनुभव करना ही ईसाई, मुसलमान, यहूदी, पारसी, हिंदू तथा संसार के दूसरे छोटे धर्मों का सब से बड़ा आदर्श है।

श्री रामकृष्ण का उद्देश्य इस शाश्वत सत्य को घोषित कर देना था कि परमात्मा एक है, किंतु उस के अनेक रूप हैं और एक उसी की पूजा भिन्न भिन्न जातियों के द्वारा भिन्न भिन्न नामों और रूपों में की जाती है। वह साकार भी है, निराकार भी है तथा दोनों से परे भी है। वह नाम और रूप से युक्त भी है तथा दोनों से रहित भी है। उन का उद्देश्य देवमाता की पूजा को स्थापित करना था और इस प्रकार स्त्रीत्व के आदर्श को ऊपर उठाकर दैवी मातृत्व तक उसे पहुँचा देना था। उन का उद्देश्य स्वयं अपने उदाहरण के द्वारा यह दिखा देना था कि सच्ची आध्यात्मिकता एक से दूसरे में भेजी जा सकती है और एक दैवी अवतार की कृपा से मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। उन का उद्देश्य संसार के सामने इस बात को घोषित कर देना था कि भौतिक शक्तियाँ तथा रोगों को अच्छा कर देने की शक्ति परमात्मा का साक्षात्कार करने के मार्ग में बाधक हैं।

भगवान् श्री रामकृष्ण योग की सब शक्तियों पर अधिकार रखते थे, किंतु वे उन शक्तियों का प्रयोग बहुत कम करते थे। रोगों को दूर कर देने की शक्ति का प्रयोग तो वे बहुत ही कम करते थे। वे सदैव अपने शिष्यों को भी इन शक्तियों की चाहना करने से तथा इन का प्रयोग करने से रोका करते थे। किंतु एक शक्ति जिस का प्रयोग करते हुए प्रायः हम ने उन्हें देखा है, यह थी कि वे केवल स्पर्श के द्वारा एक पापी के चरित्र को बदल देते थे तथा एक लौकिक जीवात्मा को उठाकर अनुभव से न जानी जा सकनेवाली भूमि पर पहुँचा देते थे। वे दूसरों के पापों को स्वयं अपने सिर पर ले लेते थे और अपनी आध्यात्मिकता के आरोप के द्वारा अपने सच्चे अनुयायियों के आध्यात्मिक चक्षुओं को खोलकर वे उन व्यक्तियों को पवित्र क[र] देते थे।

भविष्य की बातें बतलाने के दिन तो हमा[रे] सामने ही बीत चुके हैं। उस व्यक्ति की जो आ[ज] हजारों मनुष्यों के द्वारा अन्तिम दैवी अवतार मान[कर] पूजा जाता है, दैवी शक्तियों को हम स्वयं प्रत्य[क्ष] रूप में अपनी आँखों से देख चुके हैं। वे लो[ग] धन्य हैं जिन्होंने उन को देखा है और उन के पवि[त्र] चरणों का स्पर्श किया है। मुझ उन के आध्या[-] त्मिक पुत्र तथा सेवक की यह प्रार्थना है कि पृथि[वी] भर के सभी राष्ट्र श्री रामकृष्ण के यश को सम[झें] तथा सभी आगामी युगों में सभी देशों के उन [के] भक्तों की लगन से भरी हुई सच्ची जीवात्माओं [में] उन की दैवी शक्ति प्रकट हो जाय।

---

(४) काका कालेलकर

(भारतीय हिंदीसाहित्यपरिषद्, वर्धा, सी० पी०)

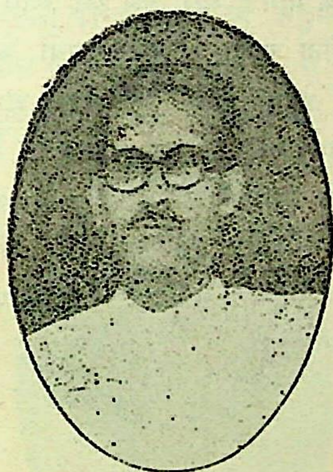
बुधवार, ३ मार्च—प्रातःकालीन अधिवेशन।

मित्रो,

हम सब लोग ऐसे समय में एकत्रित हुए हैं जब कि संसार के सब धर्मों की परीक्षा हो रही है। धर्म तो एक सूत्र में बाँधनेवाली शक्ति है, फिर भी लोग धर्म के नाम पर परस्पर लड़ते झगड़ते रहे हैं। आज हमें यह दिखा देना है कि धर्म ही मानव-जीवन में सब को एक सूत्र में बाँधनेवाली सब से बड़ी शक्ति है। मुझे इस बात से बड़ी खुशी है कि हम लोग यहाँ पर भारतवर्ष के बहुत बड़े आध्यात्मिक पुरुष श्री रामकृष्ण परमहंस के नाम पर इकट्ठा हुए हैं। उन्होंने ही इस बात को, बुद्धि [के] प्रयोग के द्वारा नहीं, किंतु आध्यात्मिक अनुभवों [के] द्वारा, हमारे सामने प्रमाणित कर दिया है कि सभी धर्म सच्चे हैं, सभी समान रूप से स्वीकार कि[ये] जाने के योग्य हैं तथा सभी समान रूप से मनुष्[य] को ऊपर उठानेवाले हैं। सब से पहली सर्वधर्म[-] परिषद् सन् १८९३ में चिकागो में हुई थी और श्री रामकृष्ण के प्रसिद्ध शिष्य (स्वामी विवेकानन्द) वहाँ पर भारतवर्ष के प्रतिनिधि होकर गये थे। और आज वह परिषद् भारतवर्ष में आई है

श्री रामकृष्ण के नाम पर उस की बैठकें हो रही हैं।

और आगे बढ़ने से पहले मैं महात्मा गांधी के उस पत्र को पढ़ देना चाहता हूँ जो उन्होंने आशीर्वाद के रूप में मेरे पास भेजा है। वास्तव में तो यह हिंदी में लिखा हुआ है, किंतु अंग्रेजी भाषा में उस का अनुवाद करके आप को सुनाया जाता है[१]।



(काका कालेलकर)

"आप धर्मसभा (पार्लमेंट आफ रिलीजंस) में जा रहे हैं। इस का संबन्ध श्री रामकृष्ण जैसे महापुरुष के पवित्र नाम से है। मैं निश्चयपूर्वक यह आशा करता हूँ कि सभा सब धर्मों के अनुयायिकों के लिए पथप्रदर्शन करेगी। सब धर्मों के संबन्ध में यह परिषद् क्या कहेगी? क्या, जैसा कि हम मानते हैं, क्या सब धर्म समान हैं या किसी एक खास धर्म को ही सत्य की एकान्त सत्ता प्राप्त है और शेष धर्म या तो झूठे हैं या उन में सत्य और असत्य का मिश्रण है—जैसा कि बहुत से लोग मानते हैं? इस प्रकार की बातों के संबन्ध में इस परिषद् की राय हमारे लिए रास्ता बताने में सहायक होगी।"

मेरा भी विश्वास यही है कि हम लोग यहाँ पर हृदय से हृदय का मेल कराते हुए मिलेंगे। हम बुद्धि की भूमि पर नहीं मिलेंगे, वरन् अध्यात्म की भूमि पर मिलेंगे। हमें मानवजाति के लिए कुछ उपयोगी वस्तु तैयार कर सकने के योग्य होना चाहिए। अब मुझे और जो कुछ कहना है वह मैं अन्त में कहूँगा।

× × ×

संदेशों और लेखों के पढ़े जा चुकने के बाद काका कालेलकर ने फिर से कहना शुरू किया—

जब अनेक धर्म एक स्थान पर मिलते हैं तब वे सदा कुछ बुराइयाँ पैदा करते हैं। सर फ्रांसिस यंग हसबैंड (Sir Francis Younghusband) ने यह बड़ी सुन्दर और सुखद उपमा दी है कि हर एक बच्चा यही सोचता है कि उसी की माँ सब से अच्छी है। किंतु बच्चे दूसरे बच्चों से इस बात का हठ नहीं करते कि दूसरे बच्चे भी उन्हीं की माताओं को अपनी माताएँ मान लें। यही तो बच्चों की बुद्धिमत्ता है। यदि सभी धर्म ऐसी ही बुद्धिमत्ता दिखायें और लोगों से यह न कहें कि तुम अपने धर्म को छोड़कर किसी एक खास धर्म को ही सच्चा मानकर उस को स्वीकार कर लो, तो मैं समझता हूँ कि हमारे सब झगड़े दूर हो जायँ। मेरा ख्याल है कि सर्वधर्मपरिषद् की स्थापना का विचार इसी अनुमान पर हुआ था और यह एक सच बात है कि सब धर्म सच्चे हैं।

मित्रो, समझाने के लिए मैं संसार के धर्मों के लिए कुछ शब्द कहूँगा। धर्म में मेरा विश्वास

१. काका कालेलकर ने अपना भाषण अंग्रेजी भाषा में दिया था। प्रस्तुत भाषण उसी का हिंदी रूपान्तर है।
—संपादक।

है। यदि आजकल माने जानेवाले रीति रिवाजों के ही अनुसार हमें निर्णय करना है, तो वे तो सभी झूठे प्रमाणित हो जाएँगे, क्योंकि धर्म का संगठन दूषित रूप में हुआ है। मेरा अनुमान है कि ये सभी बातें शक्ति की खोज के तरीके हैं। शक्ति की खोज और कल्याण की खोज दोनों अलग अलग बातें हैं और कल्याण की खोज में स्वयं अपनी एक शक्ति होती है। इस लिए हम को केवल बुद्धि की भूमि पर ही न रहना चाहिए, वरन् एक साथ मिलकर नीति और आध्यात्मिकता की भूमि पर आना चाहिए। ऐसी बहुत सी समस्याएँ हैं जिन्हें संसार के धर्मों को हल करना है, जैसे कि उदाहरण के लिए, स्त्रियाँ स्वतन्त्र नहीं हैं, बच्चे खुश नहीं हैं, और उससे भी बढ़कर बात यह है कि घरों में पाले जानेवाले पशु खुश नहीं हैं। वे (पशु) भी मानवजाति की विशालता के भीतर आ जाते हैं, इस लिए हम को उन्हें कुछ न कुछ खुश और शान्ति देने का विश्वास अवश्य दिलाना चाहिए। मेरा अनुमान है कि विशेष रूप से भारतवर्ष में, जैसा कि महात्मा गांधी ने बतलाया है, गायें सुरक्षित नहीं हैं। उन घरेलू पशुओं की जो हमारी सेवा करते हैं, सेवा और रक्षा की जानी चाहिए। मेरा विचार है कि ऐसी सर्वधर्मपरिषद् के कार्य का यह भी एक भाग है और इसे इस काम के करने के योग्य होना चाहिए। इन विषयों के संबन्ध में धर्म क्या कहता है? यही प्रश्न आज संसार इस सर्वधर्मपरिषद् से पूछ रहा है। मैं अनुमान करता हूँ कि इसी प्रकार इकट्ठा होकर और साथ साथ विचार करके हमें इन समस्याओं को हल करने के उपाय ढूँढ़ना चाहिए। मैं अब अपना भाषण समाप्त करता हूँ।

---

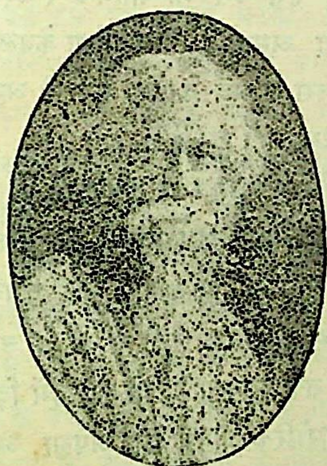
(५) डाक्टर रवीन्द्रनाथ टैगोर

बुधवार, ३ मार्च—अपराह्निक अधिवेशन।

मित्रों,

जब मुझ से इस प्रसिद्ध समारोह में भाषण देने के लिए कहा गया, तो मैं स्वभावतः इस के लिए राजी नहीं हुआ, क्योंकि मैं यह नहीं जानता कि मैं धर्म शब्द के प्रचलित अर्थ के अनुसार धार्मिक कहा जा सकता हूँ या नहीं। मेरे मन में ईश्वर के संबन्ध में कोई ऐसी विशेष धारणा नहीं है जो इस समय की किसी आदरणीय संस्था के द्वारा प्रामाणिक मानी जाती हो। ऐसा होते हुए भी मैंने इस सत्कार को उस महान् संत के आदर की स्मृति के कारण ही स्वीकार कर लिया है जिस की शताब्दी से इस परिषद् का संबन्ध है। मैं परमहंस देव का बड़ा आदर करता हूँ, क्योंकि उन्होंने धार्मिक शून्यवाद के ऊसर युग में अनुभव करके इस सत्य को प्रमाणित कर दिया था कि हमारी उत्पत्ति आध्यात्मिकता के आधार पर हुई है, क्योंकि उन के हृदय की विशालता परस्पर विरोधी जान पड़नेवाले साधना के ढंगों को भी समझ सकती थी। और क्योंकि उन की जीवात्मा की सादगी सदैव के लिए पुरोहितों और पण्डितों के दिखाव और आडम्बर को लज्जित कर रही है।

मुझे आप से कोई नई बात नहीं कहनी है और न किसी अलौकिक सत्य को ही बताना है। मैं तो केवल एक कवि तथा मनुष्यों और सृष्टि का प्रेमी हूँ। पर, चूँकी प्रेम से एक प्रकार की अन्तर्दृष्टि उत्पन्न हो जाती है इस लिए शायद मैं इस बात का दावा कर सकूँ कि मैं ने कभी कभी मानव-जाति की प्रशान्त ध्वनि को सुना है और उस में प्रच्छन्न असीम की अभिलाषा का अनुभव किया है। मेरा विश्वास है कि मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जो एक बन्दीगृह में जन्म लेकर यह जानने का



(डाक्टर रवीन्द्रनाथ टैगोर)

कभी सौभाग्य नहीं पाते कि वे जहाँ पर हैं वह बन्दीगृह है, और जो इस बात को न जानने के कारण आनन्दित रहते हैं कि उन के सामान की बहुमूल्यता तथा उन के सुख के साधनों की अधिकता एक ऐसे दिखावटी महल की देखी न जा सकनेवाली दीवालों का काम कर रही हैं जो केवल उन की स्वतन्त्रता का ही नहीं, वरन् स्वतन्त्रता की इच्छा का भी अपहरण करती है।

इस स्वतन्त्रता की मात्रा की नाप असीम का जितना अनुभव किया जाता है उसी के अनुसार होती है, चाहे वह अनुभव बाहरी संसार में किया गया हो चाहे भीतरी जीवन में। एक छोटे से सकिरत कमरे में हमें भले ही उतना स्थान मिल जाय जितना हमारे रहने के लिए और हमारे अङ्गों के संचालन के लिए पर्याप्त है, भले ही हमें आवश्यकता से अधिक, बहुत स्वादिष्ट और परिपूर्ण भोजन मिल जाय, किंतु जिसे हम और भी आगे की तथा अप्राप्त वस्तु कहते हैं उस की अभिलाषा, यदि वह बिल्कुल ही निर्जीव नहीं कर दी गई है, अतृप्त ही बनी रहती है। वह असीम वस्तु जो बाहरी संसार तथा सदैव होनेवाले हमारे भिन्न भिन्न प्रकार के अनुभवों के संसार दोनों में से किसी एक घेरे में हमें बंद नहीं होने देती, हमें प्राप्त नहीं होती है।

किंतु असीम का और भी अधिक अनुभव तो तब होता है जब हमें अच्छी तरह उस का साक्षात्कार हो जाता है, और जिसे हम केवल तभी प्राप्त कर सकते हैं जब हम पूर्णता के किसी आदर्श का सब से बढ़कर मूल्य समझने लगते हैं, जब अपने जीवन की किसी सच्ची बात का अनुभव करते समय हम एक ऐसे अपरिभाषेय सत्य को जान पाते हैं जो अधिकता से उस बात का अतिक्रमण कर जाता है। हमारे मानवस्वभाव में भूमा के लिए, अधिकता के लिए, किसी ऐसी वस्तु के लिए जो हमारे जीवन की तात्कालिक आवश्यकताओं से बहुत अधिक बढ़कर होती है, एक लालसा रहती है। अपने समस्त इतिहास में मनुष्य लोग असीम के संबन्ध में अपने विचार के प्रकटीकरण के अनुसार इस सत्य का अनुभव करने का प्रयत्न करते रहे हैं और क्रमशः अपनी स्थिति के उपायों और ढंगों में परिवर्तन करते रहे हैं। वे सदैव असफल होते रहे हैं, किंतु उन्होंने कभी पूरी पूरी हार नहीं मानी।

हम देखते हैं कि पशुओं का विकास जातियों के ही ढंग पर होता है। उन का भी व्यक्तिगत जीवन होता है और उन की मृत्यु के साथ उस का अन्त हो जाता है। किंतु उन में भी असीम का कुछ अंश रहता है जो उन में इस बात की प्रवृत्ति उत्पन्न करता है कि वे स्वयं अपने जीवन के घेरे को पार करके अपनी जाति के जीवन में निवास करें। ऐसा करने के लिए उन्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है और बहुत त्याग करना पड़ता है। माता पिता में जो त्याग का भाव पाया जाता है वह असीम का ही प्रभाव है। यही वह कारणभूत शक्ति है जिस से जातीय जीवन का होना संभव है और जो माता पिता में उन शक्तियों की, जिन के कारण उन की संतानें भोजन और रक्षा का और अधिक सुयोग प्राप्त कर सकें, उन्नति में सहायता पहुँचाती है।

किंतु मनुष्यों में असीम की भावना का विकास और भी अधिक हुआ है और वह शारीरिक जीवन से, जिस में केवल विस्तृत समय और विस्तृत स्थान ही रहता है, बहुत आगे बढ़ गया है। मनुष्य ने यह अनुभव कर लिया है कि पूर्णतामय जीवन केवल विस्तृत जीवन ही नहीं है, वरन् वह तो ऐसा है जिस में अपनेपन के भाव के बिना महत् और सुन्दर अर्थात् परमात्मा (के अनुभव) का आनन्द मिले।

जब हम ने सुन्दर, शिव तथा कुछ और वस्तु जिसे हम सत्य—जो कि असंख्य सभी घटनाओं से भी गम्भीर और बड़ा है—कहते हैं, की भावना का विकास कर लिया तब हम उस वातावरण से जिस में पशुओं और वृक्षों की स्थिति होती है, बिल्कुल भिन्न वातावरण में आ पहुँचे हैं। किंतु इस उच्च देश में हम अभी कुछ दिन हुए ही पहुँचे हैं।

अनेक युग बीत गये हैं जिन में हमारे जीवन में उसी वस्तु की प्रधानता रही है जिसे हम आत्मभाव कहते हैं। यह आत्मभाव आहार और अपनी रक्षा की प्राप्ति तथा जातीय परंपरा के बनाये रखने में ही लगा रहा है। किंतु एक ऐसा रहस्यमय प्रदेश है जिस को पूर्ण रूप से अभी तक लोगों ने नहीं जाना है। वह पूर्णतया शारीरिक बातों के वशीभूत नहीं है। उस का रहस्य बराबर हमें कष्ट पहुँचाता रहता है और हमें अब भी इस देश में पूरी पूरी शान्ति नहीं मिलती है। हम उसे आध्यात्मिक (प्रदेश) कहते हैं। वह शब्द अस्पष्ट है, और ऐसा केवल इस लिए है कि हम उस के अर्थ का पूर्ण रूप से अनुभव कर सकने के योग्य नहीं हुए हैं।

हम अँधेरे में इधर उधर टटोल रहे हैं और इस संसार का अन्तिम अर्थ क्या है, इस बात का स्पष्ट रूप से हमें ज्ञान नहीं है; तथापि उस धुँधले प्रकाश में, जो हमारी शारीरिक सत्ता के घेरे के उस पार से हमारे पास तक पहुँचता है, जो कुछ हमें दिखाई देता है उस से शारीरिक जीवन की अपेक्षा आध्यात्मिक जीवन में ही हम अधिक विश्वास करते हुए दिखाई देते हैं। क्योंकि वे लोग भी जो उस सत्य में (जिसकी हम परिभाषा नहीं कर सकते हैं, किंतु जिसे जीवात्मा कहते हैं) विश्वास नहीं करते—ऐसे लोग भी इस ढंग का व्यवहार करने के लिए विवश हो जाते हैं कि मानों वे उसे सत्य मानते हैं; अथवा इतना तो अवश्य ही मानते हैं कि वह हमारे इन्द्रिय-गोचर जगत् की अपेक्षा अधिक सत्य है। और इसी लिए वे लोग भी प्रायः सत्य, शिव और सुन्दर के लिए मृत्यु को—इस शारीरिक जीवन के अन्त को—मानने के लिए राजी रहते हैं। इस बात से मनुष्य में पाई जानेवाली स्वतन्त्रता की गहरी अभि-

लाषा तथा (संसार के बन्धनों से) छुटकारा पाकर उस असीम देश में जाने की इच्छा प्रकट होती है जहाँ वह उस सत्य (जो स्वार्थ से रहित प्रेम की भावना के द्वारा संसार के साथ उस का संबन्ध स्थापित करता है) के साथ अपने संबन्ध का अनुभव कर सकता है।

जब बुद्ध ने मैत्री को केवल मनुष्यों के ही प्रति नहीं, वरन् समस्त सृष्टि के प्रति भी सामञ्जस्यपूर्ण संबन्ध का उपदेश दिया था, क्या उस समय उन के मन में यह सत्य बात न थी कि जब हम संसार के साथ केवल उसे एक ऐसी घटना, जिस को हम अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिए जान सकते हैं और काम में ला सकते हैं, मानकर व्यवहार करते हैं तब संसार के प्रति हमारा व्यवहार ठीक रास्ते पर नहीं होता है। क्या वे इस बात का अनुभव नहीं करते थे कि सृष्टि का सच्चा अर्थ केवल प्रेम के ही द्वारा समझा जा सकता है, क्योंकि सदा बना रहनेवाला प्रेम ही आत्मभाव के बन्धन से मुक्त हमारी जीवात्मा से उत्तर पाने की प्रतीक्षा करता है। बन्धनों से इस प्रकार की मुक्ति स्वभाव से निषेधात्मक नहीं हो सकती है, क्योंकि प्रेम कभी भी निषेध की ओर ले जानेवाला नहीं है। पूर्ण स्वतन्त्रता तो संबन्ध के पूर्ण सामञ्जस्य में ही है, केवल बन्धन से मुक्त हो जाने में नहीं। जहाँ स्वतन्त्रता केवल अकेली ही रहती है वहाँ उस में कोई अनुक्रमणिका नहीं होती और इसी से उस का कुछ अर्थ भी नहीं होता। जीवात्मा का मोक्ष तब होता है जब संसार की प्रत्येक वस्तु के वास्तविक सत्य के साथ उस का पूरा पूरा संबन्ध हो जाता है। इस की परिभाषा करना असंभव है, क्योंकि यह सभी परिभाषाओं की पहुँच से बाहर है।

अर्थवाद का प्रधान चिह्न यह है कि उस का बाहरी स्वरूप नापा जा सकता है अर्थात् उस की सीमा परिमित होती है। दीवानी और फौजदारी के जितने झगड़े मनुष्य के इतिहास में हुए हैं वे इन्हीं सीमाओं के बारे में हुए हैं। अपनी सीमाओं को बढ़ाने के लिए मनुष्य को दूसरे की सीमाओं पर अधिकार जमाने की आवश्यकता पड़ती है। इस लिए चूँकि अपनी शक्ति पर अभिमान करना अपनी संख्या का ही, केवल नये भर्ती किए हुए सिपाहियों और कैदियों की संख्या का ही अभिमान है। इस लिए शक्ति के (विस्तार को) देखने के लिए उस की ओर लगाई हुई सब से शक्तिशाली दूरबीन भी रक्त के समुद्र के उस पार शान्ति के किनारे को देख सकने में असफल ही रह जाती है।

ऐसा ही दुःखान्त प्रकरण हमारे इतिहास में प्रायः पाया जाता है जब शक्ति का यह प्रेम जो वास्तव में आत्मभाव का ही प्रेम है, मनुष्य के धार्मिक जीवन के ऊपर आधिपत्य जमा लेता है, क्योंकि उस समय वही एक साधन जिस के द्वारा मनुष्य अपनी जीवात्मा के मोक्ष की आशा कर सकता है, स्वयं उस स्वतन्त्रता का सब से बड़ा शत्रु बन जाता है। जितनी भी हथकड़ियाँ हैं उन में से उन को तोड़ सकना सब से कठिन है जो झूठमूठ ही आध्यात्मिकता के नाम को ग्रहण करती हैं। और जितने प्रकार की कालकोठरियाँ हैं उन में सब से भयानक और अन्धकारयुक्त वे हैं जिन में मनुष्यों की जीवात्मा अभिमानजनित आत्मप्रवञ्चना में बंद पड़ी रहती हैं। क्योंकि किसी ऊपरी वेश के बिना आत्मा की जो खोज की जाती है वह उस गीली मिट्टी के समान, जो धूप और हवा में खुली पड़ी रहती है, खुले रहने के ही कारण सुरक्षित रहती है। किंतु आत्मविस्तार जिसके परि-

णामस्वरूप मनुष्य के सर्वश्रेष्ठ गुण बुरे रास्ते पर चलने लगते हैं और जो धर्म के सांप्रदायिकता की दशा में पहुँच जाने से नष्ट हो जाने पर बिना किसी प्रकार की लज्जा के बराबर बना रहता है, धर्म के परदे में छिपी हुई एक प्रकार की दुनियादारी ही है। आर्थिक स्वार्थ के आधार पर संसार में जो मत प्रचलित है उस की अपेक्षा कहीं बढ़कर इस (आत्मविस्तार) के द्वारा मनुष्य का हृदय संकुचित हो जाता है।

मुझे इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करना चाहिए कि वह आत्मशक्ति क्या है, जिस को वश में करने के लिए संसार के सब बड़े बड़े धर्म बन गये हैं।

संध्या के समय का आकाश हमारे सामने अपना शान्त सौन्दर्यपूर्ण स्वरूप लेकर प्रकट होता है। यद्यपि हम यह जानते हैं कि उस की ज्वालामयी भँवरों—नक्षत्रों—से होनेवाले अव्यवस्थित विस्फोट बहुत क्रोधयुक्त संघर्ष के साथ परस्पर एक दूसरे से टकराते हैं, किंतु 'ईशावास्यमिदं सर्वं'[1]—इस के ऊपर और भीतर सर्वत्र एक रहस्यमयी सामञ्जस्य की भावना फैली रहती है जो सदैव विद्रोहात्मक तत्त्वों को रचनात्मक एकत्व के रूप में परिवर्तित करती रहती है-और जो लगातार अपनी निकटवर्तिनी वस्तुओं को इधर उधर ढकेल कर अशान्तिपूर्ण विनाश की ओर बढ़ानेवाले परस्पर संघर्ष करते हुए पदार्थों में से स्थायी शान्ति और सौन्दर्य का विकास करती रहती है।

यही महान् सामञ्जस्य, सदा बना रहनेवाला यही ओम्, यही सत्य है। यह देश और काल के बड़े बड़े अँधेरे गड्ढों के ऊपर पुल का काम करता है, मतभेदों को दूर करता है और अस्थिर वस्तुओं को स्थिरता प्रदान करता है। यही सर्वव्यापी रहस्य अपने तत्त्वरूप में वह वस्तु है जिसे हम आध्यात्मिकता कहते हैं। इसी सत्य के मानवपक्ष को सब महापुरुषों ने अपने जीवनों में अपनाया है तथा भिन्न भिन्न धर्मों के नाम से अपने साथियों को शान्ति और सद्भावना की प्राप्ति के साधनस्वरूप—व्यवहार में सौन्दर्य, चरित्र में वीरता और सभी बड़ी बड़ी सभ्यताओं में उच्च भावनाओं और महान् कार्यों को करने की शक्ति को प्रदान करने लिए दिया है।

किंतु जब ये ही धर्म अपने पवित्र उद्गमों को छोड़कर दूर चले जाते हैं तब ये अपनी मूल गत्यात्मक शक्ति को खो देते हैं। उस समय इन का पतन हो जाता है और ये पवित्रता का ढोंग बना लेते हैं। विचारविरुद्ध आदतों तथा अन्धपरंपराओं के पालन से इन में बिलकुल खोखलापन आ जाता है। इन की आध्यात्मिक अन्तःप्रेरणा सांप्रदायिकता के झंझटों में पड़कर धुँधली हो जाती है। ये एक ऐसी दृढ बाधा बन जाते हैं जो मानवजाति की एकता की दृष्टि को अन्धकारयुक्त कर देती है तथा ये ही अपने कूड़ा करकट में से निकाले हुए अतर्कसंमत विचाररूपी बड़े बड़े पत्थरों को हमारी उन्नति के मार्ग में इकट्ठा कर देते हैं। अन्त में यह स्थिति यहाँ तक पहुँचती है कि सभ्य जीवन को विवश होकर अपनी शिक्षा को धार्मिक मतों के झमेलों से अलग कर लेना पड़ता है। आध्यात्मिक श्रेष्ठता के वेश में ऐसी भ्रातृघातिनी पथभ्रष्टताओं ने परमात्मा के, जिस का यश बढ़ानेवाली वे अपने को मानती हैं, नाम पर ऐसा बुरा अविश्वास उत्पन्न कर दिया है जैसा कि कट्टर और विरोधी नास्तिकता भी कभी न कर सकती थी।

१—अर्थात् यह सब कुछ ईश्वर का निवासस्थान है।
— ईशावास्योपनिषद्

इस का कारण यह है कि सांप्रदायिकता एक भयानक अमरबेल के समान उसी धर्म में से अपना आहार लेती रहती है जिस के अनुसार वह अपना रंग ग्रहण करती है, और उसे इस ढंग से बिल्कुल समाप्त कर देती है कि उसे (उस धर्म को) यह बात विदित नहीं होने पाती कि रस के चूस लिये जाने के कारण कब उस की प्राणशक्ति सूख गई है। यह अपने निकटवर्ती लोगों के द्वारा विश्वसनीय मानी जानेवाली बातों से बहुत अधिक घृणा करती हुई उस धर्म की मरी हुई खाल का उपयोग अपने निवासस्थान के रूप में करती है तथा उसी के द्वारा लड़ने झगड़ने की अपनी अपवित्र भावना की और अपनी पवित्रता की झूठी प्रशंसा की रक्षा करती है।

जब किसी विशेष धर्म के माननेवाले सांप्रदायिक भक्तों को अपने भाइयों के प्रति किये जानेवाले उस विषम व्यवहार के लिए जो मानवजाति को बहुत अधिक आघात पहुँचाता है तथा उसे अपमानित करता है, जवाब देने को मजबूर किया जाता है तब वे तुरंत ही अपने धर्मग्रन्थों में से प्रेम, न्याय, शील और मनुष्य में विद्यमान देवत्व का उपदेश देनेवाले उत्तम उद्धरणों को पेश करके (औरों के) मन को दूसरी ओर फेर देने का प्रयत्न करने लगते हैं। किंतु यह देखकर हँसी आती है कि उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं होता कि ये ही सब बातें उन की बुद्धि के प्रायः बने रहनेवाले ढंग में बहुत अधिक हानि पहुँचानेवाली गड़बड़ी उत्पन्न करती हैं। अपने धर्म के अभिभावक बनते समय एक ओर तो वे ऊपरी रीति रिवाजों को जो प्रायः पुराने समय के होते हैं, झूठमूठ स्थायी महत्त्व देकर भौतिक संपत्तिवाद को तथा दूसरी ओर नैतिक औचित्य से रहित जन्म और सादृश्य के आधार पर बनाये हुए विशेष सुविधाओं के मजबूत घेरे के भीतर अपने पूजा के ढंगों को पवित्रता का रूप देकर नैतिक संपत्तिवाद को उस (धर्म) पर आक्रमण करने देते हैं। इस प्रकार का पतन किसी एक ही विशेष धर्म में नहीं, वरन् किसी न किसी मात्रा में सभी धर्मों में पाया जाता है और इस के अपवित्र कारनामों का इतिहास भाइयों के खून से लिखा गया है तथा उस में उन पर किये गये तमाम अत्याचारों की मुहर लगा दी गई है।

मनुष्य के समस्त इतिहास में यह बात दुःखद रूप में स्पष्ट है कि धर्म, जिन का उद्देश्य जीवात्मा को मुक्त कर देना है, किसी न किसी रूप में सदा मन की स्वतन्त्रता को और यहाँ तक कि नैतिक अधिकारों को भी शिथिल करने के साधन रहे हैं। अयोग्य हाथों में पड़कर सत्य का अधिकार—वह सत्य जो मानवजाति को पशुता के अन्धकारमय प्रदेश से बाहर निकालकर उस की आर्थिक और नैतिक उन्नति करने के लिए बनाया गया था—समुचित दण्ड देने लग गया है, और इस प्रकार हम देखते हैं कि धार्मिक कुटिलता के कारण जितनी अधिक तर्कशून्यता और नैतिक विवेकहीनता फैल रही है उतनी हमारी शिक्षा में पाई जानेवाली किसी अन्य कमी के कारण नहीं। इसी प्रकार जब विज्ञान के द्वारा बतलाये हुए सत्य का प्रयोग बुरे व्यापारों में किया जाने लगा है तब वह हमें विनाश करने की धमकी दे रहा है। मनुष्य के लिए ये बड़े दुःखदाई अनुभव हैं कि सभ्यता से उत्पन्न होनेवाली सर्वोच्च वस्तुओं का ऐसा दुरुपयोग देखा जाय तथा धर्म के अभिभावक एक तरफ से हत्याकाण्ड तथा दासत्व की स्थापना करने के लिए उद्यत और शस्त्रास्त्रसज्जित लौकिक शक्ति को आशीर्वाद देते हुए पाये जायँ, तथा विज्ञान भी

उन्हीं विचारहीन शक्तियों के उपद्रवों से युक्त घातक जीवन में भाग ले।

जब हम इस बात में विश्वास करने लगते हैं कि हम ने किसी विशेष संप्रदाय को मानने के कारण ही परमात्मा को प्राप्त कर लिया है, तब तो हमें इसी बात से पूर्ण शान्ति मिल जाती है कि अब आगे और भी ज्यादा जोर के साथ उन लोगों के, जिन का ईश्वर संबन्धी मत सौभाग्य से या दुर्भाग्य से हमारे ईश्वर संबन्धी मत से सिद्धान्तों में भिन्न है, खोपड़ों को फोड़ने के लिए छोड़कर ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार विश्वास के किसी धुँधले देश में अपने ईश्वर के लिए स्थान नियुक्त करके हम समस्त वास्तविकता के संसार का संपूर्ण स्थान अपने वास्ते सुरक्षित करने के लिए अपने को स्वतन्त्र समझने लगते हैं तथा उसे असीमता के आश्चर्य से अलग कर देते हैं और अपने घरेलू सामान के समान महत्त्वहीन बना देते हैं।

किसी संप्रदाय के माननेवाले पवित्र व्यक्ति को इस लिए अभिमान होता है कि उसे इस बात का निश्चय रहता है कि परमात्मा को वशीभूत करने का उसे अधिकार है। भक्ति करनेवाला व्यक्ति इस लिए नम्र रहता है कि उसे इस बात का ज्ञान रहता है कि ईश्वर को उस के (उस व्यक्ति के) जीवन और जीवात्मा पर प्रेम करने का अधिकार है। यह एक निश्चित बात है कि जो वस्तु हमारे वशीभूत होगी वह अवश्य हम से छोटी होगी। इस बात को इन शब्दों में स्वीकार न करते हुए भी एक कट्टर संप्रदायवादी इस बात पर पूरा विश्वास रखता है कि उस के और उस के साथियों के लिए उन्हीं के बनाये हुए पिंजड़े में ईश्वर सुरक्षित रूप में रखा जा सकता है। इसी प्रकार मनुष्यों की प्राचीन जातियाँ भी यह विश्वास करती हैं कि उन के देवताओं के ऊपर उन धार्मिक कृत्यों का जादू का सा असर होता है।

इस प्रकार प्रत्येक धर्म जो कि बन्धन से छुड़ाने वाले के रूप में प्रारम्भ होता है, अन्त में एक विशाल कारागार बन जाता है। उस के संस्थापक के त्याग की नींव के आधार पर उस की इमारत खड़ी होती है, किंतु उस के पुरोहितों के हाथ में पड़कर वह एक संग्रह करनेवाली संस्था बन जाती है और विश्व-जनीन होने का दावा करते हुए वह मतभेद और झगड़ों का एक सक्रिय केन्द्र बन जाती है। धीरे धीरे बहनेवाली एक धारा के समान मनुष्य की आत्मशक्ति सड़ती हुई सेवार से भर जाती है, और उन छोटी छोटी छिछली तलैयों में विभक्त हो जाती है जो केवल मूर्खता के घातक कुहरे को ही उत्पन्न करने का काम करती हैं। परंपरा की यह यान्त्रिक भावना अवश्य ही संपत्ति को प्रधान माननेवाली है। यह विचारान्धता के अनुसार पवित्र है, किंतु आध्यात्मिक नहीं है। यह तर्कशून्यता की अकल्पित भावनाओं से घिरी रहती है जो धर्म के भद्दे अनुकरण के द्वारा दुर्बल मनों में अपना अड्डा जमा लेती हैं। यह बात केवल साधारण व्यक्तियों में ही, जो उन बन्धनों को स्वीकार करते हैं, जो उन्हें उत्तरदायित्वहीन बनाते हैं अथवा उन वस्तुओं की कामना करते हैं जो अवास्तविक और बुराइयों से भरी हैं, नहीं पाई जाती है, वरन् उन निस्तेज जातियों की पीढ़ियों में भी पाई जाती है जिन्होंने अपने वर्तमान को अपने भयावह अतीत में खो देने के कारण अपने भीतर से वास्तविक अभिप्राय और महत्त्व को निकाल दिया है।

रामकृष्ण परमहंस सरीखे बड़े बड़े महात्मा ही सत्य को व्यापक रूप में देखने की शक्ति रखते हैं।

उन में ऐसी शक्ति होती है कि वे एक ही वास्तविकता के प्रत्येक भिन्न रूप को समझ सकते हैं। किंतु अधिकांश में विश्वास करनेवाले लोग नियामक ग्रन्थों और अनुशासनों में पाये जानेवाले विरोध में सामञ्जस्य स्थापित करने की क्षमता नहीं रखते हैं। उन की कायर और अस्थिर कल्पना धर्म में असीम के दर्शन के द्वारा छुटकारा पा जाने के बजाय अन्धविश्वास में कैद हो जाती है और पुरोहितों तथा धर्मान्धों के द्वारा उन रीति रिवाजों के लिए पीड़ित और उत्तेजित की जाती है जिन के संबन्ध में प्रारम्भिक धर्मद्रष्टा ने कभी सोचा भी न होगा।

अभाग्यवश महापुरुष बहुधा ऐसे लोगों के द्वारा घिरे रहते हैं जिन के मन स्वच्छ वातावरण के न मिलने से उच्च मूल स्थान से उत्पन्न होनेवाले विचारों को अन्धकार में डाल देते हैं और उन्हें गलत रास्ते पर लगा देते हैं। उन्हें उस समय भद्दा संतोष प्राप्त हो जाता है जब उन के द्वारा वर्णित उन के गुरु का स्वरूप कुछ ऐसे चिह्नों का प्रदर्शन करता है जो स्वयं उन्हीं के व्यक्तित्व के ढंग से मिलते जुलते हैं। जान में और अनजान में वे बुद्धिमत्ता के गम्भीर संदेशों को स्वयं अपनी टेढ़ी समझ के साँचे में ढालकर उन का रूप बदल देते हैं। ऐसा करने में वे सावधानी के साथ उन पर ऐसी रूढ़ियों के दिखाव का रंग भी फेर देते हैं जो स्वयं उन्हें सुख पहुँचाती हैं और जो उन के समाज के स्वभावगत मानसिक झुकाव को संतुष्ट करती हैं। विशुद्ध और पवित्र रूप में सत्य के आनन्द का अनुभव करने के लिए मन में जिस सूक्ष्म अनुभव शक्ति की आवश्यकता होती है उस के अभाव के कारण वे अत्यधिक विस्तार करने के प्रयत्न में अपनी बुद्धिविहीन योग्यता के अनुसार उसे (सत्य को) बहुत बढ़ा देते हैं। ऐसा करना उस की सच्ची प्रशंसा के लिए उतना ही अनावश्यक है जितना कि यह उस के मूल दूत के बड़प्पन को घटानेवाला है। महापुरुषों का इतिहास, स्वयं उन के महान् होने के ही कारण, सदैव इस आशङ्का से युक्त रहता है कि कहीं स्मृति के एक ऐसे गलत आधार पर उस का प्रदर्शन न किया जाय कि जहाँ पर वह ऐसे तत्त्वों के साथ मिल जुल जाय जो बिल्कुल परंपराभुक्त होने के कारण तुरंत ही जनसमूह के द्वारा ग्रहण कर लिये जाते हैं।

मैं आप लोगों से यही कहता हूँ कि यदि आप सचमुच सत्य के प्रेमी हैं, तो उस के समस्त असीम सौन्दर्य और महत्त्व के साथ, पूर्ण रूप में उसे खोजने का साहस कीजिए। किंतु रूढ़ियों की पत्थर की दीवालों के भीतर कंजूसों के समान एकान्त स्थान में उस के (सत्य के) व्यर्थ के संकेतचिह्नों का संग्रह करके ही संतोष न कर लीजिए। महात्माओं की आध्यात्मिक उच्चता के कारण जो कि उन सब में समान रूप से पाई जाती है, हमें विनम्रतापूर्ण सादगी के साथ उन का आदर करना चाहिए। यह आध्यात्मिक उच्चता उन में उस समय देखी जाती है जब वे अपने विश्वजनीन उच्च विचारों के साथ मनुष्य की आत्मा को स्वयं उस के व्यक्तिगत, उस की जाति और उस के धर्म के अहंभाव के बन्धन से छुड़ाने के लिए एकत्रित होते हैं। किंतु परंपराओं की उस नीची भूमि में जहाँ धर्म एक दूसरे के दावों और अन्धविश्वासों को चुनौती देकर ललकारते हैं और उन का खण्डन करते हैं वहाँ पर एक बुद्धिमान् मनुष्य निश्चय ही संदेह और आश्चर्य के साथ उन के पास से चला जायगा।

मेरा मतलब इस बात का समर्थन करने का नहीं है कि समस्त मानवजाति के लिए कोई एक ही प्रकार

का प्रार्थनागृह रखा जाय अथवा कोई एक ऐसा विश्वजनीन नमूना रखा जाय जिस का अनुकरण सभी पूजा के और सद्भावना के कार्यों के द्वारा किया जाय। सांप्रदायिकता की उद्धत भावना को जो कि बहुधा सक्रिय अथवा निष्क्रिय, उत्तेजनापूर्ण अथवा विनम्र पीड़ा पहुँचानेवाले ढंगों को बहुत ही कम अथवा विना क्रोधयुक्त उत्तेजना के काम में लाती है, इस तथ्य का स्मरण दिलाने की जरूरत है कि कविता के ही समान धर्म केवल विचार नहीं है, वरन् (विचारों का) प्रकटीकरण है। ईश्वर का आत्मप्रकटीकरण सृष्टि की विभिन्नता में है और असीम के प्रकटीकरण में हमारी भावना में भी व्यक्तिगत रूप की ऐसी विभिन्नता होनी चाहिए जो अविरल और अनन्त हो। जब किसी धर्म में समस्त मानवजाति पर अपने ही मत को लादने की महत्त्वाकाङ्क्षा उत्पन्न हो जाती है तब उस का पतन हो जाता है और वह अत्याचार करने लगता है तथा साम्राज्यवाद का एक रूप बन जाता है। यही कारण है कि जिस से हम धार्मिक मामलों में फैसिज्म (fascism) के एक विवेकशून्य ढंग को संसार के अधिकांश भागों में फैलते हुए तथा मनुष्य की आत्मशक्ति के विस्तार को अपने अनुभवज्ञानविहीन तलुवों से खूब कुचलते हुए पाते हैं।

अपने ही एक धर्म को सभी देशों और सभी कालों में प्रधान बना देने का प्रयत्न ऐसे ही लोगों में देखा जाता है जिन्हें सांप्रदायिकता का व्यसन हो जाता है। यह कहना उन को बुरा मालूम होता है कि प्रेम के वितरण करने में ईश्वर उदार है तथा मनुष्यों के साथ आदान प्रदान करने के उस के साधन एक ऐसी अँधेरी गली में ही परिमित नहीं हैं जो इतिहास के एक संकीर्ण स्थान पर जाकर अकस्मात् समाप्त हो जाती है। यदि मानवजाति में सदैव एकाङ्गी अन्धविश्वास की विश्वव्यापी बाढ़ आती रही, तो आध्यात्मिकविनाश की महाविपत्ति से अपने जीवों की रक्षा करने के लिए ईश्वर को दूसरे नोआ के आर्क (Noah's Ark) की रचना करनी पड़ेगी।

मैं जिस बात का समर्थन करना चाहता हूँ वह यह है कि इस उपेक्षित सत्य को लोग जीते जागते रूप में स्वीकार करें कि धर्म की वास्तविकता का आधार बहुत आवश्यक और विश्वव्यापी आवश्यकता के रूप में मानवप्रकृति की सत्यता में है और इसी लिए उस के (मानवप्रकृति के) द्वारा उस की (धर्म की वास्तविकता की) लगातार परीक्षा होती रहनी चाहिए। जहाँ पर यह उस आवश्यकता की उपेक्षा और तर्क का उल्लङ्घन करती है वहाँ पर यह स्वयं अपने औचित्य को दूर भगा देती है।

मुझे इस भाषण को मध्यकालीन भारतवर्ष के बहुत बड़े रहस्यवादी कवि कबीर, जिन्हें मैं अपने देश के सर्वप्रधान आध्यात्मिक विशेष बुद्धिमानों में से एक व्यक्ति मानता हूँ, की कुछ निम्नलिखित पङ्क्तियों को देते हुए समाप्त करने दीजिए:—

"रत्न कीचड़ में खो गया है और सब लोग उसे ढूँढ़ रहे हैं। कुछ लोग पूरब की ओर खोजते हैं, कुछ पश्चिम की ओर। कुछ लोग पानी में खोजते हैं और कुछ पत्थरों में। किंतु दास कबीर ने उस के सच्चे मूल्य को जान लिया है और स्वयं अपने हृदयरूपी वस्त्र के एक आँचल में उसे बड़े यत्न के साथ लपेट रखा है।"

(६) स्वामी परमानन्द

(वेदान्तसेंटर, बोस्टन (मैसा०) और ला क्रिसेंटा (कैलीफो०) यू० एस० ए०)

मङ्गलवार, ४ मार्च—प्रातःकालीन अधिवेशन।

मित्रो तथा मेरे आध्यात्मिक संबन्धियो,

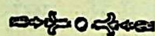
मैं ने बड़े चाव के साथ केवल इसी देश के नहीं, वरन् समस्त संसार के प्रसिद्ध व्यक्तियों के ज्ञान-वर्द्धक लेखों को सुना है। स्वभावतः वे सभी विचारोत्पादक हैं। मैं केवल एक ही बात के संबन्ध में कुछ कहूँगा जो क्रियात्मक मूल्य और उपयोग की है। लोगों के साथ साथ यात्रा करने में और बैठने में मैं ने यह कहते हुए सुना है कि संसार एक बहुत बुरा स्थान



(स्वामी परमान्ददजी)

है। अच्छा यदि यह बुरा स्थान है, तो इस में हमारा भी तो हिस्सा है। हम इस में रहते हैं, हम इस में साँस लेते हैं और फिर यदि हम इस में अवाञ्छनीय तत्त्व पाते हैं, तो हमें इस के सुधारने की भावना रखनी चाहिए। श्री रामकृष्ण ने क्रियात्मक वास्तविकता के साथ ऐसा किया है और ऐसा करनेवालों में से वे भी एक हैं। वे सुशील और विनम्र थे। वे विद्वान् न थे, किंतु क्रियात्मक आदर्शवादी थे। उन्होंने एक उदाहरण उपस्थित किया है और वह पूर्णता का उदाहरण है। यही कारण है कि जिस से हम सब लोग आज यहाँ पर आये हैं। यहाँ पर एक भी प्राणी ऐसा नहीं है जो पूर्णता न प्राप्त करना चाहता हो। और श्री रामकृष्ण अपने उद्देश्य की सचाई, जीवन की पवित्रता तथा आदर्श के प्रति एकान्त भक्ति के द्वारा उसे (पूर्णता को) क्रियात्मक वास्तविकता के रूप में ले आये थे। हमें प्रति दिन सवेरे, दोपहर और रात में तथा जितना अधिकतर हो सके, उस पर विचार करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि हमारे जीवन उसी के अनुसार ढाले जायँ। मैं बहुत स्पष्टता और सचाई के साथ अनुभूत उदाहरण के रूप में यह कह सकता हूँ, मैं ने स्वयं अपने जीवन में यह देखा है कि केवल एक बार के स्पर्श के द्वारा एक (व्यक्ति के) जीवन में परिवर्तन हो गया है। यह देखना मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात थी। सिद्धान्तों की रचना करने के बजाय हमें श्री रामकृष्ण के समान कुछ रचनात्मक काम करना चाहिए। हम सिद्धान्तों से ऊब गये हैं। कौन मनुष्य यह चाहता है कि उसे इस बात का स्मरण कराया जाय कि संसार एक बुरा स्थान है? यदि आप मानव-जाति से प्रेम करते हैं, तो इस को बार बार कहने के बजाय स्वयं आकर अपना सहायक हाथ आगे बढ़ाइए। हमें यह आशा करनी चाहिए कि उन

मूल सिद्धान्तों के अनुसार हम अपने जीवन में व्यवहार करने का प्रयत्न करेंगे जिन पर हम इन बैठकों में विचार कर रहे हैं। हम में से वे लोग जो रामकृष्ण के महान् जीवन के संबन्ध में कुछ थोड़ा भी ज्ञान रखते हैं, यह जानते हैं कि उन्हें आध्यात्मिक दृष्टि राजनीति, विज्ञान अथवा इसी प्रकार के किन्हीं बुद्धि संबन्धी उपायों से नहीं प्राप्त हुई थी। उन्होंने उस प्रेम के द्वारा सत्य को प्राप्त किया था जो मानवजाति को एक में बाँधनेवाला सुनहला बन्धन है। अतः हमें बुरी दशा को भूल जाना चाहिए। मैं समझता हूँ कि जितना ही कम हम उस के संबन्ध में कहें उतना ही हमारे लिए अच्छा है। यह हमें अधिक शक्ति देगा। यदि हम एक दूसरे के प्रति भलाई करते हैं, तो मैं समझता हूँ कि हमें वह वस्तु मिल जायगी जिस के लिए श्री रामकृष्ण और उन के शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने स्वार्थ के विचार के विना ही अपने आप को अर्पित कर दिया था। ऐसा करने से हमें उन के आशीर्वाद प्राप्त होंगे और हमें वह आनन्द और शान्ति प्राप्त हो जायगी जिस के लिए हम लालायित हैं।



(७) सर फ्रांसिस यंगहसबैंड

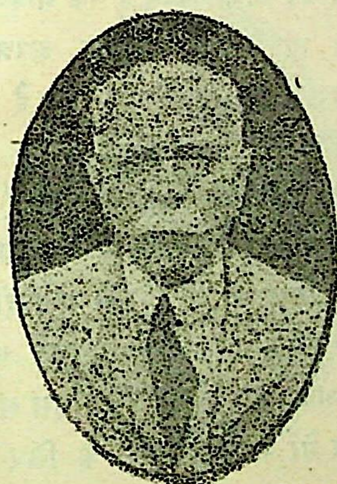
(लंदन की धर्मों के अध्ययन की उन्नति करनेवाली समिति के सभापति)

गुरुवार, ४ मार्च—अपराह्णिक अधिवेशन।

महिलाओ, सज्जनो और मेरे आध्यात्मिक संबन्धियो,

मेरे लिए इस समय यह बड़े सुयोग की बात है कि इस सर्वधर्मपरिषद् के महान् सुअवसर पर मुझे कुछ कहने का मौका देने के लिए आप लोगों को धन्यवाद देते हुए प्रारम्भ में आप से कुछ शब्द कहूँ। श्री रामकृष्णशताब्दी के उत्सवों में संमिलित होने के लिए मैं ने इंग्लैंड से यहाँ तक का सफर इस लिए किया है कि अनेक वर्षों से श्री रामकृष्ण के महान् कार्य के प्रति मुझे बहुत अधिक और गम्भीर श्रद्धा है। पहले पहल मैं उन की ओर इस लिए आकृष्ट हुआ था कि उन्होंने और किसी भी दूसरे मनुष्य की अपेक्षा अन्य धर्मों के प्रति केवल असद्व्यवहार न करने के ही नहीं, वरन् उन की अच्छी तरह सराहना करने और उन में गम्भीरतापूर्वक प्रवेश करने के महान् किंतु सीधे सादे सिद्धान्त का उपदेश अधिकार के साथ दिया था। मैं एक ईसाई की हैसियत से यह कह रहा हूँ। सब से अधिक प्रभाव मुझ पर उस ढंग का पड़ा था जिस से वे महान् संत हमारे ईसाईधर्म में, ईसामसीह के बहुत सीधे सादे जीवन और उपदेशों में प्रविष्ट हुए थे। एक प्रकार से हम ईसाई लोग उस ढंग के द्वारा जिस से वे ईसाईधर्म में प्रविष्ट हुए थे, स्वयं अपने धर्म को अधिक अच्छी तरह से समझ सकने के योग्य हो गये थे।

समझता हूँ कि आप सब लोगों को वह कथा याद होगी कि जब श्री रामकृष्ण को मैडोना और उन के पुत्र की तसवीर दिखाई गई थी तब उन पर—स्वभाव से ही उन में अनुभूतिज्ञान की प्रधानता के कारण—इतना गहरा प्रभाव पड़ा था कि वे तुरंत ही मूर्छित हो गये थे। उन्होंने उस तसवीर को देखा था और उस पर मनन करके उन्होंने केवल परमात्मा के पितृत्व का ही नहीं, वरन् मातृत्व का भी अनुभव किया था। और फिर आप जानते हैं, जैसा कि उस कथा में बताया गया है कि छः महीने तक वे



(सर फ्रांसिस यंगहसबैंड)

अकेले रहकर ईसामसीह की जीवात्मा में प्रवेश करने के लिए भावनाओं की पूर्ण सघनता के साथ अपना सारा समय और एकाग्रतापूर्वक अपना सारा ध्यान लगाते रहे। इसी बात ने हम ईसाइयों पर बहुत अधिक प्रभाव डाला था, क्योंकि हम यह अनुभव करते हैं कि ये एक ऐसे हिंदू थे कि हिंदुओं के लिए हिंदू होते हुए भी साथ ही साथ ईसाइयों के लिए ईसाई हो गये थे। (खूब जोर से ताली बजी।) उन्होंने केवल ईसाइयों पर ही नहीं, वरन् मुसलमानों और बौद्धों पर भी प्रभाव डाला था। यह एक बहुत बड़ा और सीधा सादा सिद्धान्त है—मेरा विचार है कि इस के संबन्ध में मेरा और आप का एक ही मत होगा—कि भिन्न भिन्न धर्मों के माननेवाले हम लोग एक साथ इकट्ठा किये जायँ। मानवजाति के लंबे इतिहास से हम को यह विदित होता है कि वर्तमान समय में जब कि हम में इतना भयानक वैमनस्य है, तब आध्यात्मिक तथा धार्मिक लोगों के लिए यह बहुत अच्छी बात होगी कि वे एक जगह पर आकर परस्पर एक दूसरे से मिलें और इस बात को देखें कि संसार के जीवन में वे किस प्रकार उस आत्मशक्ति को ला सकते हैं जिस का उपदेश देनेवाले देवदूत श्री रामकृष्ण थे।

अब मुझे जो सब से प्रधान बात मालूम हुई है वह यह है कि ऐसे अवसरों पर जब हम एक साथ मिलते हैं तब हमें पारस्परिक सहायता मिलती है। इसी प्रकार गत वर्ष लंदन में हम लोग धर्मों की सभा (Congress of Faiths) में एकत्रित हुए थे। हम में से प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म को बनाये रखा था और हम में से प्रत्येक व्यक्ति को यह विश्वास था—कम से कम मुझे तो था—कि अपना ही धर्म सब से अच्छा है। तथापि एक दूसरे के साथ मिलने से, एक दूसरे के साथ आध्यात्मिक संपर्क से हमें और अच्छे हिंदू, और अच्छे मुसलमान, और अच्छे बौद्ध तथा और अच्छे ईसाई बनने की प्रेरणा मिली थी। हम में से प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने धर्म की मूल बातों को मानने के लिए मजबूर किया गया था और प्रत्येक व्यक्ति में अपने धर्म के उच्चतम आदर्श के अनुसार सद्भावना ग्रहण कराई गई थी। यह एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बात है। समस्त मानवजाति पर श्री रामकृष्ण का इस बात का बड़ा भारी ऋण है कि उन्होंने इस मत को फैलाया है, इसे सघन बनाया

है तथा स्वयं अपने जीवन में इसी के अनुसार व्यव-हार किया है। इस मत में हम एक बहुत बड़ा सिद्धान्त पाते हैं। यह सिद्धान्त बहुत सीधा सादा भी है और इसी के द्वारा समस्त विश्व का शासन होता है। यह है 'विभिन्नता में 'एकता' का सिद्धान्त।' विभिन्नता तो सदैव बनी रहेगी और हम में से प्रत्येक व्यक्ति दूसरों से उसी प्रकार भिन्न है जिस प्रकार विश्व में एक अणु दूसरे अणु से भिन्न है। हमें अपना व्यक्तिगत रूप बनाये रखना है, किंतु यह भी हमें समझते रहना चाहिए कि इस के भीतर गह-राई पर वह मूल एकता विद्यमान है जो हम सब को एक में मिलाती है।

अच्छा, अब मैं कुछ शब्द और कहना चाहूँगा; और वे ये हैं। संत श्री रामकृष्ण के समान महा-पुरुष समय समय पर इस संसार में आते हैं और हम छोटे व्यक्तियों को चाहिए कि उन के महत्त्व और जीवन से परिचित होने के सुयोग से अधिक से अधिक लाभ उठावें। उन के जीवन पर विचार करके हमें उन की आत्माओं में प्रवेश करने का प्रयत्न करना चाहिए, किंतु हमें वहीं पर रुक न जाना चाहिए। हमें सदैव अतीत की ओर ही न देखते रहना चाहिए। पहले के अभिवादनों में एक वक्ता महोदय ने कहा है कि हम अपने भूत, भविष्य और वर्तमान के द्वारा बनाये जाते हैं। जब हम भूत की ओर देखते हैं तब हमें वर्तमान और भविष्य की ओर भी देखना चाहिए। हमें यह अनुभव करना चाहिए कि भविष्य पूरा पूरा हमारे ही बनाने से बनेगा, और हमें यह निश्चय कर लेना चाहिए कि भविष्य का संसार हमारे रहने के लिए अब की अपेक्षा अच्छा होना चाहिए। जब हम श्री रामकृष्ण को चाहते हैं तब हम भविष्य में भी बहुत दूर तक देखते हैं और यह आशा करते हैं कि भविष्य में श्री रामकृष्ण से भी बढ़कर महापुरुष उत्पन्न होंगे। यही वह संदेश है जो मुझे आप को देना है।

आप से कुछ कहने का सुयोग देने के लिए मैं हृदय से आप लोगों को धन्यवाद देता हूँ और मैं अपना यह भाव आप के संमुख प्रकट किये देता हूँ कि जब श्री रामकृष्ण की दूसरी शताब्दी मनाई जायगी उस समय हम और भी बड़े लोगों के निकलने की आशा कर सकते हैं। इस संध्याकाल में ध्यान देकर मेरे कथन को सुनने के लिए मैं हृदय से आप को धन्यवाद देता हूँ।

(८) ईरान के प्रो० मुहम्मद अली शीराजी

(कलकत्ता विश्वविद्यालय)

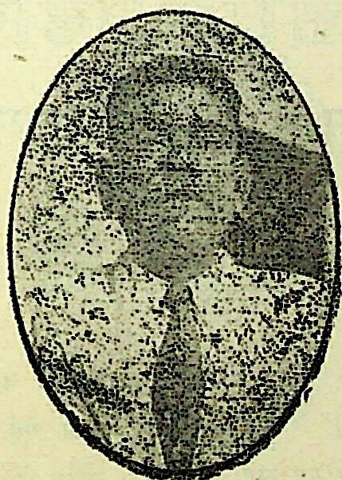
शुक्रवार, ५ मार्च—प्रातःकालीन अधिवेशन।

मित्रो,

मुझ से इस परिषद् का सभापति बनने के लिए कहकर मेरा बड़ा आदर किया गया है जो कि उस बड़े मिशन की ओर से हो रही है जिस का उद्देश्य बंगाल के उन महान् संत श्री रामकृष्ण के उपदेशों का प्रचार करना है, जिन के व्यक्तित्व का आदर समस्त संसार में किया जाता है।

इस सुअवसर पर मैं अपनी पितृभूमि (ईरान) की ओर से इस मिशन का सच्चे हृदय से अभिवादन करता हूँ। ईरान के पुत्र भारतवर्ष के पुत्रों के साथ बहुत विचारसाम्य रखते हैं और यहाँ तक कि नौशेरवाँ के शासनकाल तक में भी वे लोग परस्पर विचार-विनिमय करते थे।

आज के प्रातःकालीन अधिवेशन को समाप्त करने के पहले मेरी यह अभिलाषा है कि मैं इस मिशन की उस सफलता के संबन्ध में अपने सच्चे आनन्द के भाव को प्रकट कर दूँ जो इस मिशन



(प्रो० मुहम्मद अली शीराजी)

को उन बड़े बड़े सिद्धान्तों का प्रचार करने में मिलेगी, संसार को जिन की शिक्षा देने का काम इस ने अपने ऊपर ले रखा है।

मुझे तो संसार के सब धर्म एक महान् मूल कारण के कार्यरूप जान पड़ते हैं। अपनी शाखाओं के सहित संसार के सब धर्म यह प्रयत्न करते हैं कि वे सर्वज्ञ, सत्य, सर्वशक्तिमान् पिता और विशुद्ध सौन्दर्य के रहस्य को समझ लें। वे उस (ईश्वर) के पास तक पहुँचने के लिए भिन्न भिन्न मार्गों का अनुसरण करते हैं। अतः संसार की प्रत्येक धार्मिक प्रणाली को स्वतन्त्र रहने दीजिए और उस की वृद्धि को स्वेच्छापूर्वक काम करने दीजिए।

जब से इस संसार में हमारी स्थिति का प्रारम्भ हुआ है तभी से प्राकृतिक वस्तुएँ और उन वस्तुओं पर शासन करनेवाले नियम लगातार हमारे मन में इस सत्य को बैठाते रहे हैं कि यह एक ऐसी उच्च और यशस्विनी शक्ति है जिस पर सारे संसार के पूर्णता-युक्त संचालन का उत्तरदायित्व है।

जन्म से ही हम उस महाशक्ति का अनुभव करने लगते हैं और बाद में हम उस की स्थिति की भावना का विकास करते हैं। और जब हमारी मृत्यु होती है तब हम उस की महती कृपा के पूर्ण ज्ञान से युक्त होकर मरते हैं।

हाफ़िज़, मौलाना रूम, उमर खय्याम, जामी तथा अन्य बहुत से कवियों की कविताएँ इस विचार से युक्त हैं कि समस्त विश्व, नहीं नहीं, वरन् समस्त ब्रह्माण्ड इस बात को साफ साफ प्रकट करता है कि ईश्वर की आत्मा सर्वव्यापी है, वही पूर्ण कृपा, पूर्ण सत्य, पूर्ण सौन्दर्य है तथा ईश्वर के प्रति किया हुआ प्रेम ही सच्चा प्रेम है।

ईरान के प्रसिद्ध कवि जामी का कथन है कि—

"कभी तो हम तुझे शराब कहते हैं और कभी शराब का प्याला। कभी लुभानेवाला चारा कहते हैं और कभी जाल। विश्व की तख्ती पर तेरे नाम के सिवा और कोई अक्षर नहीं है। तब हम किस नाम से तेरा स्मरण करेंगे?"

इस प्रकार किसी भी धर्म को ग्रहण करने के पहले ही हम परमात्मा के अस्तित्व और उस की शक्ति के ज्ञानरूपी अस्त्र से सज्जित रहते हैं। किंतु परिस्थितियों के अनुसार हम अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अलग अलग रास्ते पकड़ लेते हैं।

मैं एक सत्य की खोज करनेवाला हूँ और मेरा रास्ता इस्लाम का रास्ता है। इस्लाम का अभिप्राय है ईश्वर—सच्चे और एक ईश्वर—की इच्छा के अधीन हो जाना। और ऐसा होते हुए इस ने स्पष्ट रूप से धर्म में उदारता और दबाव के न डालने का प्रदर्शन किया है।

यदि हम कुरान को देखें (अध्याय ९, पद्य नं० २५५), तो हमें उस में यह बात साफ कही हुई दिखाई देती है कि—

"धर्म में किसी प्रकार का जुल्म या दबाव न होने दो। सचमुच सच्चा रास्ता गलती से अलग दिखाई देता है। इस लिए जो कोई भी ईश्वर के अतिरिक्त और सभी पूजी जानेवाली वस्तुओं को न मानेगा तथा ईश्वर में विश्वास करेगा वही एक ऐसे पुष्ट आधार को पकड़नेवाला होगा जो टूट न सकेगा। और ईश्वर तो वही है जो सुनता है और देखता है।"



(९) पूना के डाक्टर डी० आर० भंडारकर

(कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास और शिष्टता के भूतपूर्व कारमाइकेल प्रोफेसर)

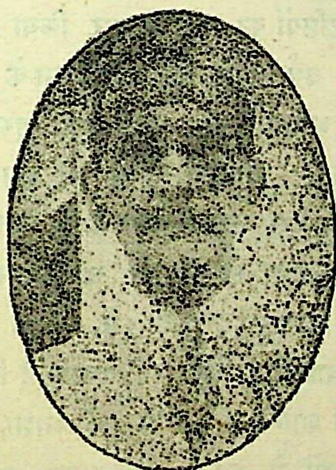
शुक्रवार, ५ मार्च—अपराह्णिक अधिवेशन

आध्यात्मिक संबन्धियो,

यह बहुत ही उपयुक्त है कि संसार की सर्वधर्म-परिषद् की बैठक भारतवर्ष में तथा श्री रामकृष्ण परमहंस की जन्मशताब्दी के उत्सव के संबन्ध में की जाय। इन आचार्य की सब से अधिक आकर्षक विशेषता अन्वेषण की सच्ची भावना है, जिस को उन्होंने जन्म भर बरता था। वे शाक्तों के बीच में शाक्त, वैष्णवों के बीच में वैष्णव, मुसलमानों के बीच में मुसलमान और ईसाइयों के बीच में ईसाई थे। उन्होंने अपने को ब्रह्मानन्द केशवचन्द्र और स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे नवीन आचार्यों के द्वारा भी प्रभावित हो जाने दिया था। उस समय के सभी धर्मों और मतों के लक्ष्य का अनुभव कर चुकने के बाद उन के मन में यह सत्य प्रकाशित हो गया कि "परमात्मा एक है, यद्यपि उस के बहुत से नाम हैं।" "धर्म एक है, सदा से यह ऐसा ही रहा है और यह सदा ऐसा ही रहेगा।" "प्रत्येक विश्वास, प्रत्येक धर्म, धर्म और पूजा की प्रत्येक प्रणाली ईश्वर के पास ले जानेवाला मार्ग ही है।" यह हमें बौद्धधर्म के प्रवर्तक शाक्य गौतम की याद दिलाता है जो सत्य का प्रकाश होने के पहले, दूसरे शब्दों में बुद्ध अर्थात् ज्ञानयुक्त होने के पहले सभी संप्रदायों और विचारधाराओं का पूर्णतया और पक्षपातरहित होकर अध्ययन करते हुए एक आचार्य के पास से दूसरे आचार्य के पास घूमते फिरे थे। उन की सत्य की खोज छः वर्ष तक होती रही। इस बीच में वे स्थिरता के साथ लगातार शरीर, मन और आत्मा से कठिन परिश्रम करते रहे। काली-

इल (Carlyle) ने एक जगह पर कहा है कि प्रतिभा 'कष्ट सहन करने की विशेष योग्यता है।' विज्ञान के क्षेत्र में कोई भी ऐसा प्रतिभाशाली व्यक्ति नहीं हुआ है जिस ने सत्य को प्राप्त करने में अपरिमित कष्ट न उठाया हो। यही बात धर्म के संबन्ध में भी है। यही कारण है कि जिस से बुद्ध और श्री रामकृष्ण के द्वारा खोजे हुए सत्यों की श्रेष्ठता अब भी हमारे ऊपर जादू का सा असर डालती है और हमारे मन पर अधिकार जमा लेती है।

पर बुद्ध और श्री रामकृष्ण ही केवल ऐसे दो



(डाक्टर डी० आर० भंडारकर)

भारतवासी न थे जिन्होंने धर्म के क्षेत्र में अध्ययन की तुलनात्मक शैली का प्रवर्तन किया हो। निर्णयात्मक बुद्धि से धर्म का इस प्रकार अध्ययन करना वास्तव में भारतीय मस्तिष्क की प्रधान विशेषता रही है; चाहे वह किसी भी धर्म को क्यों न मानता हो। मुगलसम्राट् अकबर को, जो ईसा की सोलहवीं शताब्दी में हुआ था, कौन नहीं जानता है? क्या उस ने प्रत्येक धर्म के सत्य का निश्चय करने के सहानुभूतिपूर्ण प्रयत्न के द्वारा एक भव्य उदाहरण नहीं उपस्थित किया है? हम जानते हैं कि सूफी, सुन्नी, शिया, ब्राह्मण, जैन, बौद्ध, ईसाई, यहूदी, चार्वेन और पारसी आदि लोगों के वादविवादों को सुनने और उन में सभापति का पद ग्रहण करने में उसे कितना आनन्द आता था। और हम जानते हैं कि किस भावना से वह भिन्न भिन्न धर्मों का अध्ययन प्रारम्भ करता था। वह प्रायः कहा करता था कि "वास्तव में मनुष्य वही है जो छान बीन के मार्ग में न्याय को ही अपना अगुआ मानता है और जो प्रत्येक संप्रदाय से ऐसी बातों को निकाल लेता है जिन का समर्थन उस की तर्कबुद्धि करती है। कदाचित इस प्रकार वह ताला, जिस की कुंजी खो गई है, खोला जा सके।" मैं आप से पूछता हूँ कि क्या यह भी उन आदर्शों में से जो सर्वधर्मपरिषद् के संमुख हैं एक आदर्श नहीं है? और जब अकबर भिन्न भिन्न धर्मों के प्रतिनिधियों को अपने दर्बार में आमन्त्रित करता था और धार्मिक वादविवाद करता था, तो क्या उस समय सचमुच ही वह एक सर्वधर्मपरिषद्, जो अपने ढंग की पहली चीज थी, नहीं कर रहा था?

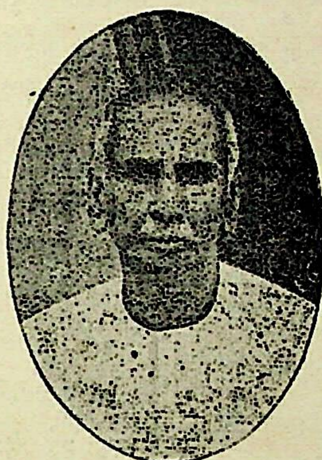
किंतु केवल अकबर ही भारतवर्ष का ऐसा सम्राट् नहीं था जिस ने वैज्ञानिक भावना से धर्मों का अध्ययन किया हो। उस के बहुत पहले एक बौद्धसम्राट् अशोक हुआ था जो मौर्यवंश का था। उस ने बहुत से उपदेशात्मक लेख निकाले थे जो पत्थरों की चट्टानों पर खोद दिये जाने के कारण अब भी हमारे लिए सुरक्षित हैं। उस ने धर्मों की मूल एकता को देख लिया था और 'संयम' तथा 'भावशुद्धि' दो शब्दों में उसे प्रकट किया था। किंतु उस का कथन है कि लोग भिन्न भिन्न रुचियों के होते हैं और भिन्न भिन्न वस्तुओं से प्रेम करते हैं। वे अपने संप्रदाय के प्रति अत्यधिक उदारता और दृढ भक्ति का प्रदर्शन कर सकते

हैं, किंतु संयम और भावशुद्धि का नहीं। इसी के परिणामस्वरूप सांप्रदायिक विरोध उत्पन्न हो जाता है। इसी लिए वह अपनी प्रजा को आवश्यकता के बिना ही अपने अपने संप्रदायों की प्रशंसा और दूसरों के संप्रदायों की निन्दा करने से रोकने का उपदेश देता है। किंतु इस के विपरीत वह उस को दूसरे संप्रदायों का उन सभी विषयों में आदर करने का उपदेश देता है जिन में वे आदर के योग्य हैं। अतः मानवजाति के लिए उस की सलाह यह है कि "परस्पर एक दूसरे के धर्म की बातों को सुनो और सुनने की इच्छा रखो।" अशोक का कहना है कि इस प्रकार के कार्य का परिणाम यह होगा कि सभी संप्रदाय 'बहुश्रुत' हो जायँगे अर्थात् धर्म के संबन्ध में उन्हें बहुत कुछ ज्ञान और जानकारी प्राप्त हो जायगी। वे 'कयनागम' भी हो जायँगे अर्थात् संसार की भलाई करने लगेंगे। आगे चलकर वह और भी कहता है कि इस प्रकार 'आत्मपासंदवधि' आर्थात् स्वयं अपने संप्रदाय की उन्नति तथा 'धम्मासदीपन' अर्थात् धर्म का प्रकाश भी हो जायगा। ठीक यही उद्देश्य सर्वधर्मपरिषद् का भी है अर्थात् (१) प्रथम तो शान्त चित्त से तथा वैज्ञानिक दृष्टि से दूसरे धर्मों का अध्ययन करके सब धर्मों के अनुयायी बहुश्रुत हो जायँ, और (२) दूसरे धर्मों से मानवजाति की भलाई की वृद्धि हो। सर्वधर्मपरिषद् (Parliament of Religions) अथवा विश्व के फेलोशिप आव फेद्स (World Fellowship of Faiths) की प्रत्येक बैठक से पहला उद्देश्य तो निश्चित रूप से क्रमशः पूरा होता जाता है, किंतु दूसरा उद्देश्य कितना पूरा हो रहा है, यह बात कुछ संदेहास्पद है। कल्पना कीजिए कि अशोक और अकबर पुनः जीवित हो गये हैं और वे एक हवाई जहाज पर चढ़ाकर समस्त यूरोप के ऊपर ले जाये जाते हैं, तो उन के मन की क्या दशा होगी ? निस्संदेह उन के मन उस अद्भुत शक्ति को देखकर आश्चर्य से भर जायँगे जो मनुष्य ने विज्ञान के द्वारा प्रकृति पर प्राप्त कर ली है और जिस की सहायता से देश और काल दोनों का संहार कर दिया है। किंतु उस समय उन के भाव क्या होंगे, जब वे स्वयं अपनी आँखों से ड्रेडनाट, सबमैरीनें, टारपीडो, माइनें, लंबे निशानेवाली बंदूकें, मशीनगनें, टैंक, घातक गैसें और जेपलिनें इत्यादि देखेंगे ? निस्संदेह सर्वधर्मपरिषद् ने भिन्न धर्मों की दृष्टियों का बहुत प्रचार किया है जिस से कि पचास वर्ष पहले की अपेक्षा उन के संबन्ध में अब हम अधिक ज्ञान रखते हैं। इस लिए सब डेलीगेटों और प्रतिनिधियों से जो इस परिषद् में संमिलित हैं, मेरा नम्र निवेदन है कि आप लोगों को उस तीसरे उद्देश्य को भी जो सब से पहली सर्वधर्मपरिषद् ने सन् १८९३ ई० में बताया था, ध्यान में रखना चाहिए। वह उद्देश्य यह है कि "स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की प्राप्ति की आशा से पृथिवी भर के राष्ट्रों में अधिक मित्रतापूर्ण भ्रातृभाव को लाना।" जिस दिन हम लोग पहले पहल इकट्ठा हुए थे उसी दिन महात्मा गांधी का एक संदेश पढ़ा गया था। वह इस प्रकार था—

"मैं पार्लामेंट के लिए सफलता चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि यह कुछ रचनात्मक कार्य कर सके।"

हमें यह देखना चाहिए कि क्या हम लोग रचनात्मक कार्य का कोई मार्ग बता सकते हैं ? हमें यह आशा करनी चाहिए कि यहाँ एकत्रित होनेवाले ऋषि और महर्षि लोग जो इस परिषद् को सफल बना रहे हैं, सर्वधर्मपरिषद् के तीसरे उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कुछ न कुछ करेंगे।

(१०) महामहोपाध्याय प्रो० प्रमथनाथजी तर्कभूषण का भाषण



(म० म० प्रो० प्रमथनाथजी तर्कभूषण)

गीताधर्म के जुलाई के अङ्क में पृष्ठ १६५१ पर पढ़िए।

(११) श्रीमती सरोजिनी नायडू

(हैदराबाद और बंबई)

शनिवार ६ मार्च—अपराह्निक अधिवेशन

देवियो और सज्जनो,

इस समय मेरा विचार कोई भाषण देने का नहीं है। आप लोग भाषणों से बहुत ऊब गये होंगे, किंतु बैठक के अन्त में शायद मुझे दो एक शब्द कहने पड़ेंगे। मैं केवल आप लोगों का अभिवादन करती हूँ तथा आप लोगों को और इस परिषद् के संयोजकों को यह समझने के लिए कि मैं एक पूरे अधिवेशन की कार्रवाइयों का संचालन करने के योग्य हूँ; धन्यवाद देती हूँ। जैसा कि मैंने किसी दूसरे दिन कहा था, मैं न तो पुरोहित हूँ, न दार्शनिक हूँ और न विदुषी ही हूँ, वरन् मैं केवल इधर उधर घूमनेवाली विनम्र कवयित्री हूँ और यदि इस बात का संबन्ध ऐसे व्यक्ति से है जो उन बड़े लोगों के, जो कि विद्वान् हैं तथा मतों, सिद्धान्तों और दर्शनशास्त्र की बातों की जानकारी में दक्ष हैं, बीच में बैठता है, तो मैं उस बड़ी जगह पर होने में अपना बड़ा आदर समझती हूँ। अब मैं उन लोगों को बुलाऊँगी जो सचमुच छपे हुए कार्यक्रम में हैं और जो मेरे समान पिछलगे

नहीं हैं कि वे आकर छपी हुई कार्रवाइयों को करें। सर्वप्रथम प्रो० सरकार एक घोषणा करेंगे और उस के बाद संदेश, भाषण और लेख पढ़े जायँगे।

कार्यक्रम के समाप्त हो जाने के बाद श्रीमती सरोजिनी नायडू ने अपने अन्त के भाषण में कहा:—

मैं ने एक मिनट के लिए बोलने का वादा किया था। आप लोगों ने बहुत से धर्मों, धर्म के संशोधनों, मूल धर्मों और कभी कभी धर्मों को ललकारनेवाली बातों के संबन्ध में बहुत से भाषण सुने हैं। यह तो उन लोगों का काम है जो अपने धर्मों के



(श्रीमती सरोजिनी नायडू)

विश्लेषण में अथवा अपने मतों और विश्वासों के संश्लेपण में दक्ष हैं। मेरे समान एक व्यक्ति, जिस का कोई मत नहीं है, जो किसी मत का अनुयायी नहीं है और जो समस्त मानवजाति के अंतिरिक्त और किसी मार्ग में आगे बढ़ने का साहस नहीं करता, के लिए आप से ऐसी कोई बात नहीं कहनी है जो अभी तक न कही जा चुकी हो। अन्तिम व्याख्यानदाता ने जो मेरे ही समान बंबई के एक नागरिक होने का दावा करते हैं, आखिरी बात को बड़े शानदार ढंग से कहा है। यह सर्वधर्मपरिषद् यह पता लगाने के लिए नहीं इकट्ठा हुई है कि एक धर्म से दूसरे धर्म में क्या भेद है, वरन् यह उन में संबन्ध स्थापित करनेवाली गम्भीर एकता का पता लगाने के लिए इकट्ठा हुई है। उद्गम, मूल और पृथिवी की गहराई के भीतर से पानी निकलता है, किंतु वह बहुत सी धाराओं, नदियों और सहायक नदियों में चला जाता है। पृथिवी के गर्भ से अनेक बीजों को जन्म देनेवाला एक बीज छोटे से वृक्ष के रूप में निकलता है और वह वृक्ष बढ़ता जाता है तथा शाखाएँ फैलती जाती हैं। कुछ शाखाएँ नीचे की ओर झुक जाती हैं और कुछ ऊपर चली जाती हैं, कुछ घूम जाती हैं और कुछ सीधी चली जाती हैं। नीचे की ओर झुकी हुई और थके हुए लोगों को आश्रय देनेवाली तथा ऊपर की ओर बढ़नेवाली सभी शाखाओं का पोषण उसी एक जड़ से होता है जो पृथिवी के भीतर से निकलती है। किंतु क्या कोई शाखा यह कहेगी कि मैं भिन्न हूँ ? वसन्तऋतु में सभी में एक सी कलियाँ और एक सी कोंपलें निकलती हैं, किंतु वसन्तऋतु भी सीधी शाखा से यह कहकर उन में भेद नहीं रखती है कि "देखो, मैं ने अपना सौन्दर्य तुम को दिया है, दूसरी शाखाओं को नहीं दिया है।" और इसी से हम कहते हैं कि सभी धर्म और मत एक ही उद्गम से निकलते हैं, और वह उद्गम है मानवजाति की आवश्यकता। मैं यह नहीं कहती कि यह ईश्वर से आती है। मैं तो यह कहती हूँ कि यह हमारे लिए ईश्वर की आवश्यकता से आती है। मैं यह नहीं कहती हूँ कि ईश्वर ने मनुष्य को उत्पन्न किया है। मैं कहती हूँ कि मनुष्य अत्यधिक आवश्यकता के वशीभूत होकर नित्यप्रति ईश्वर को उत्पन्न करता है और बारंबार उत्पन्न करता है। आखिरकार सर्वोच्च तत्त्व के हमारे अनुभव के अवि-

रिक्त ईश्वर है ही क्या ? सौन्दर्य, सत्य, प्रेम, बुद्धिमत्ता और साहस की हमारी आवश्यकताओं के मूर्तरूप के अतिरिक्त ईश्वर और क्या है ?

सर जगदीशचन्द्र के बगीचे में पत्थर का बना हुआ एक खाली मन्दिर है। जब मैं (कलकत्ता) विश्वविद्यालय में कमला लेक्चर (Kamala Lectures) दे रही थी उसी बीच में एक दिन, यह बात अन्तिम दिन की है, मैं उन के साथ घूमती हुई उन के बगीचे में गई। उन्होंने मुझ से कहा, "क्या आप को आज के भाषण का विषय मिल गया है ?"

मैं ने उत्तर दिया, "नहीं।"

तब उन्होंने कहा कि, "यहाँ पर आप को अपने भाषण का विषय मिल जायगा।"

मैं उन के साथ घूमती रही और चिड़ियों, पेड़ों और प्रतिमाओं को देखती रही। अन्त में मैं उस खाली मन्दिर के सामने जा खड़ी हुई। उस समय उन्होंने कहा—"हे कवि, क्या आप को अपना संदेश मिल गया है ?"

मैं ने उत्तर दिया, "हाँ मिल गया है।" यह खाली मन्दिर है जिस में कोई मूर्ति नहीं है। क्यों, खाली मन्दिर में प्रत्येक पुजारी को यह ज्ञान प्राप्त हो जायगा कि मैं स्वयं अपनी ही जीवात्मा के प्रतिबिम्ब में ईश्वर को उत्पन्न करता हूँ ? संसार के सब बड़े बड़े संतों और धर्मोपदेशकों का विश्व के लिए यही संदेश है और यही संदेश श्री रामकृष्ण का था। उन के लिए मन्दिर सदैव खाली रहता था, क्योंकि वह सदैव तैयार रहता था। वह उन के देवता को सदैव रखने के लिए तैयार रहता था। इस बात की कोई पर्वाह न थी कि वे एक क्षण के लिए मुसलमान, ईसाई, कनफ्यूसियनधर्मानुयायी, पारसी, सिक्ख अथवा अन्य किसी धर्मावलम्बी की आत्मा में प्रवेश कर जाते थे। वे कहते थे कि 'यहाँ मानवजाति का एक मन्दिर है और मानवजाति को एक ईश्वर अवश्य चाहिए। मुझे वह कहाँ मिलेगा ? क्या मैं उसे अपने परिमित व्यक्तिगत अनुभव के अंदर उत्पन्न करूँगा ? अथवा ईश्वर इतना असीम और विभिन्न होगा कि मैं उसे असीम के प्रतिबिम्ब में खोजूँगा, जिस प्रकार कि वह अपनी संतानों के सामने अरब के रेगिस्तानों में तथा बहुत से देशों के पर्वतशिखरों, गुफाओं और जंगलों में प्रकट होता है ?' और श्री रामकृष्ण ने हम को यह शिक्षा दी है कि मन्दिर खाली रहता है, क्योंकि केवल प्रेम ही ईश्वर का एक प्रतिबिम्ब उत्पन्न कर सकता है और उस प्रेम से तुम परिमित नहीं हो जाते, वरन् तुम अनेक नामों से ईश्वर की पूजा करनेवाली विशाल मानवजाति के एक अङ्ग बन जाते हो। चाहे तुम अल्लाहो अकबर कहो या पारसियों के अग्निमन्दिरों के सामने प्रणाम करो; ईसाइयों के क्रास के सामने झुको या गुरुद्वारा में ग्रन्थसाहब के पास जाओ, तुम सब में एकता का अनुभव करोगे। और तुम यह भी अनुभव करोगे कि तुम्हारी सहानुभूति, समझ और ग्रहणशक्ति की तत्परता के सीमित हो जाने के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति तुम्हारी मानवता की सीमा नहीं निर्धारित कर सकता है। केवल यही एक संदेश मैं तुम्हें दे सकती हूँ, क्योंकि यही एक संदेश मेरे पिता ने धर्म के रूप में मुझे सिखाया था। अपने लिए मैं ने केवल यही एक धर्म जिस की पुष्टि लड़कपन की मेरी शिक्षाओं से होती है, पाया है। एक दिन इतनी अधिक विभिन्नताओं के बीच पाई जानेवाली इस एकता के संबन्ध में विचार करती हुई मैं मुसलमानी शहर हैदराबाद के अपने मकान की छत पर खड़ी हुई थी कि

अकस्मात् अपने घर के पीछे मैं ने प्रार्थना के लिए पुकार की आवाज सुनी और लगभग उसी समय मैं ने पास के ही एक हिंदुओं के मन्दिर के घंटे के बजने का शब्द सुना। और वहीं पर जोरोआस्टर का भी एक मन्दिर था जहाँ पर हर समय आग जलती रहती है और जो मेरे पास से बहुत दूरी पर न था। उस मन्दिर की आग जहाजों पर पारसियों के भारतवर्ष में आने के समय से अब तक एक क्षण के लिए भी नहीं बुझी है। पारसी लोग जहाजों पर लकड़ी के जलते हुए लट्ठे लाये थे और वही आग अग्निमन्दिरों में रख दी गई थी। वह कभी भी बुझने नहीं पाती है। और अकस्मात् मेरे मन में यह बात आई कि यह मेरा बड़ा सौभाग्य है कि मैं ऐसे शहर में रहती हूँ जहाँ पर मन्दिर, मसजिद और अग्निमन्दिर पास ही पास हैं और इतने अधिक निकट एवं अपनी उपासना में इतने अधिक मिले जुले हैं। और मैं ने सायंकालीन प्रार्थना का एक छोटा सा गीत जो सायंकालीन प्रार्थना के लिए एक पुकार है, बना डाला। मैं अपने ढंग और अपने स्वस्तिवाक्य के रूप में उसी प्रार्थना से (अपना कथन) समाप्त करूँगी।

अल्लाहो अकबर............

................नारायण।

---

(१२) मैडम ग्वीराल्डीज*

(ब्यूनस एरीज, अर्जेंटाइना [द० अमेरिका])

रविवार, ७ मार्च—प्रातःकालीन अधिवेशन

मित्रो,

मैं अपने लिए यह बड़े आदर की बात समझती हूँ कि आप ने मुझ से इस महती और महत्त्वपूर्ण सभा की सभानेत्री का आसन ग्रहण करने के लिए कहा है। मैं इस बात का अनुभव करती हूँ कि मुझ में आप के चुनाव के उपयुक्त बनने की योग्यता नहीं है और जो प्रशंसा आप मेरी कर रहे हैं वह वास्तव में मेरे उस सुन्दर देश की है जिस की मैं एक अति विनम्र प्रतिनिधि हूँ।

यह बात कुछ असंभव सी जान पड़ती है कि हम लोग भारतवर्ष से जो सब से बढ़कर धर्म का देश है, धर्म के संबन्ध में कुछ कहने आयें। हम आप से कोई ऐसी बात नहीं कह सकते जिसे आप शताब्दियों पहले से न जानते हों। किंतु मैं आप से उस थोड़े से अनुभव के संबन्ध में जो आप के ज्ञान ने विश्व के नवीन राष्ट्रों में से एक राष्ट्र के सद्भावनापूर्ण एक जनसमूह को दिया है, कुछ कह सकती हूँ।

मैं यहाँ पर अच्छी तरह से वही बात कह सकती हूँ जो मैं ने गत १६ सितंबर को अर्जेंटाइन रिपब्लिक की राजधानी ब्यूनस एरीज में श्री रामकृष्ण शताब्दी के उत्सव के अवसर पर कही थी। उस समय श्रीमती सोफिया वाडिया और डाक्टर कालिदास

* आप ने अपना भाषण स्पैनिश भाषा में दिया था।

नाग सभापति के पद पर थे। वे लोग उस समय हमारे देश में होनेवाले पी० ई० एन० क्लब के अधिवेशन में भारतवर्ष के प्रतिनिधि होकर गये थे। मैं रामकृष्ण मिशन के हमारे परम प्रिय स्वामी विजयानन्दजी के संबन्ध में बोल रही थी। हमारी प्रार्थना के कारण वे वहाँ पर सर्वकालीन सत्य को धारण करनेवाले वेदान्त के उस अद्भुत उपहार को देने के लिए गये थे जो उस का उपदेश देनेवाले महर्षियों द्वारा प्रत्यक्ष देखा गया है और जो अपने पूर्ण तर्क से उन लोगों के मस्तिष्क और हृदय को संतुष्ट कर देता



(मैडम ग्वीराल्डीज)

है, जिन्हें उस के जानने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

पृथ्वी भर की सभी जातियों में अपने अपने पवित्र धर्मग्रन्थ पाये जाते हैं। वे सीधे परमात्मा से प्राप्त होनेवाले उस प्रकटीकरण का उपदेश देते हैं जो उन के बड़े से बड़े आध्यात्मिक व्यक्तियों द्वारा और ऐसे व्यक्तियों द्वारा जिन्होंने उस पवित्र संसर्ग के योग्य बनने के लिए अपनेपन से परे और ऊपर हो जाने का प्रयत्न किया था। उन धर्मग्रन्थों में वह सत्य पाया जाता है जो अपने तत्त्वरूप में सदा एक ही रहता है तथा मनुष्य के लिए सदा पूर्णता का मार्ग दिखाता रहता है।

ऐसे सभी धर्मग्रन्थ कुछ ऐसे व्यक्तियों के जीवन और उपदेशों का वर्णन करते हैं जिन के रूप में परमात्मा ने, जीते जागते प्रमाण के द्वारा किसी जाति को यह दिखा देने के लिए कि प्रत्येक मनुष्य उन उपदेशों को काम में ला सकता है, अवतार लिया है।

अन्वेषक को वे सभी धर्मग्रन्थ जो वितरण के नवीन ढंगों के द्वारा सब की पहुँच में ला दिये गये हैं, प्राप्त हो जाते हैं, किंतु इस से मानवजाति का सुधार नहीं हो गया है। वह तो सभी कालों में एक से भावों के ही वशीभूत रही है। उन भावों ने उन दैवी उपदेशों को जो ईश्वर की असीम दया से समयानुकूल बनाकर भिन्न भिन्न रूपों में बार बार दुहराये गये थे, छिपा लिया है और उन्हें गलत रास्ते में लगा दिया है।

भगवद्गीता में श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि यद्यपि मैं अनादि और अनन्त हूँ, तथापि जब जब धर्म का पीड़न होता है और अधर्म की वृद्धि होती है तब तब प्रत्येक युग में साधुओं की रक्षा के लिए, कुकर्मियों के विनाश के लिए और धर्म को संस्थापन करने के लिए अपनी दिव्य शक्ति के द्वारा अवतार लेता हूँ।

बहुत शताब्दियों के बाद उसी भारतभूमि में बंगाल के एक साधारण झोपड़े में श्री रामकृष्ण ने जन्म लिया था। वे मनुष्यरूप में ईश्वर थे और उन का उद्देश्य संसार के संमुख उस कथन की सत्यता को सिद्ध कर देना तथा आश्चर्यजनक तर्क से युक्त उस वास्तविकता को जीवन में परिणत कर देना था।

लोग चाहे जिस ढंग से ईश्वर के पास आते हैं और चाहे जिस रूप में उस की पूजा करते हैं, पर वह तो सभी को अपनाता है। मैं कहती हूँ कि यह तो एक बड़ा भारी तर्क है और वह इस लिए है कि चूँकि ईश्वर—सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी और सर्वज्ञ स्वामी हमारे पिता और हमें उत्पन्न करनेवाले हैं, उन्होंने सब मनुष्यों को समान रूप में ही बनाया है और हमारे लिए पूजा का कोई विशेष रूप नहीं निश्चित कर दिया है। महत्त्वपूर्ण बात तो केवल यह है कि हमें सच्चे मन से तथा आत्मसमर्पण करते हुए उन की सेवा करनी चाहिए।

किंतु मानवजाति को उस सत्य का अनुभव कराने के लिए उन्होंने पुनः जन्म लेकर मानवशरीर में निवास किया। और उस शरीर के द्वारा उन्होंने पूजा के सभी ढंगों का ग्रहण किया और उन में से प्रत्येक के द्वारा अपने ही तत्त्वरूप महासागर में लीन होकर परमानन्द प्राप्त किया।

श्री रामकृष्ण के लौकिक जीवन की कहानी बहुत प्रभावोत्पादक है। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश संसार के बड़े बड़े धर्मों और तमाम संप्रदायों के कठिन अभ्यासों को उन में बताये हुए कठोर नियन्त्रणों के साथ करने में बिताया था। और उन में से बिना किसी अपवाद के प्रत्येक अभ्यास के द्वारा उन्होंने उसी परिणाम, उसी परमानन्द और सर्वोच्च समाधि को प्राप्त किया था। इसी से तथ्यों के पूर्ण अनुभव के कारण वे समस्त मानवजाति के लिए अपना यह सार्वलौकिक संदेश दे सके थे कि "सभी धर्म सच्चे हैं।" यदि साधक सच्चा और शुद्ध है—और यदि हम ईश्वर के पास तक पहुँचना चाहते हैं, तो ये गुण अनिवार्य हैं—तो इन धर्मों में से प्रत्येक धर्म ईश्वर तक पहुँचा देनेवाला मार्ग बन जायगा।

उन के संदेश का, जिस रूप में हम उसे उन के जीवन और शब्दों में पढ़ते हैं, यही मुख्य अर्थ है।

चूँकि निकट भविष्य में संसार के संमुख उपस्थित होनेवाली कठिन परीक्षा को वे जानते थे। इस लिए परमदयालु (परमात्मा) ने आकर उन्हें यह सिखा दिया था कि यद्यपि ईश्वर के अनेक नाम और रूप हैं, तथापि तात्त्विक रूप में एक होने के कारण वह एक ही है। और उन्होंने अपने पूर्ववर्ती महापुरुष ईसामसीह के उस दिव्य उपदेश को पूरा किया था जो उन्होंने मनुष्यों के लिए सार्वलौकिक प्रेम के अपने दिव्य संदेश को अपने अति सुन्दर सूत्र के रूप में रखा था कि 'स्वयं अपने समान ही अपने पड़ोसी को प्यार करो'। उन शब्दों के द्वारा उन्होंने सब जातियों, वर्गों अथवा धर्मों के सब मनुष्यों को, प्रत्येक व्यक्ति में एक ही गुण मानकर उन में से सब को समान महत्त्व देते हुए, परस्पर एक दूसरे का भाई बना दिया था।

यदि वे सभी लोग जो अपने को अभिमान के साथ ईसाई कहते हैं, हमारे दिव्य प्रभु के उस सीधे सादे उपदेश को मानने लगें, तो हमारे बीच के सब झंझट और लड़ाई झगड़े मिट जायँ और हमारे हृदयों में शान्ति का राज्य हो जाय।

पश्चिम के वर्तमान समय के लोग प्रेम के उस मुख्य उपदेश को भूलकर जो बिना थके हुए बारंबार प्रभु (ईसा) ने अपने शिष्यों को दिया था, उस उपदेश की उपेक्षा करने के लिए व्यर्थ के बहाने करते हैं। इसी प्रकार धीरे धीरे हम निराशापूर्ण स्थिति—घृणा, पागलपन और मृत्यु के इस भयंकर गड़बड़घोटाले में आ पहुँचे हैं।

यद्यपि वर्तमानकालीन परिस्थिति के बड़े विकासों ने सदैव हम को एकता का मार्ग दिखाया है, फिर भी

हम पृथक् करनेवाले और भेद उत्पन्न करनेवाले प्रत्येक बहाने से लाभ उठाते रहे हैं।

विज्ञान इस बात को स्वीकार करने लगा है कि जब हम प्रकृति के गम्भीर अध्ययन में लीन हो जाते हैं तब हम प्रकृति की आत्मा, उस एक वस्तु तक जा पहुँचते हैं। और इसी प्रकार जब हम उस आत्मा के गम्भीर अध्ययन में लीन हो जाते हैं तब हम सार पदार्थ—आत्मा के विषय—उसी एक वस्तु तक पहुँच जाते हैं।

स्थानों की दूरी का क्रमशः लुप्त हो जाना मनुष्यों की एकता की सूचना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, जिस से कि वे पहले की अपेक्षा एक दूसरे को अधिक अच्छी तरह जानकर परस्पर एक दूसरे से प्रेम कर सकें और एक दूसरे को समझ सकें।

ऐसी ही ईश्वर की, उस एक ईश्वर की जिसे लोग अनेक नामों से पुकारते हैं, इच्छा है। किंतु हम प्रेम के उपदेश को भूल जाते हैं, हम यह भूल जाते हैं कि हमें वे देनें क्यों और कहाँ से मिली हैं, और हम उन का प्रयोग स्वयं केवल अपने विनाश के लिए करते हैं।

अनेक शताब्दियों तक धर्म मनुष्यों के बीच झगड़ों और युद्धों के कारण रहे हैं। यही कारण है कि जिस से सार्वलौकिक ज्ञान के संदेश को लेकर श्री रामकृष्ण का अभी कुछ ही दिन हुए इस अनावश्यक और अनुचित झगड़ों के समय में आने का इतना अधिक महत्त्व है।

स्वतन्त्रता और सत्कार का देश हमारा अमेरिका उस संदेश के प्रति उदासीन नहीं रह सकता था जिस का उद्देश्य पवित्र भावना के साथ मनुष्यमात्र को एक में मिला देना है। इस संदेश के लिए कोई सीमा, रुकावट अथवा विभाग नहीं है। कोई धर्म न तो इस का परिवर्तन ही कर सकता है और न इसे दूषित कर सकता है। यह प्रत्येक व्यक्ति को केवल अभ्यास करने का उपदेश देता है। इस संदेश का आदर्श यह है कि प्रत्येक धर्म का आदर दूसरे धर्मों के अनुयायियों के द्वारा किया जाय तथा प्रत्येक भक्त अपने धर्म का सर्वोत्तम व्याख्याता बनने तथा दृढ, शुद्ध और सच्चा होने का प्रयत्न करे।

यही कारण है जिस से हम लोग यहाँ पर उस नगर में, जहाँ रामकृष्ण रहते थे, उन की शताब्दी मनाने के लिए एकत्रित हुए हैं। और पूर्व तथा पश्चिम के सभी प्रधान नगरों में सभी धर्मों के बहुत से सच्चे अन्वेषक अब इस बात का अनुभव करते हैं कि वे सभी धर्मों का समान रूप से आदर करते थे और सभी का उपदेश देते थे।

उन्हीं की असीम कृपा से मैं आज आप लोगों के बीच में हूँ। मेरी प्रार्थना है कि वे मुझे वह पर्याप्त शक्ति प्रदान करें जिस से मेरी यह उत्कट अभिलाषा पूरी हो जाय कि मैं उन के दिव्य अवतारों, संतों और ऋषियों के परमधन्य देश के मार्ग का अनुसरण कर सकूँ।

श्री रामकृष्ण परमहंस को सुयश प्राप्त हो, यह मेरी प्रार्थना है।

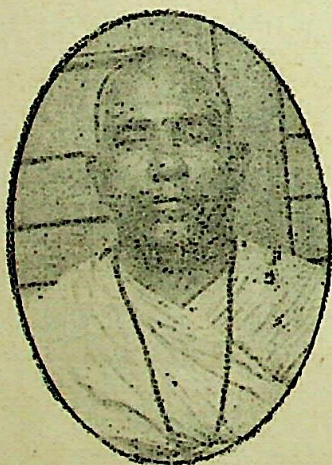


(१३) बनारस के मण्डलेश्वर स्वामी भागवतानन्द गिरि

रविवार, ७ मार्च—अपराह्णिक अधिवेशन

महिलाओ और सज्जनों

वे महात्मा जिन की शताब्दी इस सर्वधर्मपरिषद् के द्वारा मनाई जा रही है, संन्यासियों में सर्वश्रेष्ठ थे। केवल इतना ही नहीं, वरन् वर्तमान भारत ने जिन महात्माओं को उत्पन्न किया है उन में से वे



(श्री स्वामी भागवतानन्द गिरि)

ही सब से बड़े थे। उन के उपदेशों ने विश्व को आच्छादित करनेवाले अज्ञान के अन्धकार को दूर करके उस में प्रकाश फैलाया है। वे गीता के अनुसार परमात्मा के अवतार थे, क्योंकि गीता में कहा गया है कि "जहाँ तुम्हें विभूति दिखाई पड़ती है"[१] इत्यादि। उपनिषदों की इस शिक्षा के अनुसार कि "वास्तव में यह सब कुछ ब्रह्म ही है"[२] वे स्वयं ब्रह्म ही थे। इस के संबन्ध में कुछ भी संदेह नहीं है।

उन्होंने हमें संसार में रहने की, किंतु सांसारिक न बन जाने की शिक्षा दी है। "नाव यदि पानी में है, तो कोई हानि नहीं है, किंतु तुम्हें पानी को नाव के भीतर न जाने देना चाहिए।" इसी प्रकार संसार में रहते हुए भी विलासिता की सामग्रियों के सहित यदि हम संसार को अपने भीतर नहीं घुसने देते तो कोई हानि नहीं है। हमें अनासक्त होकर रहना चाहिए, क्योंकि आसक्ति से कामनाओं की और कामनाओं से बन्धन की प्राप्ति होती है। कामनाओं का कोई अन्त नहीं है, और हम में से प्रत्येक व्यक्ति निश्चयपूर्वक इस बात को जानता है कि परिमित पदार्थों में सच्चा आनन्द नहीं है। सच्चा आनन्द तो असीम में ही है। इसी लिए श्री रामकृष्ण प्रत्येक व्यक्ति से पहले ईश्वर का अनुभव

---

१. यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्॥
अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥
(गीता १०—४१, ४२)

२. सर्वं खल्विदं ब्रह्म।

कर लेने के लिए कहते थे। यही धर्मग्रन्थों की भी आज्ञा है जो हमें यह बताते हैं कि हम लोग इस संसार में इन्द्रियजन्य भोगों का सुख प्राप्त करने के लिए नहीं, वरन् पूर्णता प्राप्त करने के लिए आये हैं।

ये महात्मा सब धर्मों और मतों में सुसंबन्ध की स्थापना करनेवाले थे और इस प्रकार का संश्लेषण केवल ऐसे ही व्यक्ति के लिए संभव है जिस ने परम तत्त्व को प्राप्त कर लिया है, जिस ने प्रत्येक वस्तु में ईश्वर का दर्शन कर लिया है। इसी से उन का यह उपदेश है कि मनुष्य की सेवा करना ईश्वर की ही सेवा करना है, क्योंकि जीव शिव है। वास्तव में उन के संश्लेषण के संदेश में मानवजाति की सार्वदेशिक—सामाजिक, कर्तव्य संबन्धी, धार्मिक तथा आध्यात्मिक—उन्नति की पर्याप्त उद्देश्यशक्ति विद्यमान है। आज घृणा और लालच के कारण अनेक भेदों में विभक्त इस संसार में शान्ति और सुसंबन्ध की स्थापना करने के लिए इन महात्मा के उपदेशों से बढ़कर और कोई वस्तु समर्थ नहीं है।



(१४) डाक्टर एफ० बी० टाउसेक

(शेकोस्लोवैकिया के कलकत्तास्थित कांसल)

चन्द्रवार, ८ मार्च—प्रातःकालीन अधिवेशन

सर्वधर्मपरिषद् के अन्तिम दिन के अधिवेशन के सभापति का आसन ग्रहण करते हुए मैं केवल कुछ शब्द ही कहना चाहता हूँ। बहुत से महापुरुषों के भाषण, दर्शनशास्त्र और धर्म के गम्भीर अध्ययन तथा संदेश आप सुन चुके हैं। अपने देश का एक विनम्र सेवक मैं अपने को इस योग्य नहीं समझता कि ऐसे बड़े बड़े दार्शनिक और नैतिक महत्त्व के विषयों पर विचार करनेवाले इन प्रसिद्ध विचारकों में अपने को भी मान लूँ। यदि मैं आप के समय और धैर्य पर कुछ अधिकार रखने की स्वच्छन्दता करता हूँ, तो केवल इसी लिए कि जिस से मैं इस महती परिषद् की कार्रवाइयों के परिणामों पर एक दृष्टि डाल सकूँ।

हमें यह आशा करनी चाहिए कि इस परिषद् की कार्रवाइयों में जो विचार हमारे सामने रखे गये हैं उन से हमें भिन्न भिन्न धर्मों, राष्ट्रों और जातियों में परस्पर सद्भावों की वृद्धि करने में सहायता मिलेगी। हमें यह आशा करनी चाहिए कि परस्पर सद्भाव रखने की भावना से मानवजाति को सार्वलौकिक शान्ति की प्राप्ति होगी। शान्ति की स्थापना के प्रयत्न में शान्ति के प्रत्येक उत्तम कार्य का स्वागत करना चाहिए। यह अन्तिम प्रयत्न केवल संसार के ढंगों को ही नहीं बदलेगा, प्रत्युत मनुष्य की जीवात्मा को ही बदल देगा जिस से कि मनुष्य स्वतन्त्रतापूर्वक इस बात को समझने के योग्य हो जायँगे कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के बराबर है, संसार में प्रत्येक ईमानदार और शान्तिपूर्ण व्यक्ति के लिए स्थान है, प्रत्येक व्यक्ति शान्तिपूर्ण ढंग से अपने विचारों के अनुसार चल सकता है और इस बात की कोई

आवश्यकता नहीं है कि एक जाति अपने विचारों को दूसरी जाति पर लादे। स्वतन्त्रता का सत्य ही सर्वोच्च सत्य है। जीवात्मा और विज्ञान के संबन्ध में जो उच्चतम ज्ञान प्राप्त हुआ है उस में प्रत्येक व्यक्ति को भाग लेने का अधिकार है। प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति के फलों को प्राप्त करने का अधिकार है। यह उच्चतम आदर्श केवल शान्तिपूर्ण और आध्यात्मिक उपायों, मानवजाति की सेवा, आत्मत्याग और शिक्षा के ही द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

शान्ति के इस उत्तम लक्ष्य को रखनेवाले प्रत्येक



(डाक्टर एफ० बी० टाउसेक)

आन्दोलन का स्वयं एक पवित्र उद्देश्य होता है, और मानवजाति को एक नवीन जीवन के प्रभात के समान उस का स्वागत करना चाहिए। ऐसा आध्यात्मिक आन्दोलन अवश्य ही सार्वलौकिक होगा। प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म और अपनी शिष्टता के द्वारा शान्ति के इस भव्य कार्य की अवश्य सहायता करनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को अवश्य ही एक पूर्ण प्राणी बनना चाहिए जिस से कि वह ईर्ष्या और घृणा से रहित होकर स्वतन्त्रता और शान्ति के वास्तविक सत्य को और भी आगे बढ़ा सके।

यदि सर्वधर्मपरिषद् परस्पर सद्भाव रखने की भावना को उत्पन्न करने के अतिरिक्त और कुछ न भी कर सके, तो भी उस का उद्देश्य पूरा हो जायगा। मैं रवीन्द्रनाथ टैगोर के संदेश को भी एक बड़ी भारी प्राप्ति कहता हूँ। आदरणीय दिव्य धर्मोपदेशक के द्वारा दिये हुए इस संदेश ने मुझ पर सब से अधिक प्रभाव डाला है। मैं ने बार बार इसे पढ़ा है और मेरा यह प्रस्ताव है कि सभी भाषाओं में अनुवाद कराकर लाखों छोटी छोटी पुस्तिकाओं के रूप में विश्व भर में इस का वितरण किया जाना चाहिए। उन्होंने अपने को "केवल एक कवि, मनुष्यों और सृष्टि का एक प्रेमी" कहा है और इसी से हमें वास्तविक सत्य का पता लग जाता है। हमें यह आशा करनी चाहिए कि यह भाषण व्यर्थ न होगा।

श्री रामकृष्णशताब्दीसमिति उस महान् गुरु और दिव्य धर्मोपदेशक की जन्मशताब्दी को इस से बढ़कर और अच्छी तरह तथा और शानदार ढंग से नहीं मना सकती थी। उन के उपदेशों की प्रशंसा मुझ से अधिक योग्य वक्ताओं के द्वारा की जा चुकी है। मुझे आज इस बात का भी उल्लेख कर लेने दीजिए कि कल हमारा राष्ट्र तथा विश्व भर के विचारशील व्यक्ति सत्य के एक और दूसरे उपदेशक, दार्शनिक और राजनीतिविशारद हमारे प्रथम प्रेसिडेण्ट डा० टी० जी० मैसारिक के जन्म का वार्षिकोत्सव मना रहे थे। उन के सत्य के प्रेम ने उन्हें वास्तविकवाद के दार्शनिक सिद्धान्त का वर्णन करने तक पहुँचा दिया था। यह सिद्धान्त एक ऐसा पथप्रदर्शक सिद्धान्त बन गया है जिस के द्वारा हमारे देशवासियों को अभ्युत्थान खोज लेना चाहिए।

श्री रामकृष्णशताब्दीसमिति, उस के अध्यक्ष, उस के सभासद, उस के साधारण मन्त्री और विशेषतः बी० के० सरकार ने इस सर्वधर्मपरिषद् का आयोजन करके एक बड़ा भारी काम किया है। मैं उन की इस महती सफलता के लिए उन्हें बधाई देता हूँ।

(१५) प्रो० ए० बी० ध्रुव का भाषण



(प्रो० ए० बी० ध्रुव)

गीताधर्म के जुलाई के अङ्क में पृष्ठ १६६५ पर देखिए

संदेश और शुभकामनाएँ

जापान, चीन, फिलीपाइंस, स्ट्रेट्स सेटिलमेंट्स, अफगानिस्तान, ईराक, टर्की, यूगोस्लैविया, रूमानिया, आस्ट्रिया, हंगरी, जर्मनी, रूस, पौलैंड, स्विट्जरलैंड, वेलजियम, हालैंड, फ्रांस, इटली, ग्रेट ब्रिटेन, नार्वे, मिश्र, दक्षिण अफ्रीका, अमेरिका के यूनाइटेड स्टेटस आदि संसार के सभी भागों से विचारशील नेताओं ने अपनी शुभकामनाएँ भेजी थीं। भारतवर्ष में आसाम, बंगाल, बिहार, संयुक्त प्रान्त, दिल्ली, पंजाब, बंबई, मध्य प्रदेश, निजाम के राज्य, मद्रास, मैसूर, लंका, उड़ीसा और ब्रह्मदेश से जीवन के सभी क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करनेवाले व्यक्तियों ने अपनी अपनी शुभकामनाएँ भेजी थीं। सर्वधर्मपरिषद् के भिन्न भिन्न अधिवेशनों में पढ़े जाने के क्रम के अनुसार भेजनेवालों के नाम नीचे लिखे जाते हैं।

चन्द्रवार, १ मार्च।

लार्ड जेटलैंड—

भारतमन्त्री।

सर जान ऐंडर्सन—

बंगाल के गवर्नर।

महात्मा गांधी।

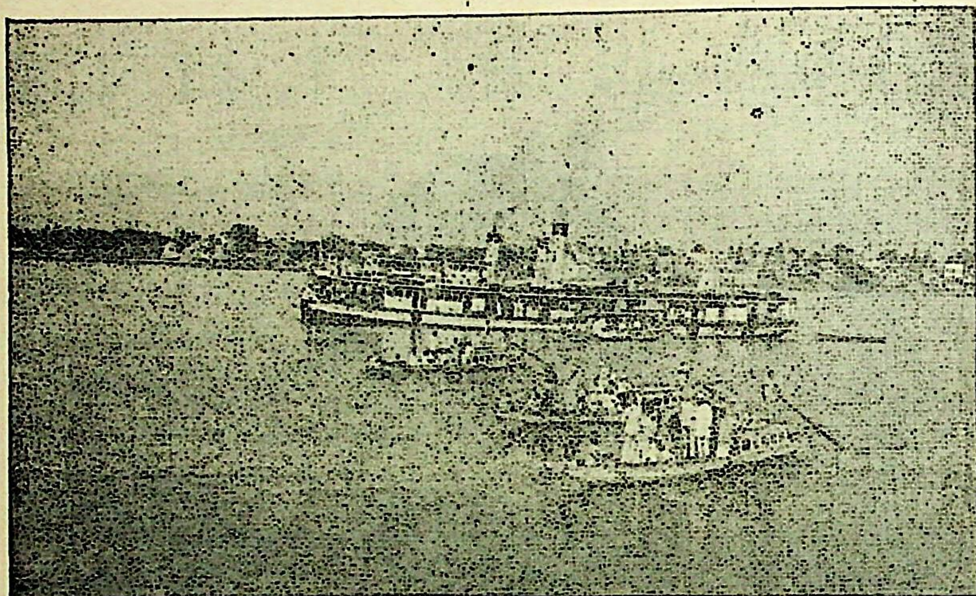
मङ्गलवार, २ मार्च—प्रातःकालीन अधिवेशन।

हिज इग्जाल्टेड हाईनेस—

हैदराबाद के निजाम।

कुमामोटो बुद्धिस्ट फेडरेशन—

बुक्क्योरेंगोकाई कुमामोटोशिबू।



सदस्यगण (डेलीगेट) जहाज से उतर रहे हैं—

वैरन प्रो० के वान ब्राकडोफ

कील विश्वविद्यालय (जर्मनी),

जर्मनी की सोसीटास हावीसियाना के प्रेसीडेंट।

स्पेन के प्रो० वाइकाउंट सैंताक्लैरा।

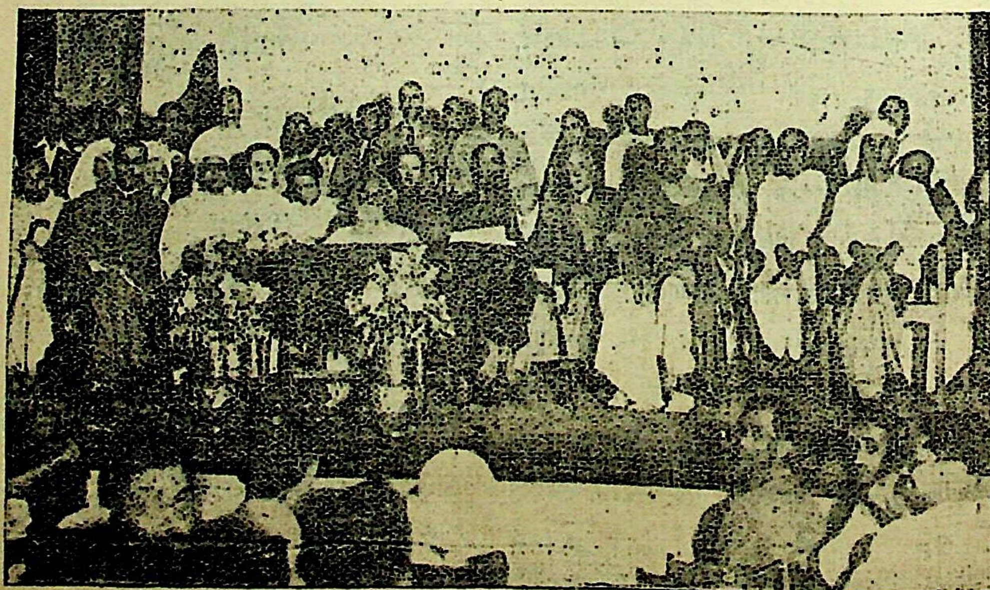
मङ्गलवार, २ मार्च—अपराह्णिक अधिवेशन।

मॉन० रोम्याँ रोलाँ

विलेन्यूवी, स्विटजरलैंड।

प्रो० जे० जे० वान स्कमिड

लिडेन वि० वि० (हालैंड)।



कलकत्ता विश्वविद्यालय में ३ मार्च बुधवार के अपराह्न की सभा में डा० रवीन्द्रनाथ टैगोर सभापति के आसन पर।

बुधवार, ३ मार्च—प्रातःकालीन अधिवेशन।

प्रो० लुई रेनो (पेरिस)।

मि० ए० वान स्टाक

स्कीवेनिनजेन, हेग (हालैंड)।

बुधवार ३ मार्च—सायंकालीन अधिवेशन।

प्रो० गियोरगियो डेल,

वेक्शिओ

फैकल्टी और जूरिसप्रूडेंस,

रोम वि० वि० (इटली)।

प्रो० जीन प्रजीलस्की

कालेज डी फ्रांस (पेरिस)।

गुरुवार, ४ मार्च—प्रातःकालीन अधिवेशन।

प्रो० जी० फ्राडेस्को राकोआसा

बूकारेस्ट वि० वि० (रूमानिया)।

लेडी रैशेल इजरा

(कलकत्ता)।

गुरुवार, ४ मार्च—अपराह्निक अधिवेशन

प्रो० जी० एक० ड्यूपराट

जिनीवा वि० वि०, जेनरल सेक्रेटरी फेडरेशन इंटरनेशनल डेस सोसाइटीज एट इंस्टीट्यूट्स डी सोशिओलाजी, पेरिस और जिनीवा।

सिनेटर ऐशिली लोरिया ट्यूरिन, इटली।

शुक्रवार, ५ मार्च—प्रातःकालीन अधिवेशन

प्रो० गोरैडो गिनी

डिमोग्रैफिस्ट तथा स्टैटिस्टीशियन

रोम वि० वि० (इटली)।

सी० एम० बीच

वर्ल्डमेडीटेशन ग्रूप, सरे के आयोजक सेक्रेटरी और संस्थापक।

शुक्रवार, ५ मार्च—अपराह्निक अधिवेशन।

प्रो० पी० सोरोकिन

हार्वर्ड वि० वि०, कैंब्रिज, मैसा०(यू०एस०ए०)।

एस० ऐंडो

जापान कलचरल फेडरेशन, टोकियो के जनरल सेक्रेटरी।

शनिवार, ६ मार्च—प्रातःकालीन अधिवेशन।

डा० वी० टी० विलियंस

कैलीफोर्निया वि० वि०, बर्कले, यू० एस० ए० के प्राच्य भाषाओं और साहित्य के प्रोफेसर।

प्रो० एस० ऐंगस

सेंट ऐंड्रयूज हाल, सिडनी (आस्ट्रेलिया)।

शनिवार, ६ मार्च—अपराह्निक अधिवेशन

प्रो० जे० एम० पेरिट्श

बेलग्रेड वि० वि० (यूगोस्लैविया) हेग (हालैंड) की एकाडेमी आव इंटरनेशनल ला के मेंबर।

प्रो० ट्राइअन हरसेनी

इंस्टीट्यूटल सोशल रोमन,

बूकारेस्ट (रूमानिया)।

प्रो० जी० ट्यूसो

इटालियन एकैडेमी (रोम) के मेंबर।

रविवार, ७ मार्च—प्रातःकालीन अधिवेशन

प्रो० डब्ल्यू० स्जैफर

रेक्टर, क्रैको वि० वि० (पोलैंड)।

प्रो० ई० ए० रास

विस्कूसिन वि० वि० (यू० एस० ए०) के सोशिओलाजी और ऐंथ्रोपोलाजी विभाग के चैयरमैन।

रविवार, ७ मार्च—अपराह्निक अधिवेशन

प्रो० रिचार्ड० सी० टर्नवाल्ड

बर्लिन वि० वि० (जर्मनी)।

मुहम्मद हसन काशानी यज्द,

ईरान।

चन्द्रवार, ८ मार्च—प्रातःकालीन अधिवेशन।

प्रो० हर्बर्ट जी० उड,
बर्मिंघम।

डा० एफ० थीरफेल्डर,
ड्यूट्शे एकैडेमी (जर्मनी एकैडेमी) म्यूनिच के सेक्रेटरी।

चन्द्रवार, ८ मार्च—अपराह्लिक अधिवेशन।

प्रो० ओटमर स्पान,
इंस्टीट्यूट आफ इकनामिक्स ऐंड सोशिओलाजी, वियना वि० वि० (आस्ट्रिया)।

प्रो० टान युवान शान,
साइनो इंडियन कलचरल सोसायटी, नानकिंग।

निम्नलिखित डेलीगेट अपने अपने देशों और संप्रदायों से शुभकामनाओं के संदेश लाये थे—

मि० न्गाक शेन रिनपोशी,
ताशी लामा के प्रधान मन्त्री (तिब्बत)।

प्रो० तान युवान शान (चीन)।

डा० पीटर बोइक (यू० एस० ए०)।

मैडेम प्रोफेसर हेलेन डी विलमन,
ग्राबोस्का (पोलैंड)।

डा० एच० गोट्ज (हालैंड)।

मि० यूसुफ अहमद बगदादी, (ईराक)।

मिस हेलेन मैरी बुलन्वाएस (द० अफ्रीका)।

मि० मांग ए मांग (ब्रह्मदेश)।

मि० जे० ए० जोजेफ (बंबई)।

मि० आर० अहमद (बंगाल के मुसलमान)।

प्रो० तुलसीदासकर (थियोसफिकल सोसायटी, कलकत्ता)।

सर फ्रांसिस यंगहस्बैंड (लंदन)।

मि० डी० एन० वाडिया (पारसी संप्रदाय)।

सर्दार जमायत सिंह (सिखजाति)।

डा० सोनपार (देवसमाज, लाहौर)।

स्वामी निर्वेदानन्द (रामकृष्णमठ, वेलूर)।

मि० देवप्रिय वलिसिंह (महाबोधि सोसायटी, कलकत्ता)।

स्वामी परमानन्द (वेदान्त सेंटर, बोस्टन, यू० एस० ए०)।

मि० एस० ऐमान (जेनरल सेक्रेटरी कलकत्ता, नेशनल कौंसिल आव यंग मैंस क्रिश्चियन ऐसोशियेशंस इन इंडिया, बर्मा और सीलोन)।

प्रो० विनयकुमार सरकार (इंटरनेशनल फेडरेशन आव द सोसायटीज ऐंड इंस्टीट्यूट्स आव साशिओलाजी, पेरिस और जिनीवा)।



गीता में ज्ञानयोग

(श्री स्वामी चिन्मयचैतन्य, श्री रामकृष्णकुटीर, अल्मोड़ा)

पहला अध्याय

अधिकारी आदि का निर्णय

(गताङ्क पृष्ठ १७४४ से आगे)

स्वर्गादि लोक से भ्रष्ट होने का और भी एक कारण है। वह यह है कि—

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥ ८॥

अहम्, हि, सर्वयज्ञानाम्, भोक्ता, च, प्रभुः, एव, च।
न, तु, माम्, अभिजानन्ति, तत्त्वेन, अतः, च्यवन्ति, ते॥
— ६।२४

भाषाटीका और अन्वय—हि (क्योंकि) अहम् (मैं) एव (ही) सर्वयज्ञानाम् (समस्त यज्ञों का) भोक्ता (भोग करनेवाला) च (और) प्रभुः (फल देनेवाला, स्वामी) च (भी) (हूँ)। तु (किंतु) ते (वे) माम् (अधियज्ञ भी मैं ही हूँ, इस तरह—मुझ—परमेश्वर को) तत्त्वेन (यथावत्—तत्त्व से) न (नहीं) अभिजानन्ति (जानते हैं), अतः (इस लिए) च्यवन्ति (च्युत होते हैं, गिर जाते हैं अर्थात् पुनः जन्म मरण को प्राप्त होते हैं)॥ ८॥

सिद्धान्तशिखरिणी (व्याख्या)—मैं ही, श्रुति और स्मृति में बतलाये गये समस्त यज्ञों का, देवतारूप से, भोक्ता हूँ और स्वामी भी। "अधियज्ञोऽहमेवात्र" इत्यादि श्लोक में भी यही बात कही गई है कि मैं ही यज्ञरूप हूँ। तैत्तिरीय श्रुति में भी लिखा है—"यज्ञो वै विष्णुः,—विष्णु ही यज्ञरूप हैं। गीता के "ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः" आदि में भी कहा गया है कि सब की आत्मा तथा अन्तर्यामी श्री भगवान् ही ब्रह्मरूप से कर्म, करण और कर्ता आदि में व्याप्त हैं। परंतु स्वर्गभोग को प्राप्त हुए अज्ञानी लोग इस प्रकार यथार्थ तत्त्व से—अभेदात्मबुद्धि से—मुझे नहीं जानते। इस लिए वे यज्ञों के फलों से गिर जाते हैं अर्थात् उन का पुनः पतन (मृत्युलोक में जन्म) हो जाता है॥ ८॥

परंतु जो निष्काम हैं और श्रुति स्मृति में बतलाये हुए कर्मों को छोड़कर ज्ञान में ही निष्ठावान् बन गये हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ ९॥

अनन्याः, चिन्तयन्तः, माम्, ये, जनाः, पर्युपासते।
तेषाम्, नित्याभियुक्तानाम्, योगक्षेमम्, वहामि, अहम्॥

भाषाटीका और अन्वय—अनन्याः (जिन को मुझ को छोड़कर और कुछ काम्य वस्तु नहीं है, ऐसे) ये (जो) जनाः (लोग) माम् (मुझ को) चिन्तयन्तः (चिन्तन करते हुए) पर्युपासते (उपासना करते हैं), तेषाम् (उन) नित्याभियुक्तानाम् (मेरे कहे हुए योग में नित्य स्थितिवालों के) योगक्षेमम् (योग और क्षेम का) अहम् (मैं, ही) वहामि (वहन करता हूँ अर्थात् मैं ही योगक्षेम देता हूँ)॥ ९॥

सिद्धान्तशिखरिणी (व्याख्या)—जो श्रुति स्मृति आदि के सारे कर्म और संसार की चिन्ताओं को छोड़कर एक मात्र सच्चिदानन्द परमदेव—मुझ—नारायण को आत्म-

रूप से—अपने से अभिन्न—जानते हैं और जो मेरा निरन्तर चिन्तन करते हुए मेरी श्रेष्ठ (निष्काम) उपासना करते हैं, सर्वदा मुझ में ही स्थित उन परमार्थज्ञानियों को मैं योग-क्षेम प्राप्त कराता हूँ। नहीं मिली हुई वस्तु के मिलने का नाम 'योग' है; और मिली हुई वस्तु की रक्षा का नाम 'क्षेम' है। उन के इन दोनों को मैं चलाता हूँ।

"ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्" अर्थात् 'ज्ञानी को तो मैं अपनी आत्मा ही मानता हूँ' और "स च मम प्रियः" अर्थात् 'वह मेरा प्यारा है' इन दोनों श्लोकों से यह जाना जाता है कि ज्ञानी भक्त श्री भगवान् का आत्मरूप और बहुत ही प्यारा है। और और भक्तों का योग क्षेम भी भगवान् ही चलाते हैं, यह बात ठीक है; परंतु उस में यह भेद है कि जो दूसरे भक्त हैं, वे स्वयं भी योग क्षेम के लिए चेष्टा करते हैं, किंतु श्री भगवान् को अपने से अभिन्न देखनेवाला ज्ञानी भक्त अपने लिए योग क्षेम संबन्धी चेष्टा नहीं करता, क्योंकि वह जीने और मरने में भी अपनी वासना नहीं रखता। वह भगवान् को ही अपनी आत्मा का रूप—अपने से अभिन्न—सोचता है और उस के लिए भगवान् ही एकमात्र अवलम्बन होते हैं। अतः उस का योग क्षेम भगवान् ही चलाते हैं ॥ ९ ॥

इसलिए—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥१०॥

यत्, करोषि, यत्, अश्नासि, यत्, जुहोषि, ददासि, यत्।
यत्, तपस्यसि, कौन्तेय, तत्, कुरुष्व, मदर्पणम् ॥
—९।२७

भाषाटीका और अन्वय—कौन्तेय! (हे अर्जुन!) (तुम) यत् (जो, कुछ) करोषि (करते हो), यत् (जो, कुछ) अश्नासि (खाते हो), यत् (जो, कुछ) जुहोषि (होम करते हो), यत् (जो कुछ) ददासि (दान देते हो), (अथवा) यत् (जो, कुछ) तपस्यसि (तप करते हो) तत् (वह, सब) मदर्पणम् (मुझे अर्पण) कुरुष्व (करो) ॥ १० ॥

सिद्धान्तशिखरिणी (व्याख्या)—हे कुन्तीपुत्र-अर्जुन! तुम जो कुछ भी, स्वभाव से प्राप्त, कर्म करते हो, जो खाते हो, जो कुछ श्रुति या स्मृति के अनुसार यज्ञ आदि में हवन करते हो, जो कुछ सुवर्ण, अन्न आदि वस्तुओं का, ब्राह्मण आदि को, दान देते हो और जो कुछ तप का आचरण करते हो, वह सब मुझे समर्पण करो।

यदि यही बात ठीक हो कि—"नादत्ते कस्यचित् पापं न चैव सुकृतं विभुः"—विभु (सर्वव्यापी परमात्मा) किसी भक्त का न तो पाप ग्रहण करता है और न भक्तों से अर्पण किये हुए सुकृत को लेता है, तो फिर यहाँ पूजा, यज्ञ, दान, होम, व्रत आदि कर्मों को किस लिए, अर्पण करने को कहा जाता है? इस पर कहा गया कि—"अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः"—जीवों का विवेक विज्ञान अज्ञान से ढका हुआ है। इस कारण अविवेकी—अज्ञानी जीव ही "करता हूँ—कराता हूँ", "खाता हूँ—खिलाता हूँ", "लेता हूँ—देता हूँ" इस प्रकार मोह को प्राप्त होता है।

जीव को जन्म से ही मूल अज्ञान के स्वभाव से ऐसी कर्तावुद्धि और भोक्तावुद्धि रहती है। इस बुद्धि से कर्म करते करते कि मेरे द्वारा जो कुछ (कर्म) किया जाय वह सब श्री भगवान् को अर्पण करता हूँ, जीव के अन्तःकरण की शुद्धि होकर समस्त कर्मों का संन्यास अर्थात् त्याग हो जायगा। विना कर्मों के त्याग से आत्मज्ञान में निष्ठा तथा आत्मज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है। फिर बिना आत्मज्ञान के मोक्ष भी नहीं होता। कर्म और कर्मफल का त्याग कराना अर्थात् कर्मादि का अभिमान छुड़ाना ही शास्त्र का मुख्य उद्देश्य है। अज्ञानी अपने को ईश्वर से पृथक् जानते हैं और कर्म एवं उस के फल में भी अभिमान रखते हैं। यथार्थ में ईश्वर किसी के कर्म और कर्मफल को ग्रहण करते हैं या नहीं, उस के विचार की यहाँ आवश्यकता नहीं है। जिस किसी उपाय से भी जीव को अपने कर्म और कर्मफल का त्याग करने से ही परम कल्याण की प्राप्ति होती है। शास्त्रादि के विचार द्वारा भी कर्मों में अभिमान चला जाता है। पर साधारण जीवों के लिए तथा भक्तों के लिए, जो भी कर्म किये जायँ वे सब, प्रेम से, श्री भगवान् को अर्पण करना सहज और श्रेष्ठ उपाय है। इस प्रकार कर्म तथा कर्मफल के त्यागने से धीरे धीरे उन को कर्म में वैराग्य आ जायगा और वे ज्ञाननिष्ठा के अधिकारी बनेंगे। इस लिए संपूर्ण कर्मों के बन्धन से छुड़ाने के लिए ही यह उपदेश दिया जाता है कि जीव समस्त कर्मों का, भगवान् को, अर्पण करनारूप बुद्धि रखे ॥ १० ॥

(क्रमशः)

गीताधर्म के नियम

१—गीताधर्म प्रति अंग्रेजी मास की पहली तारीख को प्रकाशित होता है।

२—इस का वार्षिक मूल्य ४) मात्र है। इस का वर्ष जनवरी से दिसंबर तक समझा जाता है। छः मास का मूल्य २।) रुपया है, परंतु छः मासवाले ग्राहकों को वार्षिक बड़ा विशेषाङ्क नहीं मिलेगा। प्रति संख्या का मूल्य ।=) है। नमूने के लिए ।=) आने का टिकट भेजना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ६॥) और प्रति संख्या का ।≡) है।

३—अपना नाम और पूरा पता साफ साफ लिखकर भेजना चाहिए, जिस में पत्र के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४—जिन सज्जनों को किसी मास का गीताधर्म न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछना चाहिए। पता न लगने पर डाकघर के उत्तर के साथ जिस महीने की संख्या न मिली हो उस के अगले महीने की पंद्रह तारीख तक पत्र लिखें। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उन पर विचार करना कठिन होगा। गीताधर्म यहाँ से दो बार अच्छी तरह जाँचकर रवाना किया जाता है। पत्रव्यवहार करते समय अपना **ग्राहकनंबर अवश्य लिखा जाय।**

५—पत्र के उत्तर के लिए सदा **जवाबी कार्ड अथवा टिकट** आना चाहिए, अन्यथा हम उत्तर देने में असमर्थ हैं।

६—यदि एक ही दो मास के लिए पता बदलवाना हो, तो अपने डाकखाने से उस का प्रबन्ध करा लेना चाहिए। यदि सदा अथवा अधिक काल के लिए पता बदलवाना हो, तो उस की सूचना हमें अवश्य देनी चाहिए।

७—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें (२ प्रति से कम नहीं) और बदले के पत्र "संपादक 'गीताधर्म', साक्षीविनायक, काशी" के पते से भेजना चाहिए। मूल्य तथा प्रबन्ध संबन्धी पत्र "मैनेजर 'गीताधर्म', साक्षीविनायक, काशी" के पते से आने चाहिएँ।

८—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने का तथा उसे लौटाने या न लौटाने का पूरा अधिकार संपादक को होगा। लेखों के घटाने बढ़ाने का अधिकार भी संपादक को है।

९—लेख, कविता एवं कहानियों का सरल भाषा में धर्म के अनुकूल तथा हाशिया छोड़कर पृष्ठ के एक ही ओर स्पष्ट लिखित होना आवश्यक है। अधूरे या धर्मविरुद्ध लेख नहीं छापे जायँगे। जिन लेखों में चित्र रहेंगे, वे तब तक न छापे जायँगे जब तक लेखक उन के मिलने का प्रबन्ध न कर देंगे।



कुछ ध्यान देने योग्य आवश्यक सूचनाएँ

प्रार्थना

(१) गीताधर्म का लक्ष्य है आत्मकल्याण और लोकसंग्रह। इस से गीताधर्म के ग्राहक बनकर, ग्राहक बनाकर और अन्य उचित उपायों से गीताधर्म का प्रचार करके इस लक्ष्य की पूर्ति करना आप का कर्तव्य है।

'गीताधर्म' भगवान् का पत्र है। इस की सेवा भगवान् की सेवा है।

प्रत्येक गीताधर्मप्रेमी से यह अनुरोध है कि जैसे आप स्वयं ग्राहक बने हैं वैसे ही प्रत्येक महीने में औरों को भी ग्राहक बनावें।

(२) **गीताव्यास लोकसंग्रही स्वामी विद्यानन्दजी** का पता गीताधर्म कार्यालय से पूछिए।

(३) **रुपया किसे देना?**—'गीताधर्म' की शाखाओं तथा प्रचारकों का नाम अन्त में दिया रहता है। ग्राहकों से प्रार्थना है कि वे इन को छोड़कर और किसी सज्जन को रुपये न दें। यदि उन्हें ग्राहक अथवा संरक्षक बनना हो, तो रुपये मनीआर्डर से सीधे कार्यालय को भेज दें।

(४) हमारी समिति ने यह निश्चय किया है कि संस्कृत विद्या, भारतीय संस्कृति तथा साहित्य से संबन्ध रखनेवाले ग्रन्थ प्रकाशित किये जायँ और इस ग्रन्थमाला का नाम रहे **'विद्यानन्द ग्रन्थमाला'**। ग्रन्थमाला के ग्रन्थों की सूची अन्यत्र पढ़िए।

(५) आगामी वर्ष का विशेषाङ्क होगा गीताङ्क

(६) **प्रश्नोत्तर**—जिज्ञासु लोग प्रश्न भेजते हैं; हम गुरुजनों से पूछकर उन के उत्तर भेजने का यत्न करते हैं। काशी के प्रसिद्ध गीता के आचार्य श्री गीतानन्दजी ने यह वचन दिया है कि कोई भी जिज्ञासु हम से गीता पर प्रश्न करे, उस का उत्तर यथाशक्ति अवश्य देंगे। तत्त्वबोध और सत्संग का यह अपूर्व अवसर है।

(७) **पत्रव्यवहार**—अँगरेजी या हिंदी में ही रहना चाहिए और जो लोग उत्तर चाहें उन्हें टिकट अथवा जवाबी कार्ड भेजना चाहिए।

(८) गुड्स रेलवे स्टेशन बनारस कैंट पर भेजना चाहिए।

(९) पार्सल बनारस टाउन के पते से भेजना चाहिए।

(१०) **उलहना**—कृपालु ग्राहक पत्रिका न मिलने पर शीघ्र पोस्ट में अथवा अपने स्थान के शाखाकार्यालय में जाँचकर, हमें न मिलने का उलहना पत्र द्वारा दिया करें।

मैनेजर—

'गीताधर्म', काशी

(भारत के प्रसिद्ध शहरों में गीताधर्म कार्यालय की शाखाएँ)

गीताधर्म मिलने के पते

१ काशी, गीताधर्म कार्यालय, साक्षीविनायक।

२ प्रयाग, पं० वृषकेतु उपाध्याय, जार्जटाउन ३४ (चड्ढा साहब का बँगला)।

३ बंबई, श्री नगीनदास फूलचंद चिनाई, चिनाई बिल्डिंग, मसजिद बंदररोड।

४ कलकत्ता, श्री सेठ रामप्रसादजी मूँदरा, ३२ क्रासस्ट्रीट, मूँगापट्टी, कलकत्ता M. P.

५ अहमदाबाद, सेठ बद्रीप्रसाद, कामनाथ महादेव, रायपुर दरवाजा बाहर।

६ बड़ोदा, मणिभाई जशभाई देशाई, सुलतानपुरा।

७ इंदौर, श्री कमलाशंकर जे. पंड्या M. B. E. H. प्राइवेट मेडिकल प्रेक्टीशनर, पीपली बाजार।

८ ग्वालिअर, बाबू उमराव विहारी माथुर, अम्बानिवास, नौमहला।

९ नागपुर, लाला नन्दलाल मैकूलाल (किराना मर्चेंट), सीतावर्डी।

१० जबलपुर, लाला रामचन्द्र, रईस व ठेकेदार, मुकादमगंज।

११ गाडरवारा, आचारीजी का मन्दिर।

१२ नरकटियागंज (चंपारन), पण्डित राधावल्लभ मिश्र, अध्यापक जानकी संस्कृत विद्यालय।

१३ जमशेदपुर, एस. एल. तिवारी, तिवारी बेचर एंड कं० लिमिटेड।

१४ लाहौर, सेठ शालिग्राम नरसिंहदासजी, लाहौर कैंट।

१५ लखनऊ, श्री नन्दबिहारीलाल ओरियंटल ग० सिक्यूरिटी लाइफ इंश्योरेंस कं० लि०, ओरियंटल बिल्डिंग, हजरतगंज।

१६ डभोई, सेठ चुन्नीलाल गिरधरलाल जीनवाला।

१७ सनखेड़ा, बक्षी जेठालाल केशवलालजी, बजारमां (स्टेट बड़ौदा)।

१८ आनन्द, पटेल गोरधनभाई शामलदासजी मास्तर।

१९ उदयपुर, अक्षयकीर्ति शर्मा 'अखय', सुपरिंटेंडेंट मेवाड़ आफ कोलाजी विक्टोरिया हाल म्युजियम, (राजपूताना)।

२० उज्जैन, पं० दुर्गाप्रसादजी तिवारी, लेफ्टीनेंट, माधवनगर।

२१ सिहोरा, श्री दयाप्रसाद वर्मा, लोकल बोर्ड सेक्रेटरी, सिहोरा रोड।
२२ गाजीपुर, श्री शिवमूर्ति पाण्डेयजी, भगवती औषधालय, थानापुर।
२३ बालाघाट, गोस्वामी श्री दयालगिरिजी, ज्वाइंट सेक्रेटरी—गीताप्रचारमण्डल, कर्णकुटी।
२४ महेसाणा, माधवलाल डी० शाह (स्टेट बडौदा)।
२५ कानपुर, श्रीमान् बाबू गङ्गानारायण खरे, म्युनिसिपल हाईस्कूल, नवाबगंज।
२६ दिल्ली, श्रीमान् पं० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय बी० ए०, सेक्रेटरी आल इंडिया ब्राह्मणमहासभा तथा वर्णाश्रम स्वराज्य संघ, २३०३ चरखेवालान स्ट्रीट, कूचा बीबीगौहर।
२७ सिन्ध, मेसर्स वेरहामल नन्दरामजी, न्यू अंडरपीस गुड्समर्चेंट, शिकारपुर।
२८ हैदराबाद, श्रीमान् गोपीकिशनजी C/0 सेठ सीतारामजी रामगोपालजी, माता नी नगारखाना, बेगमबाजार, हैदराबाद (दक्षिण)।
२९ पादरा, श्रीमान् जेठालाल मनसुखरामजी, कापड़ नी दुकान, बजारमां।
३० पेटलाद, श्रीमान् काछिया मोतीभाई जेठालाल, एजेंट पेटलाद बुक्सेलर, ठे० बड़कुवां पासे।
३१ रतलाम, मनबोधनलाल संकठाप्रसाद पाण्डेय, असिस्टेंट ट्राफिक कन्ट्रोलर B. B. & C. I. Ry.
३२ आजमगढ़, पं० श्रीधर उपाध्याय, कुर्मीटोला।
३३ हरिद्वार, मैनेजर, महारानी अहिल्याबाई बाड़ा।
३४ जैपुर, श्रीमान् लक्ष्मीशरण गङ्गाशरणजी माथुर, जड़ियों का रास्ता, जैपुर सिटी।
३५ भुज (कच्छ), श्रीमान् महेता यशश्चन्द्रभाई मोतीभाई, ज्वाइंट प्राइवेट सेक्रेटरी।
36 Africa—Gordhan Bhai Soma Bhai Patel, The Indian School, Saba Saba P. O. MARAGUA, (Kenya Colony) British East Africa.
37 Fiji (Island)—S. B. Patel, Bar-at-Law, Lauutka.
38 Mombasa—Purashottam D. master, P. 274 British East Africa.
39 Java—Natwarlal Govardhandas Parikh Messers Chandulal & Co., 4, Gang Gipo, Survaya
40 Japan—Messers R. C. Patel & Co., P. N. 339 Kove.
४१ बलिया, पं० श्यामसुन्दरजी उपाध्याय B. A., L-L. B., सेक्रेटरी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड।
४२ लहेरियासराय, श्री विश्वनाथनारायण सिंह, B. A. L-L. B. (दरभंगा)।

४३ बाँकीपूर, वैद्यरत्न पं० व्रजविहारी चतुर्वेदी, रत्नाकर औषधालय, भिखना पहाड़ी, पटना।

४४ महादेवपारा, वसिष्ठनारायण त्रिपाठी, मु० महादेवपारा, पो० मेहनगर, आजमगढ़।

४५ प्रतापगढ़, पं० रविदत्त पाण्डेय B. A, L. T., असिस्टेंट मास्टर, अजीत सोमवंशी हाईस्कूल, प्रतापगढ़ सिटी (अवध)।

४६ अमृतसर, गोस्वामी जीवनदास, महामन्त्री-पंजाब प्रान्तीय वर्णाश्रम स्वराज्य संघ, दुरगियाना, अमृतसर (पंजाब)।

४७ करांची, रतीलाल नरवेजी, कोटक, प्रागजी दामजी बिल्डिंग, प्रिंसेस स्ट्रीट, नन्दकुवादा।

४८ गोरखपुर, श्री हरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी बी. ए., एल-एल. बी. बेतिया हाता।

४९ बगहा, पं० रामसागर मिश्र, हेड पण्डित D. M. एकडमी, पो० बगहा, चंपारन।

५० बाराशिवनी, सेठ चौथमलजी, बालाघाट, सी. पी.।

५१ कलकत्ता, जयदेव गङ्गाराम, १४।१ रूपचंदराय स्ट्रीट।

५२ जौनपुर, श्रीराम उपाध्याय B. A., L-L. B. एडवोकेट, महल्ला—जोगियापुर।

५३ छिंदवाड़ा, प्रधानाध्यापक हरिप्रसाद द्विवेदी आ० शास्त्री, श्री सनातनधर्म संस्कृतविद्यालय, सिवनी, श्री राममन्दिर के पास, (सी० पी०)।

५४ मुहमदाबाद, पं० कुबेरनाथ पाण्डेय, हेडमास्टर अपर प्राइमरी स्कूल, जि. गाजीपुर।

५५ गोधरा, श्रीमान् आशाभाई खुशालभाई, श्रीकृष्ण आयल मिल्स कं० (गुजरात)।

५६ अकोला, सेठ जगन्नाथ, सीताराम विसनदयाल की फर्म, झोपड़ाबाजार में।

श्री विद्यानन्द ग्रन्थमाला और गीताधर्म प्रेस से प्रकाशित पुस्तकों और चित्रों की सूची

१	विद्यानन्दविनोद हिंदी	॥)
२	,, गुजराती	॥)
३	विद्यानन्द भजनावली	─)
४	हरिस्तुति श्रीमच्छंकराचार्यविरचित	=)
५	विन्ध्यवासिनीस्तोत्र	─)
६	अरविन्द	=)
७	कुलपति मालवीय	=)
८	हिलोर	-॥)
९	व्यास	॥)
१०	कृष्णजन्मभूमि	=)
११	श्रीमद्भगवद्गीता विष्णुसहस्रनाम सहित	─)॥
१२	कला में कृष्ण की अभिव्यक्ति	≡)
१३	आदर्श और यथार्थ	।॥)
१४	गीताधर्म के प्रथम वर्ष की फाइल सजिल्द	४)
१५	विश्वधर्माङ्क	२॥)

तिरंगे चित्रों की सूची

१	सरस्वतीजी	।)	१८×२३
२	हनुमान्जी	।)	,,
३	गीताधर्म	।)	१२×२३
४	सरस्वतीजी	)॥	७॥×१०
५	गङ्गाजी	,,	,,
६	योगेश्वर कृष्ण	,,	,,
७	गीताधर्म	,,	,,
८	काशी विश्वनाथ	,,	,,
९	स्वामी विद्यानन्दजी	,,	,,
१०	लक्ष्मीनारायण	,,	,,
११	हनुमान्जी	,,	,,
१२	गोस्वामी तुलसीदास	,,	,,
१३	रामचन्द्रजी	,,	,,
१४	लक्ष्मणजी	,,	,,
१५	सीताजी	)॥	७॥×१०
१६	भक्तों के हृदयकमल में भगवान् कृष्ण		,,
१७	कारागार में कृष्णजन्म	,,	,,
१८	यशोदा कृष्ण	,,	,,
१९	जनकपुर की फुलवारी	,,	,,
२०	गीता का उपदेश देते हुए भगवान् कृष्ण		,,
२१	राधाकृष्ण	,,	,,
२२	कमलीवाले राधेकृष्ण	,,	,,
२३	गणेशजी	,,	,,
२४	प्रपत्ति	,,	,,
२५	भगवान् वेदव्यास	,,	,,
२६	बाबा विश्वनाथ	,,	,,
२७	जगद्गुरु श्री शंकराचार्य	,,	,,
२८	उषा और संध्या	,,	,,
२९	दूधपीते हुए गोपाल	,,	,,

एकरंगे चित्रों की सूची ७×१०

१ जगत् के माता पिता	)।≈	७॥×१०
२ गङ्गाजी	,,	,,
३ नर्मदा देवी	,,	,,
४ बद्रीशपञ्चायतन	,,	,,
५ महात्मा गांधी	,,	,,
६ भगवान् बुद्धदेव	)।≈	७॥×१०
७ स्वामी विद्यानन्दजी	,,	,,
८ श्री रामकृष्ण परमहंस	,,	,,
९ स्वामी विद्यानन्दजी की कथा अहमदाबाद	,,	
१० स्वामी विद्यानन्दजी की कथा कलकत्ता	,,	

हिंदी संस्कृत आदि की किसी भी पुस्तक के लिए गीताधर्म बुकडिपो को लिखिए। एजेंसी के लिए पत्र व्यवहार कीजिए। व्यापारियों को भरपूर कमीशन दिया जायगा।



गीताधर्म के विज्ञापन छपाई के रेट

कवर का तीसरा पृष्ठ	२०)	प्रतिमास
,, ,, ,, एक कालम (आधा पृष्ठ)	१२)	,,
,, ,, चौथा पृष्ठ	३०)	,,
,, ,, ,, एक कालम (आधा पृष्ठ)	१८)	,,
कवर के द्वितीय पृष्ठ के सामनेवाला पृष्ठ	१८)	,,
,, ,, ,, एक कालम (आधा पृष्ठ)	१०)	,,
पाठ्यविषय की समाप्ति के सामनेवाला पृष्ठ	१८)	,,
,, ,, सामने एक कालम (आधा पृष्ठ)	१०)	,,
विज्ञापन के फर्मे के बीच में कहीं भी एक पृष्ठ	१५)	,,
,, ,, एक कालम (आधा पृष्ठ)	८)	,,
लेखों के अन्त में या विषयसूची के नीचे एक कालम (आधा पृष्ठ)	१२)	,,
,, ,, आधा कालम (चौथाई पृष्ठ)	७)	,,

१—एक साथ साल भर के लिए स्थायी विज्ञापनदाताओं को २५ प्रतिशत और छः माह के लिए स्थायी विज्ञापनदाताओं को १० प्रतिशत कमीशन दिया जाता है।

२—हमारे यहाँ अश्लील, कुरुचिपूर्ण अथवा अधार्मिक विज्ञापन नहीं छापे जायँगे। इस का निर्णय समिति के द्वारा होता है।

३—विज्ञापन छपाई के रुपये पहले ही आ जाने चाहिएँ। विशेष नियमों की जानकारी के लिए इस पते पर पत्र लिखें—

मैनेजर, विज्ञापनविभाग,
गीताधर्म कार्यालय,
साक्षीविनायक, काशी।

Gita Dharma Registered No. A 2843.

हरिद्वार में आगामी फाल्गुन चैत्र (१९९४) वाले कुम्भ पर
अखिल भारतवर्षीय गीतासंमेलन
का दूसरा अधिवेशन होगा

सभी साधु महात्माओं, गीताप्रेमियों और विद्वानों से प्रार्थना है कि वे अभी से अपने विचारों और कार्यों द्वारा हमारी सहायता करें।

मन्त्री—
गीतासंमेलन
गीताधर्म कार्यालय
काशी।

× × ×

गीताव्यास
स्वामी
विद्यानन्दजी
आजकल
बोर्डी मिल
अहमदाबाद
में
प्रवचन
कर रहे
हैं।

श्री पद्मनारायण आचार्य एम० ए० द्वारा गीताधर्म प्रेस, साक्षीविनायक, काशी में संपादित, मुद्रित और प्रकाशित।

कार्ता, ११ मई। हिन्देशिया आवा की सैनिक कमान ने लोगों के सभी स्कूलों का राष्ट्री-करण कर दिया है। इस वर्ष के में ये स्कूल सैनिक निगरानी में लिये गये थे।

सैनिक अधिकारियों ने जकार्ता विश्वविद्यालय तथा सभी शिक्षण संस्थाओं को पुनः खोलनेका आदेश दिया है।

...ोंसे परमाणु बम का विस्फोट किया है हमारे पिछले 'परमाणु का शांति पूर्ण उपयोग' के रवैये में कोई अन्तर नहीं आ जाता।

प्रधान मन्त्री और परराष्ट्र मंत्री ने लोकसभा को बताया कि हमारे देश में परमाणु शक्ति के तकनीकी ज्ञान और क्षमता के विकास के लिए हर प्रयास किया जा रहा है। हालांकि हम फिलहाल उसके शान्ति

...सूचना पर विदेश मन्त्री सरदार स्वर्ण सिंह के वक्तव्य के बाद श्रीमती इन्दिरा गांधी सदस्यों के प्रश्नों का उत्तर दे रही थीं।

आश्वासन की मांग

विदेश मन्त्री के वक्तव्य के बाद श्री कामत (प्र० स०) ने जानना चाहा कि क्या सरकार चीनी खतरे का सामना करने के लिए अमरीका, रूस, ब्रिटेन तथा अन्य गैर अणुशक्ति सम्पन्न राष्ट्रोंसे विचार विमर्श करेगी।

विदेश मन्त्रीने कहा कि हमारी यह निश्चित धारणा है कि अणुशक्ति वाले राष्ट्रों को चाहिए कि वे गैर अणुशक्ति सम्पन्न राष्ट्रों को 'प्रभावकारी आश्वासन' दें कि अणु शस्त्रों के फैलाव पर रोक की संधिमें शामिल होने के कारण उनके हितों को नुकसान नहीं पहुंचेगा।

विदेश मन्त्री ने कहा कि रूस तथा अमरीका को सभी गैर अणविक राष्ट्रों को संयुक्त रूप से चीनी खतरे के विरुद्ध रक्षा का आश्वासन देना चाहिए।

सम्पूर्ण उत्तर भारत में धूल भरी आंधी कई जगह वर्षा

बिहार में आंधी वर्षा से १२ व्यक्ति मरे

नई दिल्ली, ११ मई। उत्तर भारत में जगह जगह धूल भरी प्रचण्ड आंधी आने व वर्षा होने की खबरें मिली हैं।

दिल्ली और उसके आसपास के इलाकों में रात को आंधी के बाद काफी बारिश हुई।

बिहार के कुछ भागों में भी भयंकर आंधी आई और मूसलाधार वर्षा हुई। बेगूसराय और मुंगेर में भी अन्धड़ तूफान का काफी जोर रहा। पेड़ गिरने से लगभग १२ व्यक्तियों की मृत्यु हो गयी। बहुत से इलाकों में बसों का आना जाना रुक गया।

कल सायं काल प्रचण्ड आंधी ने कानपुर को झकझोर डाला। अन्धड़ की रफ्तार लगभग ७५ किलो मीटर प्रति घण्टा थी। आंधी एक घण्टे से भी अधिक समय तक चलती रही। बहुत से पेड़ उखड़ गये और बिजली की सप्लाई रुक गयी।

लखनऊ में भी तेज आंधी आयी।

लीची और आम की फसलों को काफी नुकसान पहुंचा है।

शिमला में कल आधी रात को भीषण ओला वृष्टि हुई जिससे ताप मान काफी नीचे गिर गया है।

इसके विपरीत उड़ीसा के कटक और भुवनेश्वर में प्रचण्ड लू चल रही है।

मौसम के बारे में अनुमान है कि पंजाब और उत्तर प्रदेश के मैदानों में जगह जगह गरज के साथ वर्षा होगी।

वाराणसी में भी भीषण आंधी

वाराणसी में भी गत रात भीषण आंधी आई किन्तु वर्षा की एक बून्द भी न होने से सम्पूर्ण वातावरण धूल धूसरित हो गया। इस आंधी से वाराणसी जिले में आम की फसल नष्ट होने का समाचार मिला है। आज प्रातः कच्चा लंगड़ा आम नगर की सट्टियों में १५ पैसे सेर बिकता देखा गया। कई मकानों की टीन की छतें उड़ गई तथा कई पेड़ जड़ से उखड़ गये रेहन्द डेम से प्राप्त होने वाली

चीन-पाक सांठगांठ

श्री नाथ पै ने चीन के बढ़ते हुए शत्रुता पूर्ण रुख तथा पाकिस्तान के साथ उसकी सांठगांठ की ओर ध्यान दिलाते हुए चीनी नेताओं द्वारा हाल में दिए गए इस वक्तव्य का उल्लेख किया कि चीन की शक्ति का प्रयोग जनता के मुक्ति युद्ध में किया जाएगा। श्री पै ने कहा कि चीन सरकार नागा तथा मिजो विद्रोह को मुक्ति युद्ध मानता है। उन्होंने जानना चाहा कि क्या सिर्फ वक्तव्य देने की अपेक्षा सरकार अन्य देशों के सामने भी यह प्रश्न उठाएगी?

लन्दन, ...
सूत्रों से ज्ञात ...
प्रधान मन्त्री ...
मन्त्री श्रीम...
निमन्त्रण पर ...
बाद किसी स...
यात्रा आ ...
यह भी ज्ञात ...
कार्याधिक्य ...
अक्तूबरसे पू...
में असमर्थ है...

नई सड़... वाल... रा...

लखनऊ ...
है कि उत्तर ...
सड़कों खास...
डिवीजन के ...
वाली बसों ...
निश्चय कि...

ऊथा...

रे...

न्यूय...
संघ के म...
द्वारा किये...
क्षण पर ...
हुए कहा ...
परीक्षण ...
की दृष्टिको...

भार...
न्यूजीलैंड, ...
रिका ब्रि...
राष्ट्रों ने ...



[... उत्तरप्रदेश, बिहार तथा नेपाल में ...]

गुरुवारीय

... १६ ... १८५]

वाराणसी, गुरुवार सं...

चीन के परमाणु विस्फोट से भारत को खतरा बढ़ा

ज्वाला मुखीके विस्फोट ... मरने वालों की ...ख्या १८०

...० लापता, २५८ लावा ...राख से घिरे

...जकार्ता, ११ मई। हिन्देशिया ...त एक समाचार के अनुसार ... दिनों पूर्व जावामें जो ज्वाला ...टा था उसमें लगभग १८० ...यों की मृत्यु हो गयी और ... ३०० व्यक्ति लापता है या ...साथियों से बिछुड़ गये हैं। ...त हुआ है कि ज्वाला मुखी ...के आस पास आबाद आठ ... २५८ व्यक्तियोंके साथ अभी ...कं नहीं स्थापित किया जा ...क्योंकि अभी भी वे गाँव ...मुखी के राख और लावा से ... है।

...देशियाकी समाचार ...

लोकसभा में भारत रक्षार्थ एटम बम बनानेको मांग—सरकारका वही 'न'

नई दिल्ली, ११ मई। चीन द्वारा किये गये तीसरे परमाणु बम विस्फोट पर वक्तव्य देते हुए परराष्ट्रमन्त्री ने स्वीकार किया है कि चीन द्वारा तीसरे परमाणु विस्फोट से हमारे देश के लिये खतरा बढ़ गया है।

कांग्रेसी तथा विपक्षी सदस्यों ने एक स्वर से मांग की कि सरकार अपने देशकी रक्षा के लिए परमाणु बम बनाये। तरह तरह के सवालों द्वारा बार-बार यह जानने की कोशिश की गयी कि सरकार कब परमाणु बम बनायेगी।

सरदार स्वर्ण सिंहने चीनी परमाणु विस्फोट की भर्त्सना की और उसे विश्वशान्ति के लिए खतरनाक बताया। उन्होंने कहा, यह विश्व की जनता के स्वास्थ्य के लिए भी ...

... के लिए अपनी अणुशक्ति का ... कर रहे हैं। साथ ही हम ... जानकारी बढ़ा रहे हैं।

विदेश मन्त्री ने स्वीकार कि... चीन की अणु क्षमता में ... गंभीर मामला है किन्तु ... उन्होंने कहा कि अणुबम के ... पर सारे विश्वका नाश हो जा... अतः प्रसार को प्रभावकारी ... रोकने के लिए अणु राष्ट्रों को ... जिम्मेदारी के बारे में गैर अणु ... को आश्वस्त करना चाहिए।

उन्होंने बताया कि हम ... अणुनीति पर लगातार पुन...